चिकित्साचन्द्रोदय

आयुर्वेद।

आयुर्वेदकी उत्पत्ति कैसे हुई, कब हुई, और आयुर्वेदके पढ़ने से क्या लाभ है? इन प्रश्नोंके उत्तर देनेके पूर्व्व, हमें यह बतलाना आवश्यक है कि, "आयुर्वेद" किसे कहते हैं, क्योंकि आयुर्वेदके पढ़नेवाला जबतक "आयुर्वेद" का अर्थ न समझेगा, तबतक उसका मन "आयुर्वेद" की ओर हरगिज़ न झुकेगा, उस ओर उसकी रुचि कदापि न होगी।

ऋषियोंने लिखा है,—"शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्माके संयोग या मेलको "आयु" अर्थात् उम्र कहते हैं, और जिस शास्त्रसे आयुका ज्ञान और उसकी प्राप्ति होती है, उसे "आयुर्वेद" कहते हैं।" चरक मुनिने लिखा है :—

> हिताहितछखंदुःखमायुस्तस्य हिताहितम्।
> मानञ्च तञ्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते॥

जिससे आयुके हिताहितका ज्ञान और उसका परिमाण मालूम हो, उसे "आयुर्वेद" कहते हैं। और भी लिखा है :—

> आयुर्हिताहितं व्याधि निदानं शमनं तथा।
> विद्यते यत्र विद्वद्भिः स चायुर्वेद उच्यते॥

जिसमें आयुका हित, अहित, रोगका निदान, और शमन हो,—उसको विद्वान् "आयुर्वेद" कहते हैं।

इस जगत्में ऐसा कोई विरलाही प्राणी होगा, जो दीर्घायु न चाहता होगा। जीवनका ऐसा मोह है, कि घोर कष्टोंमें फँसा हुआ प्राणी, यद्यपि असह्य शारीरिक और मानसिक क्लेशोंके मारे ज़बान से तो मृत्युको आवाहन करता रहता है, किन्तु जब मृत्यु सामने दिखलाई देती है, तब और भी कुछ दिन जीते रहनेकी आकांक्षा प्रकट करता है। इससे सिद्ध होता है कि, प्रत्येक प्राणी जो इस जगत्में आया है, जल्दी ही यहाँ से विदा होना नहीं चाहता। जब यही बात है, तब मनुष्यमात्र को थोड़ी या बहुत वह विद्या अवश्य सीखनी चाहिये, जिससे रोगोंके निदान-कारण और उनकी शान्तिके उपाय मालूम हों। रोग होनेका क्या कारण है, कौन रोग है, इस रोगका नाश कैसे होगा, किन बातोंसे आयुकी वृद्धि और किन से क्षय होता है, मनुष्य किस तरह अकाल मृत्युसे बच सकता है और किस तरह परमायुकी प्राप्ति हो सकती है—ऐसी-ऐसी बातें 'आयुर्वेद' में विस्तारसे लिखी हैं; इसलिये प्रत्येक मनुष्यको, जो अपना या पराया भला चाहता है, संसारमें कोई बड़ा काम करने का अभिलाषी है, आयुर्वेद-विद्या अवश्य दिल लगाकर पढ़नी, समझनी और सीखनी चाहिये।

आयुर्वेद की उत्पत्ति

आज इस भूतल पर जितने देश हैं, सभीका आयुर्वेद अलग-अलग है ; परन्तु सब देशोंके आयुर्वेदोंकी उत्पत्ति हमारे आयुर्वेद से ही हुई है। हमारा आयुर्वेद सबसे पहला और आदि है, इसको सप्रमाण हम आगे लिखेंगे। पहले हम यह बतलाते हैं कि, हमारे आयुर्वेदका जन्म कैसे और कब हुआ, हमारे यहाँ कौन बड़े-बड़े आयुर्वेदके जानने और लिखनेवाले विद्वान् हुए, उन्होंने कौन-कौनसे ग्रन्थ लिखे, उनमेंसे कौन-कौनसे ग्रन्थ उच्च श्रेणीके और कौन-कौनसे निम्न श्रेणीके हैं।

आयुर्वेदकी उत्पत्तिका यथार्थ समय निश्चित करना, हमारे लिये तो सर्वथा असम्भव ही है। अनेक विद्वानोंने इस विषयमें दिमाग़ लड़ाया और अब भी लड़ा रहे हैं, परन्तु सच्ची कामयाबी आजतक किसी को न हुई, आजतक कोई भी मंज़िल मक़सूद तक न पहुँचा, सभी इधर-उधर लटकते रह गये। कोई कुछ कहता है और कोई कुछ ; सबका मत भी एक नहीं।

यद्यपि थोड़ी बहुत अँगरेज़ी हमने भी पढ़ी है, आजकलके विद्वानोंकी रायों पर विचार भी किया है, तोभी उनकी दलीलें हमारे कमज़ोर दिमाग़में नहीं घुसतीं ; हमारे ख़याल़ात उसी पुराने ढर्रे के हैं, जिनकी कि आजकलके बाबू या मिस्टर दिल्लगी उड़ाया करते हैं। यद्यपि हम आयुर्वेदके जन्मकी सन् और तारीख़ नहीं दे सकते, पर यह दावेके साथ कह सकते हैं, कि हमारा आयुर्वेद संसारमें सबसे

पुराना और पहला है। सुनते हैं, वेदोंमें इसका ज़िक्र है, इस लिये यह वेदोंके ज़मानेका है। वेद यदि अनन्तकाल या लाखों-करोड़ों वर्षोंसे हैं, तो 'आयुर्वेद' भी लाखों-करोड़ों वर्षोंसे हैं ; यदि आजकलके विद्वानोंके मतानुसार वेद चार छै हज़ार वर्षोंसे हैं, तो यह भी चार छै हज़ार वर्षोंसे हैं। यदि हम, थोड़ी देरके लिये, वेदोंको चार छै हज़ार वर्षोंका भी मानलें, तोभी हमारे इस कथनमें, कि आयुर्वेद सबसे पुराना और पहला है, कोई दोष नहीं आता ; इसकी प्राचीनतामें बट्टा नहीं लगता। माफ़ कीजिये, हमें क्या कहना था और क्या कहने लग गये। आयुर्वेदकी उत्पत्तिकी बात लिखते-लिखते, जोशमें आकर, उसकी प्राचीनताका राग अलापने लग गये। अच्छा, पहले उत्पत्तिकी बात ही सुनिये।

किसी ज़मानेमें 'आयुर्वेद' का सार-सर्वस्व लेकर ब्रह्मदेवने अपने नाम से एक ग्रन्थ रचा और उसका नाम रक्खा "ब्रह्मसंहिता"। उस ग्रन्थमें एक लाख श्लोक थे, पर आजकल वह कहीं नहीं मिलता।

अपनी पुस्तक रचनेके बाद ब्रह्मदेवने, संसारके उपकारके लिये, दक्ष प्रजापतिको आयुर्वेद पढ़ाया। दक्ष प्रजापतिने दोनों अश्विनी-कुमारोंको आयुर्वेदकी शिक्षा दी। उन दोनों भाइयोंने इस विद्या में बड़ी भारी उन्नति की और खूब नाम कमाया। उनकी अद्भुत चिकित्सा-प्रणाली पर देवराज इन्द्र दिलोजानसे मोहित हो गये। उन्होंने स्वयं यह विद्या अश्विनीकुमारोंसे सीखी। सुरपुरीमें ये दोनों भाई ही देवताओंका इलाज करते थे।

महर्षि आत्रेयने राजा इन्द्रसे आयुर्वेद सीखा। उन्होंने अग्निवेश, भेड, जातूकर्ण, पराशर, क्षीरपाणि और हारीतको आयुर्वेदकी शिक्षा दी। इन्होंने आयुर्वेदमें पारदर्शिता प्राप्त करके, अपने-अपने नामसे अलग-अलग ग्रन्थ लिखे।

अग्निवेश हारीत आदि ऋषियोंके ग्रन्थोंका सारमर्म लेकर और अपनी ओरसे कुछ घटा-बढ़ाकर चरक आचार्य्यने अपने नामसे एक ग्रन्थ रचा। इसी ग्रन्थ का नाम आजकल "चरक" के नामसे संसार में प्रसिद्ध है।

चरक की संसारमें बड़ी प्रतिष्ठा है। कहते हैं, चरक पढ़े बिना जो चिकित्सा करता है, वह वैद्य नहीं यमदूत है। पाश्चात्य विद्वानोंने भी लिखा है कि, यदि संसारमें चरककी रीतिसे चिकित्सा की जाय, तो संसार आजकलकी तरह रोग-पीड़ित न हो। हमारे यहाँ वाले भी चिकित्सा के लिये चरक की बड़ी तारीफ करते हैं। कहा है,—

> निदाने माधवः श्रेष्ठः, सूत्रस्थाने तु वाग्भटः।
> शारीरे सुश्रुतः प्रोक्तः, चरकस्तु चिकित्सिते॥

रोगोंका निदान-कारण जाननेके लिये "माधव निदान" सर्व्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है; सूत्रोंके लिये "वाग्भट" सर्व्वोत्तम है; शारीरिक ज्ञान के लिये "सुश्रुत" और चिकित्सा के लिये "चरक" सबसे उत्तम है।

चरकमें गद्य (Prose) और पद्य (Verse) दोनों हैं। यह बड़ा कठिन ग्रन्थ है, इसीसे साधारण वैद्य इसे नही पढ़ते; पर ऊपर कह आये हैं, कि चरक बिना अच्छी चिकित्सा नहीं आती, इसलिये वैद्यकका व्यवसाय करनेवालेको चरक अवश्य पढ़ना चाहिये। यह ग्रन्थ सूत्रस्थान, विमानस्थान प्रभृति आठ भागोंमें विभक्त है। सूत्रस्थानमें हज़ारों कामकी बातें, संक्षेपमें, बड़ी ही खूबीसे लिखी गई हैं। इस भागके पढ़नेसे वैद्यको कामकी हज़ारों बातें मालूम हो जाती हैं। विमानस्थानमें रसायन अर्थात् फिजियोलाजी और कैमिष्ट्रीका संक्षिप्त वर्णन है। इसमें न्यायशास्त्रका अधिक अंश है, इससे मामूली अक्लवालोंको यह भाग बुरा मालूम होता है। शरीरस्थानमें शरीरके अङ्गोंके वर्णन के सिवा—वेदान्त, सांख्य और वैराग्य का ज़िक्र बड़ीही खूबीसे किया गया है। आठवाँ सिद्धिस्थान है। इसमें कुछ सवाल-जवाब बड़े ही कामके हैं। सरांश यह, कि इस ग्रन्थका प्रत्येक भाग बड़ाही उपयोगी है।

चरक के बाद "सुश्रुत" का नम्बर है। यह महात्मा विश्वामित्र के पुत्र थे। इन्होंने अपने पिता की आज्ञा से, प्राणियोंके उपकारार्थ, एक सौ ऋषिपुत्रों के साथ, काशी जाकर, काशिराज दिवोदास

से आयुर्वेद सीखा। कहते हैं, महाराज दिवोदास धन्वन्तरिके अवतार थे। उन्होंने इन्द्रके कहनेसे इस लोकमें जन्म लिया था। काशिराज सभी ऋषिपुत्रों को आयुर्वेद सिखाते थे, मगर उनके शागिर्दोंमें सुश्रुत सबसे तेज़ थे। आप गुरुके उपदेशों को ख़ूब ध्यान लगाकर सुनते थे। कहते हैं, इसीसे आपका नाम "सुश्रुत" पड़ गया।

सुश्रुतने पढ़-लिखकर अपने नामका जो ग्रन्थ लिखा, उसीको आज-कल "सुश्रुत" कहते हैं। इस ग्रन्थमें ज़र्राही या सर्जरी ख़ूब अच्छी तरह लिखी है। सुश्रुत से अच्छी अस्त्र-चिकित्सा हमारे और किसी ग्रन्थमें नहीं है। इसमें रोगोंकी संख्या और चिकित्सा भी चरक से अधिक है। यह ग्रन्थ पाँच भाग और एकसौ बीस अध्यायोंमें विभक्त है। इन पाँचों के सिवा एक "उत्तरतन्त्र" और है। उसमे ६६ अध्याय हैं और उसमें चिकित्सा ख़ूबही अच्छे ढँगसे लिखी है। चरक से यह ग्रन्थ कम नहीं है, अतः वैद्यों को इसे भी अच्छी तरह पढ़ना चाहिए; क्योंकि केवल एक शास्त्र के पढ़ने से कोई वैद्य नहीं बन जाता। यों तो जो एकमें है वही सबमें है, पर बारीक नज़र से देखा जाय, तो जो एकमें है वह दूसरे में नहीं; इसी से जितने अधिक ग्रन्थ देखे जायँ उतना ही अच्छा हो।

चरक और सुश्रुत के बाद "वाग्भट" का नम्बर है। यह ग्रन्थ भी अव्वल दर्जेका समझा जाता है। चरक, सुश्रुत और वाग्भट,—इन तीनोंको ही "वृद्धत्रयी" कहते हैं। जो इन तीनोंको पढ़ लेते हैं, वह अच्छे वैद्य समझे जाते हैं।

वाग्भट महोदय महाभारत के ज़मानेमें थे। कहते हैं, आप महाराज युधिष्ठिर के प्रधान वैद्य थे। किसी-किसीने लिखा है कि, आप ईसासे दो सौ वर्ष पहले हुए थे। ख़ैर, कुछ भी हो, इस में ज़रा भी संशय नहीं कि, आप अपने समयके नामी वैद्य हुए। आपने चरक और सुश्रुत का सहारा लेकर जो ग्रन्थ लिखा है, उस का नाम "अष्टाङ्ग हृदय" है; पर वह "वाग्भट" के नामसे अधिक प्रसिद्ध है।

वाग्भट के बाद "वङ्गसेन" का नम्बर है। कोई कहता है, आप विक्रमकी ग्यारहवीं शताब्दीमें हुए और कोई कहता है कि, चार-पाँच सौ वर्ष पहले आप बङ्गालमें मौजूद थे। आपने भी—चरक, सुश्रुत और वाग्भट के आधार पर—अपने नामसे एक ग्रन्थ लिखा है। जो "वङ्गसेन" के नाम से मशहूर है। आपकी चिकित्सा-पद्धति बहुत हीं उत्तम है। आपने जो लिखा है, वह बहुत ही सरल रीति से लिखा है, और ऐसे अच्छे ढँगसे लिखा है कि, जो विषय दूसरे ग्रन्थों में आसानी से समझमें न आता हो, वह इसमें बड़ी ही आसानीसे समझ में आ जाता है। इसके सिवा, इसमें एक और खूबी है, कि जो विषय और ग्रन्थों में नहीं हैं, वह भी इसमें मिलते हैं। यह ग्रन्थ भी वैद्योंके पढ़ने-योग्य है।

वङ्गसेन के बाद माधवाचार्य्य-लिखित "माधव निदान" का नम्बर है। कहते हैं,—आप, ईसाकी बारहवीं सदीमें, विजयनगर के राजाके प्रधान मन्त्री थे। सुप्रसिद्ध सायण आचार्य्य आपके भाई थे। आपने अलग-अलग विषयों पर अनेक ग्रन्थ लिखे हैं, पर चिकित्सा-शास्त्र के सम्बन्धमें आपका लिखा "माधव निदान" ही सर्व्वोत्तम है। यद्यपि इसमें आजकलके अनेक रोगोंके निदान नहीं हैं, तथापि इस काम के लिये इससे अच्छा ग्रन्थ और नहीं है, इसीसे प्रत्येक वैद्य इसे अवश्य पढ़ता है।

माधवनिदान के बाद "भाव प्रकाश" है। इसके लेखक मदरास-प्रान्त के रहनेवाले भाव मिश्र महोदय हैं। आपने भी अपने नामसे एक ग्रन्थ लिखा है। उसका नामही "भावप्रकाश" है। यद्यपि आपने अपना ग्रन्थ चरक, सुश्रुत आदि के आधार पर लिखा है, तथापि आपने अपनी ओर से भी खूब काम किया हैं। पोर्च्यूगीज़ या पुर्त्तगाल-निवासी आपके समयमें भारतमें आ गये थे, इससे आपने फरङ्गिस्तानसे आनेवाले फिरङ्ग प्रभृति रोगोंका भी ज़िक्र किया है। यह ग्रन्थ भी वैद्यों के पढ़ने-योग्य है।

भाव प्रकाश के बाद "शार्ङ्गधर" का नम्बर है। शार्ङ्गधर नामके

किसी आचार्य्यने अपने नामसे यह ग्रन्थ लिखा है। आपने और सब विषय बिल्कुल संक्षेपमें लिख कर, रोगोंके नाश करनेवाले नुसख़े ख़ूबही अच्छे लिखे हैं। मालूम होता है, आपने अपने आज़माये हुए नुसख़े ही इस ग्रन्थमें लिखे हैं; क्योंकि समय पर इस ग्रन्थके नुसख़े, अक्सर, अकसीर का काम दिखाते हैं।

इन ग्रन्थरत्नोंके सिवा और भी चक्रदत्त, वैद्य-विनोद, वैद्यमनोत्सव, भैषज्यरत्नावली प्रभृति अनेक वैद्यक-सम्बन्धी ग्रन्थ हैं; पर भिषक-श्रेष्ठ पण्डितप्रवर लोलिम्बराज महोदय का लिखा "वैद्यजीवन" नामक ग्रन्थ हमें बहुत पसन्द है। आपने, अपनी प्रियतमाके प्रश्नोंके उत्तरके मिससे, अनेक रोगोंके अचूक नुसख़े कह डाले हैं। आपने भी अपने परीक्षित नुसख़े ही कहे हैं, ऐसा मालूम होता है। आपके छोटेसे काव्यके पढ़नेमें बड़ा मज़ा आता है।

हमने ऊपर जिन-जिन ग्रन्थोंके नाम लिखे हैं, उनको गुरु से अच्छी तरह पढ़ लेने पर, मनुष्य "पूर्ण वैद्य" हो सकता है। परन्तु जिस तरह आजकलके वकील विकालत पास कर लेने पर भी, सदा 'ला रिपोर्टों' को देखते रहते हैं; उसी तरह वैद्यों को भी अनेक वैद्यों के अनेक ग्रन्थ, जहाँ तक मिल सकें, मँगा-मँगा कर पढ़ने और मनन करने चाहिएँ।

आयुर्वेदका अतीत और वर्तमान

हमारा आयुर्वेद संसारमें सबसे प्राचीन और पहला है, यह बात हम ऊपर लिख आये हैं, किन्तु ऊपर हमने अपने कथनके सिवा और कोई प्रमाण नहीं दिया, इसीलिये यहाँ हम कुछ पाश्चात्य विद्वानों के वचन उद्धृत करके, अपने कथनकी पुष्टि करनेमें कोई ऐब नहीं समझते।

प्रोफेसर रायली साहब लिखते हैं,—"हिन्दुओं का आयुर्वेद पुराना है। अरब और यूनानवालोंसे बहुत पहलेका है।"

प्रोफेसर विल्सन महोदय लिखते हैं,—"भारतमें बहुत प्राचीन कालसे चिकित्सा, ज्योतिष और दर्शन-शास्त्रके पारदर्शी विद्वान् मौजूद हैं।"

पण्डितवर राइट आनरेबिल एलफिन्सटन महोदय लिखते हैं,—"भारतवर्षसे ही यूरोपवालोंने चिकत्सा-विद्या सीखी थी। हिन्दुओं-का रसायन शास्त्र का ज्ञान विस्मयजनक है एवं आशा और अनु-मानसे अधिक है।"

"अयुल-उल" नामक एक अरबी-ग्रन्थ में लिखा है,—"आठवीं सदी में, हिन्दुस्तान के पण्डित बग़दाद की राज-सभा में आयुर्वेद और ज्योतिष की शिक्षा देते थे। सरक, सर्सल और वेद्रान,—ये तीन चिकित्सा-ग्रन्थ हिन्दुस्तानसे अरबमें लाये गये थे।"

अरब से इन ग्रन्थों का अनुवाद यूरोप में गया। सत्रहवीं शताब्दी तक, अरब की चिकित्सा-प्रणाली यूरोपीय चिकित्सा की मूल थी।

प्राचीन भारतवासी मुर्दों को चीर-फाड़ कर ज्ञान लाभ करते थे और अस्त्र-चिकित्सा भी करते थे, जिसके लिये वे १२७ प्रकार के अस्त्र व्यवहार करते थे।

डाकृर रायली.ने लिखा है,—"वास्तव में यह बड़ी ही विस्मयकर बात है कि, उस समयके चिकित्सक मुर्दे की पथरी को काट कर बाहर निकाल लेते थे ; यन्त्रों-द्वारा पेटसे बच्चे को निकाल सकते थे। भारतवासियों ने ही सबसे पहले रसायन विद्या की आलोचना आरम्भ की थी। धातु-द्वारा बनी हुई औषधियों के सेवन की व्यवस्था भी चरक-सुश्रुत में पाई जाती है।"

ईसामसीह से चार शताब्दी पहिले, यूरोप के दिग्विजयी सिकन्दर की सेना की चिकित्सा के लिये हिन्दू वैद्य नियुक्त हुए थे। असाध्य रोगों के नष्ट करने के लिये, वह बहुत से भारतीय वैद्यों को, बड़े मान-सम्मान से, अपने साथ ले गया था।

ईरान के ख़लीफ़ा हारूँरशीद अपनी चिकित्साके लिये हिन्दू वैद्यों को रखते थे।

प्रसिद्ध हकीम जालीनूस अपनी पुस्तक में लिखता है,—"आयुर्वेद-विद्या पहले हिन्दुस्तान से मिश्र में और मिश्र से यूनान और अरब में गयी। मेरे उस्ताद हकीम अफलातून ने हिन्दुस्तान जाकर 'कालज्ञानके' ३६ लक्षण और बहुत से ग्रन्थ पढ़े थे। उनका सार-भाग वह एक तख़्ती पर लिख कर गले में लटकाये रहते थे। उस तख़्ती की विद्या को वह किसी शागिर्द को न सिखाते थे। मरते समय उन्होंने अपनी बीबी से कहा कि, मेरे मरने पर इस तख़्ती को मेरी क़ब्र में गाड़ देना। उनकी बीबी ने उनके मरने पर वह तख़्ती उनके साथ क़ब्र में गड़वा दी। मुझे इस बात से बड़ा अचम्भा हुआ। एक रोज़ क़ब्र खोद कर मैंने वह तख़्ती निकाल ली। पीछे से मैंने उस विद्या में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। मेरी देखा-देखी अरस्तू और उनके शिष्योंने भी हिन्दुस्तान जाकर चिकित्सा-शास्त्र पढ़ा।"

एक चिकित्सा-शास्त्र ही नहीं और भी अनेक विद्यायें भारत ही से सब देशोंमें पहुँची हैं। गणित-शास्त्र, दशमलव, रेखागणित, त्रिकोणमिति और बीज-गणित का भी सबसे पहले भारत में ही आविष्कार हुआ था।

पण्डितवर कोलब्रुक और वेण्टनी साहब के मत से, भारतमें ही ज्योतिष-विद्याकी चर्चा सब से प्रथम हुई। ईसा की पाँचवीं शताब्दी में आर्यभट्ट ने चन्द्र और सूर्य्यग्रहण का वास्तविक कारण और पृथ्वी का मेरुदण्ड पर आवर्त्तन आविष्कार किया था। उन्होंने पृथिवी की परिधि का जो निर्णय किया था, उसमें और पाश्चात्य पण्डितोंके निर्णयमें बहुत ही कम प्रभेद है। पृथ्वी का गोल होना भी प्राचीन भारत ने स्थिर कर लिया था।

जर्मन पण्डित सोपनहर साहब ने लिखा है,—"ईसामसीह के धर्म का मूल भारतवर्ष ही है। इसी से ज्ञात होता है, कि सम्भवतः भारतसे ही ईसाई धर्म गृहीत हुआ है।"

फरासीसी-दार्शनिक कुंजे ने लिखा है,—"भारत के दर्शन में ऐसा गम्भीर सत्य भरा हुआ है कि, पाश्चात्य पण्डित गम्भीर गवेषणा कर चुकने पर जिस स्थान पर पहुँचे हैं, वहाँ पर प्रत्येक दर्शन के सत्य को देख कर स्तम्भित हुए हैं। उससे आगे बढ़ने की शक्ति उनमें नहीं है। हम लोग भारत के दर्शन के आगे सिर झुका कर वाधित हैं। हम लोग इस बातके स्वीकार करनेको वाध्य हैं, कि सर्व्वश्रेष्ठ दर्शन—मानव जाति के शैशव-क्षेत्र—पूर्व्वी प्रदेश में ही सबसे पहले उत्पन्न हुआ है।"

पण्डितवर मेक्समूलर महोदय ने लिखा है,—"भारत का वेदान्त सर्व्वोत्कृष्ट धर्म और सर्व्वोत्कृष्ट दर्शन है।"

सङ्गीत ने भी सबके पहले भारत में ही जन्म-ग्रहण किया था। भारत के सप्त स्वर फारस होकर अरब में पहुँचे और वहाँ से ग्यारहवीं शताब्दी के आरम्भ में यूरोप पहुँचे।

बस, अब और अधिक लिखने की ज़रूरत नहीं। ऐसे-ऐसे हज़ारों प्रमाण हैं, जिनसे साबित होता है कि, पृथ्वीतल पर जितने धर्म हैं,

जितनी विद्यायें हैं, उन सब का उद्गम-स्थान भारतवर्ष ही है, इसमें ज़रा भी शक और शुबह नहीं ।

पाठक ! ज़रा विचारिये तो सही, एक दिन वह था कि सिकन्दरे आज़म, अपनी सेना की चिकित्सा के लिये, भारतीय वैद्यों को बड़े सम्मान और आदर के साथ ले गया था ; एक दिन वह था कि ईरानके ख़लीफा हारूँरशीद अपनी चिकित्सा के लिये भारतीय वैद्योंको रखते थे ; एक दिन वह था कि अरस्तू और अफलातून जैसे हकीम भारतसे आयुर्वेद की शिक्षा प्राप्त करके जगत्के श्रेष्ठ चिकित्सकों में परिगणित हुए थे ; और एक दिन आजका है, कि भारतीय चिकित्सा निकम्मी समझी जाती है। कहिये, आयुर्वेद के उस गौरव, आयुर्वेद की उस उन्नति और आज की अवनति में ज़मीन-आस्मान का अन्तर है न ? कहाँ वे दिन और कहाँ आज के दिन ! सोचने से अविरल अश्रुधारा बहने लगती है। हम तो मनुष्य हैं, रक्त और मांस से बने हैं ; हमारे आँसू न रुकें, इसमें आश्चर्य्य ही क्या ? इस काठ की लेखनी के भी आँसू नहीं रुकते !

हाय ! एक दिन भारतीय चिकित्सा-शास्त्र ने दुनियाँ में सर्व्वोच्च आसन ग्रहण किया था और आज उसे सबसे नीचा आसन भी नहीं मिलता। जो यूरोपियन हमें आज अर्द्ध-सभ्य, जङ्गली और मूर्ख बताते हैं ; हमारी चिकित्सा-विद्या की हँसी उड़ाते हुए उसे निकम्मी बताते हैं, उनके पूर्व्व पुरुष जिस ज़माने में सचमुच के वनमानुष थे, अपने रहनेके लिये घर बनाना भी न जानते थे, ज़मीन में जानवरों की तरह भिटे खोद कर रहते थे, उनसे हज़ारों-लाखों वर्ष पहले, बल्कि उनके भी गुरु सभ्यताभिमानी ग्रीस और रोमके सभ्यता सीखने और होश सँभालने से भी बहुत पहले, भारत में ऐसे-ऐसे वैद्यरत्न हो गये हैं, जिन्होंने मनुष्यों के कटे सिर जोड़ दिये हैं, अन्धों को सूझता कर दिया है और बूढ़ों को नौजवान पट्ठा बना दिया है। क्या अश्विनी कुमारों द्वारा ब्रह्मा के कटे सिर के जोड़े जाने की बात निरी

कपोल-कल्पना ही है? क्या इन्द्रका भुजस्तम्भ रोग और चन्द्रमा का क्षय रोग आराम होनेकी बात निरी गप्प ही है? नहीं, हरगिज नहीं; अगर और देशोंकी पुरानी-पुरानी किताबोंकी बातें बिल्कुल मिथ्या है, तो हमारे पुराणोंकी बातें भी मिथ्या हो सकती हैं। अगर उनमें लिखी बातें सत्य हैं, तो हमारे यहाँ की बातें भी निस्सन्देह सच हैं। भेद इतनाही है, कि आज भारतका सितारा बुलन्दी पर नहीं है, आज इसके दिन अच्छे नहीं हैं, आज इसकी दशा गिरी हुई है, इसीसे सारी बातें झूठी हैं। पर सत्य कभी छिपाये नहीं छिपता, इसी से सत्यवादी पक्षपात-शून्य यूरोपीय विद्वानों ने भी आयुर्वेद के गौरव की बात मुक्तकंठ से स्वीकार की है।

जबतक भारतमें विदेशियों का पदार्पण नहीं हुआ, तब तक भारतीय चिकित्सा-विद्या दिन-दूनी रात-चौगुनी उन्नति करती रही। उनके आगमन से ही इसकी अवनति का सूत्रपात हुआ। जबसे भारत के अन्तिम हिन्दू-सम्राट् दिल्लीश्वर महाराज पृथ्वीराजका पतन हुआ, और मुसल्मान-शासन इस अभागे देशमें जारी हुआ, तभी से धीरे-धीरे आयुर्वेदकी अवनति आरम्भ हुई, भारत का अमूल्य रत्न, पृथ्वीका गौरव-स्वरूप, हमारा आयुर्वेद-शास्त्र अवनत अवस्था को प्राप्त होने लगा।

हिन्दू राजाओंके ज़मानेमें आयुर्वेद संसारकी सभी चिकित्सा-विद्याओं की अपेक्षा श्रेष्ठ और भारत-सन्तानोंकी स्वास्थ्यरक्षा का एक-मात्र अवलम्ब था। भारतीय चिकित्सा भारतीय सन्तान की मातावत् हितकारिणी थी। हमारे पूर्व्वज भारतीय चिकित्सा के प्रभावसे ही शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य लाभ करके, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष,—इन चारों पदार्थों की प्राप्ति करते थे; और आज-कल की अपेक्षा दीर्घजीवी, बली एवं नीरोग होते थे। प्रथम तो आयुर्वेदकी रीतिपर चलने से कोई रोगी होता ही न था; यदि होता भी था, तो वह सहज ही में आरोग्य लाभ करता था और फिर

उसे जन्म-भर उस रोग के दर्शन न होते थे। आजकल की तरह उस ज़मानेमें रोगियों और डाकृरों की भरमार न थी।

उस ज़मानेमें आजकलकी तरह यहाँ वालोंको किसी भी रोग में विदेशी चिकित्सा का आश्रय न लेना पड़ता था, क्योंकि आयुर्वेद-विद्या पूर्ण थी। गाँव-गाँव में आयुर्वेदीय पाठशालायें थीं, इसलिये सद्-वैद्यों का अभाव न था। यहाँ की जड़ी बूटियों से अल्प प्रयास और कम खर्चमें ही रोगी रोगमुक्त हो जाते थे। यहीं से हज़ारों औषधियाँ अरब, ईरान और रूम होकर यूनान और इटली में पहुँचती थीं और वहाँ से स्पेन, फ्रान्स, इङ्गलैण्ड और जर्मनी में फैल जाती थीं। वहाँ से उनके एवज़ में प्रभूत धन भारत में आता था। उसी ज़माने में यह भारत-वसुन्धरा पृथ्वीका स्वर्ग थी।

मुसल्मानी ज़माने में मुसल्मान हकीमों की क़दर हुई और भारतीय वैद्योंकी बे-क़दरी हुई। उनका मान बढ़ा, इनका मान घटा। जगह-जगह उन्हीं की पूछ होने लगी। अज़ख़र, अफ़्तयून गावज़ुबाँ, गुलेबनफ़शा आदि ने सोंठ मिर्च पीपर आदिके स्थान पर अपना अधि-कार जमा लिया। ज़माने ने एकदम पल्टा खाया, और क्या से क्या हो गया! राजा-प्रजा सभी की नज़रों में आयुर्वेदीय चिकित्सा हेच जँचने लगी। वैद्योंकी रोज़ी मारी गई, हकीमों के पौबारे होने लगे। औषधालय उठ गये, उनकी जगह दवाख़ाने और शफ़ाख़ाने खुल गये। पंसारियों की दवायें मिट्टीकी हाँड़ियों और टाटकी थैलियोंमें पड़ी-पड़ी सड़ने, गलने और पुरानी होने लगीं। काम न पड़नेसे पंसारी बेचारे उनके नाम तक भूलने लगे। पंसारियों का रोज़गार अत्तारों ने छीन लिया। जहाँ देखो वहीं तुख़मखतमी, गुलेनीलोफ़र, गुलेबनफशा की चर्चा होने लगी। इतने पर भी ख़ैर यह हुई कि, आयुर्वेद पर से लोगों का विश्वास एक दम ही उठ न गया। उस ज़माने में भी सम्राट् कुल-तिलक अकबर जैसे पक्षपातहीन प्रजावत्सल बादशाह आयुर्वेद की क़दर करते थे और अपने दरबारमें विद्वान् वैद्योंको रखते थे। इसीसे

आयुर्वेद-विद्याकी मृत्यु नहीं हुई, वह जीवित वनी रही। हाँ उसका वह पूर्व्व गौरव, उसकी वह महत्ता न रही।

मुसलमानोंके अत्याचारी शासनका अन्त होने पर—न्यायप्रिय, प्रजावत्सला ब्रिटिश गवर्नमेण्ट इस देश की मालिक हुई। ब्रिटिश-शासन में अँगरेज़ों ने हमारे शास्त्रों का अँगरेज़ी भाषामें उल्था करवाया। इङ्गलैण्ड-निवासियों ने अविश्रान्त परिश्रम और उद्योग से अच्छे-अच्छे रत्न चुन लिये और अपनी चतुराई से उनका रूपान्तर करके, उन्हें पहलेसे उत्तम बना दिया। यहाँ से ही हज़ारों दवायें विलायत लेजा-लेजाकर, उनके सत्त, पौडर, गोली, टिंचर, तेल प्रभृति बना-बनाकर, उनको मनोमुग्धकारिणी शीशियों और डिब्बियोंमें बन्द करके, उनके ऊपर रङ्गीन लेवल और विधानपत्र लगा-लगाकर यहाँ भेजने लगे। इसमें शक नहीं, कि उन्होंने यह काम बड़े कठिन परिश्रम और अध्यवसायसे किया; इस लिये वे किसी प्रकार से दोष-भागी नहीं। यह तो मनुष्य का धर्म्म ही है। दोष-भागी हम और हमारे पिछली सदी में होने वाले पूर्व्व-पुरुष हैं, जो आलसी की तरह हाथ पर हाथ धरे बैठे देखा किये। अब जब कि रोग एकदम असाध्य हो गया, तब आँखें खुली हैं और अब आयुर्वेदकी उन्नति-उन्नति कह कर लोग चिल्लाने लगे हैं। मगर अब चूँकि रोगने घर कर लिया है, इसीलिये वह सहज में जा नहीं सकता।

अब क्या दशा है? सुनिये,—जगह-जगह ख़ैराती अस्पताल खुल गये हैं। मुफ़्तमें इलाज होता है; साधारण रोग सहज में आराम हो जाते हैं। दवाओंके कूटने-पीसने और काढ़े वगैरः के औटाने-छानने की दिक़्क़त मिट गयी है। इसी से अब सब लोग उधर ही ढल पड़े हैं। अस्त्र-चिकित्सा में डाक्टरों के हाथ की सफाई देख कर तो यहाँ के लोगोंने डाक्टरोंको धन्वन्तरि का बाबा ही समझ लिया है। सबको यह विश्वास हो गया है, कि यूरोपीय चिकित्सा के मुक़ाबले में आयुर्वेदीय चिकित्सा कोई चीज़ नहीं।

जिन्होंने अङ्गरेज़ी पढ़ी है, जिन्होंने विद्वत्ता-सूचक डिग्रियाँ प्राप्त की हैं, जो वकील, बैरिस्टर और जज प्रभृति हो गये हैं, वे भारतवासी हिन्दू-सन्तान होने पर भी, आयुर्वेद-चिकित्सा को हिक़ारत की नज़रसे देखते हैं और यूरोपीय चिकित्सा का आदर करते हैं। ज़रा-ज़रासे रोगों में, जिन्हें पहले यहाँ की स्त्रियाँ भी आराम कर लेती थीं, डाक्टरों को ही बुलाते और उनकी मुट्ठियाँ गर्म करते हैं। यह सब उन्हें स्वीकार है, पर वैद्य महाशय की शकल देखना मंज़ूर नहीं। इन बड़े-बड़ों की देखा-देखी साधारण लोगों का झुकाव भी उधर ही हो गया है। उन्हें भी आयुर्वेदीय चिकित्सा अच्छी नहीं लगती। अब शहरों के रहने वाले पन्द्रह आने लोग डाक्टरी इलाज कराते हैं। जो पहले विलायती दवाओं से कोसों दूर भागते थे, जो प्राणों के कण्ठ में आ जाने पर भी मद्य मिश्रित दवा खाना पसन्द न करते थे, वे भी आज-कल शराब मिली हुई दवायें गटागट पीते और चरबी-मिश्रित मर-हमों को शरीर पर लगाते नहीं हिचकते। अब सोडावाटर और लेमनेड बिना तो उनकी रोटी ही नहीं पचती। ज़रा खाँसी बढ़ी कि, 'काडलिवर आयल' पीना शुरू किया।

नतीजा यह हुआ, कि वैद्योंका रोज़गार बिल्कुल मारा गया। जिनके घरोंमें पीढ़ियों से चिकित्सा-व्यवसाय होता था, वे भी अब पेट भरने के लिये खेती, दूकानदारी और नौकरी करके अपना और अपने परि-वार का पेट पालने लगे। जुलाहों ने जिस तरह देशी कपड़े की पूछ न होने से कपड़ा बिनना छोड़ कर दूसरा धन्धा कर लिया, छीपियोंने छींट रँगना छोड़ दिया; उसी तरह पूछ न होने से, ग्राहकों के न मिलनेसे, पेट-भराई न होने से, वैद्यों ने निरुत्साहित होकर अपना पुश्तैनी धन्धा त्याग दिया। जिस धन्धेमें लाभ नहीं होता, जिस रोज़गार से कुटुम्ब परिवार का पालन नहीं होता, उसे कोई भी नहीं करता।

जिस ज़मानेमें भारतमें आयुर्वेदकी तूती बोलती थी, यहाँ लाखों पंसारियोंकी दूकानें अव्वल दर्जे की थीं; उनके यहाँ हर तरह

की उत्तमोत्तम औषधियाँ हर समय तैयार मिलती थीं। वे लोग रोज़-रोज़ काम पड़ने से दवाओं के नाम, रूप और गुण जानने में आजकलके अधिकांश वैद्योंसे अच्छे होते थे। वैद्य लोग जिनके यहाँ अच्छी और ताज़ी चीज़ें मिलती थीं, उन्हीं के यहाँ अपने नुसख़े भेजते थे। जो पसारी पुरानी और सड़ी-घुनी दवाएँ रखते थे, उनसे वे क़तई सम्पर्क न रखते थे, इससे पसारियों का धन्धा मारा जाता था। इस भय के मारे वे सदा आयुर्वेद के नियमानुसार नयी पुरानी जैसी-जैसी दवाएँ रखनी चाहिएँ, वैसी-ही-वैसी रखते थे। अब पंसारी वैसा काम नहीं करते। काम न पड़ने से दवाओं के नाम और रूप गुण आदि भूलते जाते हैं। नयी-पुरानी का तो उन्हें ख़याल ही नहीं। पाँच वरस हो जायँ, चाहे एक युग हो जाय, जब तक हाँड़ी या थैली में दवा रहती है वेचते रहते हैं। अनेक वार एक के बदले में दूसरी दवा दे देते हैं। प्रथम तो बेचारोंको रोज़-मर्रः काम में आनेवाली सोंठ, मिर्च, हल्दी, असगन्ध आदि सौ-पचास दवाओं के सिवा नाम ही याद नहीं। यदि किसी को याद भी होते हैं, तो वह इच्छित औषधि के अभाव में, ग्राहक के मारे जाने के भयसे, दूसरी ही कोई चीज़ सिर चेप देता है, क्योंकि वैद्य महोदय को तो स्वयं दवा की पहचान नहीं। पहलेके वैद्य चिकित्सा-के काम में आने वाली प्रत्येक जड़ी-बूटी को भली भाँति पहचानते थे, स्वयं जङ्गलों में जाकर ले आते थे; इसलिये पसारी भी उनसे डरते थे। परन्तु आज-कल के अधिकांश वैद्य पसारियों से भी गये-बीते होते है। ये लोग पुस्तकों से नुसख़े लिख कर ले जाते हैं और पसारी से कहते हैं, भाई ठीक-ठीक दवा देना। पसारी दो चार वार में वैद्य जी के औषधि-ज्ञान की थाह ले लेता है और फिर मनमानी करने लगता है। कहिये, ऐसी दवायें क्या रोगों को आराम कर सकती हैं? ऐसी-ऐसी वातों से ही आयुर्वेद बदनाम होगया है। जब असल हथियार की यह दशा है, तब चिकित्सा में सफलता

कैसे हो? सभी जानते हैं, कि जिसके पास अच्छे-अच्छे हथियार होते हैं, वही शत्रु को युद्ध में परास्त कर सकता है।

आजकल की वैद्यक-शिक्षा सिवा चन्द आयुर्वेद-विद्यालयों के, बिल्कुल निकम्मी होती है। "अमृत-सागर" या "वैद्य जीवन" को गुरु से पढ़ कर या स्वयं देख कर अनेक वैद्य बन जाते हैं। भला ऐसे वैद्य इस कठिन काम में कैसे सफलता प्राप्त कर सकते हैं? चिकित्सा करना बड़ी होशियारी और ज़िम्मेवरी का काम है। वैद्य की शरण में आये हुए रोगी का जीवन-मरण वैद्य की चिकित्सा-चातुरी पर ही निर्भर है। इसलिये पहले ज़माने के विद्वान् चिकित्सातत्त्व-मर्मज्ञ वैद्य उत्तमोत्तम शिष्यों को इस विद्या की शिक्षा देते थे। जिन मनुष्योंके स्वाभाव में सहृदयता, दयालुता, परोपकारिता न देखते थे, उन्हें अपने पास तक न फटकने देते थे। धर्मभीरु विद्वानों को अपना शिष्य बनाकर, उनसे अनेक प्रकार की प्रतिज्ञायें कराकर और स्वयं निष्कपट भाव से विद्या पढ़ने की प्रतिज्ञा करके, शिष्योंको आयुर्वेद की शिक्षा देते थे। उन्हें शास्त्रों को पढ़ाते, व्याख्यान देते, एक-एक विषय को खोल-खोल कर समझते, उनकी शङ्काओं का समाधान करते और औषधियों की पहचान कराने के लिये उन्हें अपने साथ जङ्गल-पहाड़ों में ले जाते थे। अस्त्र-चिकित्सा सिखाते समय ख़रबूज़े तरबूज़ आदि फलों पर चीर-फाड़ करना सिखाते थे। इस तरह परिश्रम करनेसे जब शिष्य आयुर्वेद में पारदर्शी हो जाता था वनौषधियों के नाम, रूप और गुण के पहचानने में परिपक्व हो जाता था, शल्य शालाक्य और काय-चिकित्साके सर्वाङ्ग सीख लेता था, दवाओं का बनाना अच्छी तरह जान जाता था, चिकित्सा-कर्म में अनुभवी हो जाता था, हस्तक्रिया में निपुण हो जाता था, तब गुरु महाशय उसकी परीक्षा लेकर, उसे चिकित्सा-कर्म में हाथ डालने की आज्ञा देते थे। शिष्य भी जबतक पूर्ण पण्डित और अनुभवी न हो जाता था, गुरुका पीछा न छोड़ता था। दास से भी अधिक गुरु महाशय की

सेवा-टहल और खुशामद करता था। जब चिकित्सा-कर्म में पूर्ण अभिज्ञता प्राप्त कर लेता था, तब गुरुसे आशीर्वाद लेकर वैद्य का व्यवसाय करता था। कहिये, आजकल वैसे वैद्य-गुरु और शिष्य कहाँ हैं? आज-कल पहले की तरह कौन आयुर्वेद सीखता है और कौन सिखाता है? यदि पहले की पढ़ाईका नमूना कहीं मौजूद है, तो वङ्ग देश में कुछ अवश्य है। वहाँ के लोगों की आयुर्वेद पर कुछ श्रद्धा-भक्ति भी है, पर एक वङ्गाल से सारे भारत का पूरा नहीं पड़ सकता। वङ्ग देश में भी अब वह पुरानी बात नहीं है; दिन-पर-दिन कविराज घटते जाते हैं और मेडिकल हाल और फारमेसियाँ खुलती चली जाती हैं।

यद्यपि अब भी भारत में भिषक्श्रेष्ठ प्राणदाता सद्वैद्यों का नितान्त अभाव नहीं है; तथापि ऐसे पूर्ण वैद्य उँगलियों पर गिने जाने योग्य ही हैं। ऐसे उत्तम वैद्य, इतने लम्बे-चौड़े भारत में, ऊँट की दाढ़ में ज़ीरे के समान हैं। आजकल अधिकता ढोंगी वैद्योंकी है और ऐसे ही वैद्यों ने आयुर्वेदको बदनाम कर रक्खा है। आजकल वैद्य-गुण-युक्त वैद्य कम हैं, किन्तु चरक में लिखे हुए छद्म-चर या ढोंगी वैद्य बहुत हैं। ऐसे ढोंगी वैद्य दो चार तरह के तेल वगैरः बनाना सीख कर, अपने तईं वैद्य कहते हैं। ये लोग गलियोंमें घूमा करते हैं या बजारों में जहाँ जहाँ मनुष्यों का आवा-गमन अधिक होता है बैठे रहते हैं; कुछ ज़िलों की या तहसील की कचहरियों या छोटे-छोटे क़स्बों की धर्मशालाओं में अड्डा जमा लेते हैं। जहाँ किसी को बीमार देखते हैं, ऐसी बातें बनाने लगते हैं, कि कच्ची समझ के लोग इनके फन्दे में फँस ही जाते हैं। इनमें से अनेक तो अमीरों तक पहुँच जाते हैं। बड़े लोगों तक पहुँचनेके लिये ये लोग बड़ी-बड़ी चालाकियों से काम लेते हैं। उनके नौकरोंसे मिल जाते हैं, उन्हीं के द्वारा अपनी सिफ़ारिश पहुँचवाते हैं। अमीरोंको बड़े क़ीमती-क़ीमती नुसख़े बतलाते हैं और रुपया वसूल करके स्वयं दवा तैयार करनेका ढोंग रचते हैं। जब उनसे रोगी आराम नहीं होता, रोगीका रोग बढ़ने लगता है, रोगी मरण दशा को

प्राप्त हो जाता है, तब वहाँसे अपना उल्लू सीधा करके चुपचाप नौ दो ग्यारह हो जाते हैं। ऐसे ढोंगियोंका यदि हम सविस्तर हाल लिखें, तो एक अलग पोथा हो जाय; इसलिये हम इतना इशारा ही काफ़ी समझते हैं।

एक प्रकारके ढोंगी वैद्य और होते हैं; जो इन मामूलियों से कुछ अच्छे होते हैं, पर चिकित्सा के नितान्त अयोग्य होते हैं। ये अमृतसागर, वैद्य-जीवन, वैद्यविनोद, योग चिन्तामणि प्रभृति दो चार छोटे-छोटे ग्रन्थोंको इधर-उधर से देख लेते हैं। वैद्योंकी तरह दो चार खरल, सौ-पचास शीशियाँ और डब्बे-डिब्बी तथा अमृतवान आदि रखते हैं। मौक़े-मौक़ेके दो चार श्लोक भी कण्ठ कर रखते हैं। प्रसङ्ग हो या न हो, हर समय उन्हें कहा करते हैं। रोग-परीक्षा इन्हें नहीं आती, मगर डण्डासी नाड़ी ज़रूर पकड़ लेते हैं। नाड़ी-द्वारा रोगका हाल न समझने पर भी, प्रतिष्ठा-भङ्ग होने के ख़यालसे, रोगीसे कुछ पूछते नहीं। अगर रोगी कहता है, कि वैद्यजी! मेरे रोगकी हालत तो सुन लीजिये। रोगीके मुँहसे यह सुनते ही आप बिगड़कर फ़रमाने लगते हैं, पूछने बतानेकी कोई ज़रूरत नहीं। हमारे बाबा ऐसे थे, कि रोगी को नाड़ी-मात्र देखकर, रोगी का कितने ही दिनों पहले का खाया-पिया और बरसों पहले मरण-जीवनकी बात कह देते थे। ऐसे वैद्य खूब पुजते हैं, रोगी और उसके सम्बन्धी इन्हें साक्षात् धन्वन्तरि समझने लगते हैं। ऐसे वैद्य महोदय रोगियोंको सीधा यमसदन पहुँचाते हैं। अगर रोग की अवस्था ख़राब देखते हैं, तो ऐसी-ऐसी दवाएँ तजवीज करते हैं, जिन्हें रोगी मुहैया न कर सके या वह आसानीसे न मिल सकती हों। जब रोग आराम नहीं होता, तब कहने लगते हैं, कि हम क्या करें, जब हथियार ही नहीं, तब शत्रुका नाश कैसे हो? यदि दैवात्, किसी तरह रोगमें कमी देखते हैं, तो अपनी तारीफ़ोंके पुल बाँधने लगते हैं और ज़मीन-आस्मानको एक कर देते हैं।

अब जब कि हमारे देशके वैद्योंकी यह हालत है, तब हमारे आयुर्वेदकी बदनामी क्यों न हो? देशी-विदेशी उसकी हँसी क्यों न करें? हाय! सदा अवस्था किसीकी यकसाँ नहीं रहती। जिस तरह दिन-भरमें सूर्य्यकी कई अवस्थायें हो जाती हैं, वैसेही सबकी अवस्थायें बदलती रहती हैं। जिसका उत्थान होता है, उसका पतन भी निश्चय ही होता है। एक दिन जो भारत चिकित्सा, ज्योतिष, गणित, दर्शन प्रभृति विद्याओंमें सब देशोंका सिरमौर था; जहाँ धन्वन्तरि, अश्विनी-कुमार, चरक, सुश्रुत जैसे भिषक्श्रेष्ठ पैदा हुए थे और जो सारे जगत् का गुरु था,—आज उसी भारत और उसकी आयुर्वेद-विद्याकी यह दुर्गति! भगवान् ही जानें, इसके वे दिन कब फिरेंगे?

आयुर्वेदकी उन्नति कैसे हो ?

पीछे हम आयुर्वेदकी अतीत और वर्त्तमान दशाका दिग्दर्शन कर आये हैं। उससे पाठकोंने समझ लिया होगा कि, जो भारतीय चिकित्सा एक दिन आस्मानसे बातें करती थी, आज वही कालके प्रभावसे, भारतवासियोंके अपने दोषसे, रसातलको पहुँच गई है। आयुर्वेद-विद्या हमारी बपौती है, वही हमारे काम आयेगी। कहा है, कि खोटा पैसा और खोटा बेटा बुरे वक्तमें काम आता है। मतलब यह है कि, अपनी चीज़ ही समय पर काम आती है, इसलिये आगा-पीछा सोचकर, हमें अपनी चिकित्सा-विद्याकी उन्नति करनी चाहिये। अगर हम भारतवासी ही इसके उद्धारके लिये प्रयत्नशील न होंगे, तन-मन और धनसे इसकी उन्नतिके लिये मुस्तैद न होंगे; तो और किसे गरज़ पड़ी है, जो इसकी उन्नतिकी फिक्र करेगा ? अगर हम इसी तरह आलस्यमें पड़े रहेंगे, इसकी ओर नज़र उठा कर भी न देखेंगे, तो इसकी अवस्था और भी ख़राब हो जायगी। अभी तो ऐसा कुछ नहीं बिगड़ा है। रोग असाध्य नहीं, किन्तु कष्ट-साध्य है ; भरपूर चेष्टा करनेसे हालतके सुधर जानेकी सम्भावना है। इसलिये हमें कटिबद्ध होकर, इसकी उन्नतिके उपाय खोज निकालने और करने चाहियें।

हमारी छोटीसी अक्लमें, इसकी उन्नतिके, निम्नलिखित चन्द उपाय अच्छे जँचते हैं :—

(१) विलायती दवाओंसे परहेज़ किया जाय और स्वदेशी दवाओंसे प्रेम।

(२) जगह-जगह आयुर्वेद-विद्यालय खोले जायँ।

(३) चिकित्सा-सम्बन्धी ग्रन्थोंका हिन्दीमें—सरल हिन्दीमें—अनुवाद कराकर प्रकाशन कराया जाय।

(४) संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओंमें वैद्यक-परीक्षायें ली जायँ।

(५) जिन वैद्योंने, किसी स्कूलसे या प्राइवेट तौरसे संस्कृत या हिन्दीमें वैद्यक-परीक्षा पास की हो, उन्हींसे इलाज कराया जाय। मूढ़ वैद्योंको पास भी न आने दिया जाय।

(६) वैद्यका धन्धा करनेकी इच्छा रखनेवाले मनुष्य जबतक पूर्ण वैद्य न हो लें, तबतक चिकित्सा-कर्ममें हाथ न डालें; बल्कि ऐसा करनेको घोर पाप समझें।

(७) अगर भारतवासी सचमुच ही आयुर्वेद-विद्या की उन्नति चाहते हैं, भारत से मूढ़ वैद्यों का अस्तित्व ही मिटा देना चाहते हैं; तो उन्हें, चढ़ी उम्रमें भी, आयुर्वेद-ग्रन्थ स्वयं पढ़ने और अपनी सन्तानोंको, और विद्याओंके साथ, अवश्य पढ़वाने चाहिएँ। इससे बड़ा लाभ होगा। वे स्वयँ दीर्घजीवी होंगे एवं रोगों के हमलों और डाकूरों की जेबें भरने से बचेंगे। सब से बड़ा लाभ यह होगा, कि सभी के थोड़ी-बहुत वैद्य विद्या पढ़ने और जानने से मूर्ख वैद्यों का नाम ही भारत से उठ जायगा। पहले के ज़माने में, प्राय: सभी धनी लोग इस विद्या को पढ़ते थे। जब से यह चाल उठ गई, भारत में मूढ़ वैद्य बरसाती मेंडकों की तरह पैदा होने लग गये। धन्यवाद है, भगवान् कृष्णचन्द्र को कि, इस "चिकित्सा चन्द्रोदय" के निकलने से, अब, पचास फी सदी अल्प व्यवसाय करने वाले धनी और ग़रीब लोग भी फिर घर बैठे आयुर्वेद पढ़ने लगे।

आयुर्वेदका पढ़ना सभी के लिये हितकर है।

मनुष्यमात्रको थोड़ा या बहुत चिकित्सा-विद्या का अभ्यास अवश्य ही करना चाहिये। क्योंकि चिकित्सा शास्त्रके पढ़नेसे दीर्घायु प्राप्त करनेके उपाय, असमयकी मृत्युसे बचनेके उपाय, सदा निरोग या तन्दुरुस्त रहनेके नियम, रोग हो जानेपर रोगोंके नाश करनेके उपाय प्रभृति हज़ारों जानने-योग्य विषय मनुष्यको मालूम होते हैं। जो आयुर्वेद-विद्यासे बिल्कुल कोरे रहते हैं, यहाँ तक कि दिनचर्य्या और रात्रि-चर्य्या भी नहीं जानते, वे निश्चय ही अपनी अज्ञानताके कारण सदा रोगोंके फन्देमें फँसे रहते और थोड़ी उम्रमें ही मर जाते हैं; लेकिन जो लोग थोड़ी-बहुत आयुर्वेद-विद्या सीख लेते हैं, आयुर्वेदके नियमोंका पालन करते हैं, वे रोगोंसे सदा बचे रहते और लम्बी उम्र तक जीते तथा अपना और पराया दोनोंका भला करते हैं। जहाँ वैद्य नहीं होता, वहाँ रोग होनेपर अपनी और अपने पड़ोसीकी जीवन-रक्षा करते हैं।

शास्त्रमें मनुष्यकी एकसौ एक मृत्युयें लिखी हैं। उनमें से एक मृत्यु तो सभीका संहार करती है। उससे कोई भी किसीको बचा नहीं सकता और न न स्वयंही बच सकता है; लेकिन और मृत्युएँ जो आगन्तुक कारणोंसे होती हैं, उनसे वैद्य मनुष्यको बचा सकता है। जब आयुर्वेदके जाननेवाला औरोंकी रक्षा कर सकता है, तब स्वयं भी

सावधान रहनेसे बच सकता है और यदि कारण उपस्थित हो ही जाय, तो अपनी रक्षा भी कर सकता है। इसके सिवा आयुर्वेदके जाननेवाला, किसी अवस्था में भी, जीविका बिना भूखा नहीं मर सकता। आफत-मुसीबत, देश-परदेश, ग्राम और नगर में, हर कहीं, हर हालत में, वह अपनी और अपने साथियों की जीविका का उपाय कर सकता है। इस विद्याका पढ़ना किसी दशामें भी व्यर्थ नहीं होता। देखिये शास्त्र में लिखा है: -

आयुर्वेदोदितां युक्तिं कुर्वाणा विहिताश्रये।
पुण्यायुर्वृद्धिसंयुक्ता नीरोगाश्च भवन्तिते॥
क्वचिदर्थः क्वचिन्मैत्री, क्वचिद्धर्मः क्वचिद्यशः।
कर्माभ्यासः क्वचिच्चेति, चिकित्सा नास्ति निष्फला॥

जो आयुर्वेद और धर्मशास्त्रकी युक्तियोंके अनुसार चलते हैं, उनको रोग नहीं होते और उनके पुण्य और आयुकी वृद्धि होती है। चिकित्सा करनेसे कहीं धनकी प्राप्तिहोती है, कहीं मित्रता होती है, कहीं धर्म होता है, कहीं यश मिलता है और कहीं क्रिया करने से अभ्यास बढ़ता है; किन्तु वैद्यक-विद्या कभी निष्फल नहीं होती। और भी कहा है:—

न देशो मनुजैर्हीनो, न मनुष्यो निरामयाः।
ततः सर्वत्र वैद्यानां, सुसिद्धा एव वृत्तयः॥

ऐसा कोई देश नहीं जहाँ मनुष्य न हों, और ऐसा कोई मनुष्य नहीं, जिसे रोग नहीं होता हो, इसलिये वैद्योंकी आजीविका सर्वत्र सिद्ध है।

जबकि और विद्यायें निष्फल हो जाती हैं, उनके पढ़नेसे अनेक बार कोई लाभ नहीं होता, दस-दस और बारह-बारह वर्ष पढ़ने, ढेर धन स्वाहा करने और जने-जनेकी खुशामद करने पर भी पेट नहीं भरता; तब लोग इसी विद्याको क्यों न पढ़ें, जो हर हालतमें सुखदायक और फलप्रद है। वैद्योंकी सभी जगह ज़रूरत रहती है। घरके ही काम करने लायक़ हों, तो अपनी कड़ी कमाईका धन ग़ैरोंको क्यों दिया जाय?

कौन-कौन वर्ण आयुर्वेद पढ़ सकते हैं ?

अब इस बात पर विचार करना है कि, कौन-कौन वर्ण या जाति के लोग आयुर्वेद पढ़ने के अधिकारी हैं और कौन-कौन वर्ण या जातिके नहीं। समय को देखते तो, हमारी समझमें, हर कोई आयुर्वेद पढ़ सकता है। अगर यह बात न भी मानी जाय, तोभी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य,—इन तीन वर्णोंके लिए तो शास्त्र में आयुर्वेद पढ़ने की खुली आज्ञा है ? देखिये, "सुश्रुत"में लिखा है :—

> ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानामन्यतममन्वय । वयः
> शीलशौर्य्य शौचाचार विनय शक्तिबल मेधा
> धृति स्मृति मति प्रतिप्रत्तियुक्तं तनु जिह्-
> वौष्ट दन्ताग्र मृजु वक्राक्षिनासं प्रसन्नचित्त
> वाक् चेष्टं क्लेशसहं च भिषक् शिष्यमुपनयेत् ॥

शिक्षा देने वाला वैद्य—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और इन तीन वर्णोंसे पैदा हुई अनुलोमज जातियोंको आयुर्वेद सिखा सकता है; किन्तु जिसे पढ़ानेके लिये चुने, उसमें इतनी बातें अवश्य देख ले—उसका वंश उत्तम है कि नहीं; वह पुरुषार्थी, पवित्र, सदाचारी, विनयी, सामर्थ्यवान् और बलवान् है कि नहीं; उसमें बुद्धि, धीरज स्मरण-शक्ति, विचार-शक्ति और विद्वत्ता है कि नहीं; उसकी जीभ, उसके होठ, और उसके दाँतोंके अगले हिस्से पतले है कि नहीं, उसका चित्त, उसकी वाणी और उसकी चेष्टायें अच्छी हैं कि नहीं; अर्थात् अगर देखे, कि पढ़नेवाले ने अच्छे कुल में जन्म लिया है, उसकी उम्र कठिन आयु-

वेदके पढ़ने-समझने-योग्य है; वह पुरुषार्थी, पवित्र, सदाचारी, सामर्थ्यवान् बलवान्, बुद्धिमान्, धैर्य्यवान्, पढ़ी हुई बात को याद रख सकनेवाला, प्रत्येक बात पर विचार और विवेकसे तर्क-वितर्क करनेवाला है; उसकी जीभ, उसके होठ और दाँतोंके अग्रभाग पतले हैं; उसका चित्त स्थिर है, उसकी वाणी सुन्दर है; उसकी चेष्टायें उत्तम हैं और वह पढ़नेके कष्ट को सह सकेगा। यदि इतने लक्षण हों, तो उसे वैद्यके आयुर्वेद पढ़ावे।

और भी देखिये, शूद्रके लिये भी आयुर्वेद पढ़ाने की आज्ञा है :—

शूद्रमपि कुलगुणसम्पन्नं मन्त्रवर्ज्यमनुपनीतमध्यापयेदित्येके।

लिखा है कि, अच्छे कुलमें पैदा हुए गुणवान शूद्रको भी, बिना उपनयन-संस्कार कराये, वेदका मन्त्र-भाग छोड़कर, आयुर्वेद पढ़ाया जा सकता है।

कहिये, अब तो चारों वर्णोंको आयुर्वेद पढ़ानेका अधिकार है, इस बात में कोई संशय नहीं रहा। प्रत्येक मनुष्यको आयुर्वेद पढ़ना ज़रूरी है; इसीसे ऋषियों ने किसी भी वर्ण को इस विद्या के पढ़ने से महरूम नहीं रक्खा।

आयुर्वेद पढ़ने और पढ़ानेवालों के ध्यान देने योग्य बातें।

चिकित्सा-शास्त्र सब शास्त्रोंसे कठिन है, इसलिये इसके पढ़नेमें बड़ी सख़्त मिहनत और चतुराई की ज़रूरत है। आयुर्वेद पढ़नेकी इच्छा रखनेवालेको पहले हिन्दी और संस्कृतका पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये ; अथवा जो लोग हिन्दीमें आयुर्वेद पढ़ें, उन्हें हिन्दी में और जो लोग संस्कृत में पढ़ें उन्हें दोनों में पूर्ण योग्यता प्राप्त कर लेनी चाहिये। दोनोंमेंसे एक या दोनों भाषाओंमें पूर्ण अभिज्ञता प्राप्त किये बिना, आयुर्वेद सीखा जा नहीं सकता। आयुर्वेदका पढ़ना बालकोंका खेल नहीं है ; इसलिये इसके पढ़नेमें परिश्रमसे जी न चुराना चाहिये। जो लोग परिश्रम से जी चुराते हैं, सुख या आरामकी अभिलाषा रखते हैं, उन्हें कोई भी विद्या पूर्ण रूपसे प्राप्त नहीं हो सकती, जिसमें आयुर्वेदका आना तो नितान्त असम्भव ही है। जिससे आयुर्वेद सीखा जाय, उसके सामने हँसने, बकवाद करने और अन्यान्य प्रकारके ऐब या चपलता प्रभृतिसे सदा दूर रहना चाहिये। गुरुसे सदा निष्कपट व्यवहार रखना चाहिये, भूलकर भी धोखेबाज़ी करना या छल-छिद्रोंसे काम लेना उचित नहीं। गुरुमें सच्ची भक्ति और श्रद्धा रखनी चाहिये एवं तन-मन धन से गुरुकी सेवा करनी चाहियें। सदा ऐसे कर्म करने चाहियें, जिनसे शिष्य के प्रति गुरु का प्रेम दिन-ब-दिन बढ़े क्योंकि यह विद्या गुरु की

पूर्ण कृपा बिना नहीं आती। गुरुको भी अपने भक्त, विनयी और सदाचारी शिष्यको निष्कपट भावसे दिल खोल कर, अपनी सामर्थ्य-भर, चिकित्सा-शास्त्र पढ़ाना चाहिये। देखिये, प्राचीन काल के वैद्य गुरु किस तरह की प्रतिज्ञा करके अपने शिष्योंको पढ़ाते थे। गुरु महोदय कहते थे—

> अहं वा त्वयि सम्यः वर्त्तमाने यद्यऽन्यथा-
> दर्शी स्यामेनोभाग्भवेयमफला विद्यञ्च ॥

"तेरे अच्छा वर्ताव करने पर भी, यदि मैं तुझे अच्छी तरह न पढ़ाऊँ, तो मैं पापका भागी होऊँ और मेरी विद्या निष्फल हो।" आजकल ऐसे गुरु दुर्लभ हैं।

आयुर्वेद पढ़नेवाले को आयुर्वेद का प्रत्येक अङ्ग भली भाँति पढ़ना चाहिये। प्रत्येक अङ्ग ही नहीं, छोटी-से-छोटी परिभाषा को भी बिना अच्छी तरह समझे और याद किये न छोड़ना चाहिए। तोताकी तरह रटना अच्छा नहीं; प्रत्येक बात गुरुसे पूछ कर अच्छी तरह समझनी चाहिए; बिना समझे ढेरका ढेर पढ़ने से कोई लाभ नहीं। "सुश्रुत"में कहा है।

> यथाखरश्चन्दनभारवाही भारस्यवेत्ता न तु चन्दनस्य।
> एवं हि शास्त्राणि बहूनधीत्य चार्थेषु मूढ़ाः खरवद वहन्ति ॥

चन्दनका बोझा उठाने वाला गधा केवल भारकी बात जानता है, किन्तु चन्दन और उसके गुणोंको नहीं जानता, इसी तरह जो बहुतसे शास्त्रों को पढ़ लेते हैं, किन्तु उनके अर्थोंको नहीं समझते, वे गधेकी तरह भार उठाने वाले होते हैं।

आजकलके वैद्योंकी तरह एकाध शास्त्र पढ़कर ही विद्यार्थी को सन्तोष न कर लेना चाहिये। वैद्यक-विद्या पढ़नेवाला जितने ही शास्त्र अधिक पढ़ेगा, उसे चिकित्सा-कर्ममें उतनी ही अधिक सफलता होगी। कोई भी मनुष्य केवल एक या दो ग्रन्थ पढ़ लेने से चिकित्सा करनेके योग्य नहीं हो जाता, क्योंकि एकही शास्त्रमें सारी बातें नहीं

लिखी होतीं। यों तो सभी शास्त्रों में एकही तरह की बातें हैं, फिर भी जो एकमें नहीं हैं वह दूसरे में है और जो दूसरेमें नहीं है वह तीसरे में है। इसीलिये प्रत्येक शास्त्रका पढ़ना आवश्यक है। देखिये, इस विषयमें सुश्रुत महाशय कैसी अच्छी सलाह देते हैं। वे कहते हैं:—

एकशास्त्रमधीयानो न विद्याच्छास्त्र निश्चयम्।
तस्माद् बहुश्रुतः शास्त्रं विजानीयाच्चिकित्सकः॥
शास्त्रं गुरुमुखोदगीर्णमादायोपास्य चाऽसकृत।
यः कर्म कुरुते वैद्यः स वैद्योऽन्ये तु तस्कराः॥

जो मनुष्य एक शास्त्रको पढ़ लेता है, वह शास्त्रके निश्चय को नहीं जान सकता ; किन्तु जो बहुतसे शास्त्रों को पढ़ता और सुनता है, वही चिकित्साके मर्मको समझता है। जो मनुष्य गुरुके मुख से पढ़े हुए शास्त्र पर बारम्बार विचार करता है और विचार कर काम करता है वही वैद्य है ; उसके सिवा और सब चोर हैं।

विद्यार्थीको रोग-परीक्षा और औषधि-विज्ञान दोनों विषय खूब अच्छी तरह सीखने चाहियें। जिस वैद्यको रोगोंके निदान-कारण, पूर्व्वरूप, रूप, उपशय और सम्प्राप्ति—इन पाँचों का भली भाँति ज्ञान नहीं होता, वह वैद्य दवा करना जानने पर भी दो कौड़ी का होता है। जिन वैद्यों को रोगकी पहचान नहीं, जिन हकीमोंको मर्ज़की तशख़ीस नहीं, वह हरगिज़ कामयाब नहीं होते ; उन्हें चिकित्सा में सफलता नहीं होती। यह दृढ़ निश्चय है कि, रोग-परीक्षा में निपुण हुए बिना, वैद्यको सफलता हो ही नहीं सकती। मान लो, कहीं भूलमें लठ्ठ लग ही गया, किसी तरह सफलता हो ही गयी, तोभी अधिकांश स्थलोंमें असफलता ही होगी। रोगको न समझने वाले वैद्यके हाथमें जाकर हज़ारों रोगियोंके रोग असाध्य हो जाते हैं ; हज़ारों रोगियोंके प्राण असमयमें ही नाश होते हैं। इसी से कहा है कि, आयुर्वेदमें "रोग-परीक्षा-विद्या" मुख्य है ; उसका जानना परमावश्यक है। शास्त्रोंमें कहा है।

यस्तु रोगमविज्ञाय, कर्माण्यारभते भिषक्।
अप्यौषध विधानज्ञस्तस्य सिद्धिर्यदृच्छया॥
भेषजं केवलं कर्त्तुं यो जानाति न चामयम्।
वैद्यकर्म स चेत कुर्याद्वधमर्हति राजतः॥

जो वैद्य औषधियोंके प्रयोगकी विधि यानी दवा देनेकी रीति तो जानता है, किन्तु रोगोंको नहीं पहचानता ; लेकिन बिना रोगके पहचाने ही चिकित्सा करना आरम्भ कर देता है, उसे कभी सफलता हो जाती है और कभी नहीं होती।

जो मनुष्य केवल औषधि देना जानता है ; किन्तु रोगोंको नहीं पहचानता ; अगर ऐसा मनुष्य चिकित्सा-कर्म करे, तो राजाको उसे प्राणदण्डकी सज़ा देनी चाहिये।

देखिये, हिन्दू राजाओंके राज्यमें मूढ़ वैद्यों के लिये कैसी-कैसी कठोर सज़ाएँ मुक़र्रर थीं ; इसीसे उस ज़माने में मूढ़ वैद्य न होते थे। यहुतही ठीक बात है। वैद्यको रोग-परीक्षामें अवश्य निपुण होना चाहिये। क्योंकि जिस तरह तीर या गोली चलाने वालेका काम पहले शिस्त लगाना और पीछे गोली मारना है ; उसी तरह वैद्य का काम सब से पहले रोगका निर्णय करना और पीछे दवा देना है। यदि निशानेबाज़ बिना निशाना ठीक किये ही गोली छोड़ेगा, तो कदाचित ही गोली निशाने पर लगेगी ; किन्तु यदि वह निशाना ठीक करके गोली चलावेगा, तो गोली ठीक निशाने पर लगेगी, कभी वार ख़ाली न जायगा। इसी तरह वैद्य यदि रोगीके रोगको अच्छी तरह समझ कर दवा देगा, तो निश्चय ही उसे सफलता होगी। 'रोग-परिक्षा' वैद्य के कामों में मुख्य है। इसीसे शास्त्रमें पहलेही रोग-परीक्षा करना मुख्य लिखा है। कहा है ;—

रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम्।
ततः कर्म भिषक् पश्चात् ज्ञानपूर्वं समाचरेत्॥
यस्तु रोगविशेषज्ञः सर्वभैषज्य कोविदः।
देश-कालप्रमाणज्ञस्तस्य सिद्धिरसंशयम्॥

वैद्य को उचित है कि पहले रोग की परीक्षा करे, पीछे औषधि की परीक्षा करे, जब रोग और औषध दोनोंकी परीक्षा कर चुके, तब ज्ञानपूर्वक चिकित्सा करे।

जो वैद्य रोगोंके भेदोंको जानता है, जो वैद्य सब तरहकी दवाओंको जानता है, जो देश-काल और मात्राके प्रमाणको जानता है, उसकी सिद्धि अवश्य होती है।

रोगको पहचानना मर्ज़की तशख़ीस करना, बड़ा कठिन काम है। बाज़-बाज़ मौक़ोंपर अच्छे-अच्छे अनुभवी वैद्य इस काममें चक्कर खा जाते हैं। इसीलिए शास्त्रकारोंने रोग पहचाननेके बहुतसे तरीके लिखे हैं :—

(१) आप्तोपदेश यानी शास्त्रोपदेश से।

(२) प्रत्यक्ष ज्ञान-द्वारा।

(३) अनुमान-द्वारा।

किसी ने लिखा है कि देखने, छूने और हाल पूछनेसे ही प्रायः सब रोगोंका ज्ञन हो जाता है, किन्तु सुश्रुतने इसके लिए छै उपाय-लिखे हैं। उन्होंने कहा है :—

(१) कानसे, (२) चमड़ेसे, (३) आँखोंसे, (४) जीभसे, (५) नाकसे —इन पाँचों इन्द्रियोंसे तथा (६) रोगीसे हाल पूछनेसे, रोगोंका ज्ञान हो जाता है। सुश्रुताचार्य्यके बादके विद्वानोंने रोग जाननेका उपाय "नाड़ी-परीक्षा" और निकाला है। इन सब परीक्षाओं की बात हम आगे चलकर अच्छी तरह समझावेंगे। यहाँ तो इतना केवल विद्यार्थीके ध्यान देनेके लिए लिखा है। पहला काम विद्यार्थीका रोगोंके नाम, और उनके रूप प्रभृतिका ज्ञान प्राप्त करना और उनको हर समय कण्ठाग्र रखना है। अगर वैद्यको रोग के लक्षणही याद न होंगे, तो प्रत्यक्ष और अनुमानसे कोई लाभ न होगा।

रोग-परीक्षाके अन्तर्गत और भी कितनी ही परीक्षायें होती हैं; उन सब परीक्षाओंके भी हो जानेपर, रोग-परीक्षा'का काम पूरा होता

है। यहाँ हम चन्द परीक्षाओं की बात विद्यार्थी का औत्सुक्य मिटानेके लिये लिखते हैं। इनको खूब खोल-खोलकर आगे समझावेंगे। यहाँ यही समझाना चाहते हैं कि, चरक के लिखे तीनों उपायों अथवा सुश्रुत के लिखे छै उपायोंसे वैद्यको कौन-कौन परीक्षायें करनी होती हैं। "सुश्रुत" में लिखा है :—

> आतुरमुपक्रममाणेन भिषजायुरेवादौ परीक्षेत् ।
> सत्यप्यायुषि व्याध्यृत्वग्नियो देहबल सत्व
> सात्म्य प्रकृति भेषज देशान् परीक्षेत् ॥

रोगीकी चिकित्सा करनेवालेको पहले (१) आयु, (२) रोग, (३) ऋतु, (४) अग्नि, (५) अवस्था, (६) देह, (७) बल, (८) सत्व, (९) सात्म्य, (१) प्रकृति, (११) औषधि और (१२) देश प्रभृतिकी परीक्षा करके चिकित्सा आरम्भ करनी चाहिये।

पहले आयुकी परीक्षा बड़े मतलबसे लिखी है। इसका मतलब यह है कि, पहले आयुको देखना चाहिये। अगर रोगीकी उम्र मालूम हो, तो इलाज करना चाहिये। अगर रोगीकी उम्रही बाक़ी न हो, तो वैद्यको भूलकर भी इलाज न करना चाहिये ; क्योंकि जिसकी उम्रही पूरी हो चुकी है, उसकी उम्र वैद्य नहीं बढ़ा सकता। वैद्य तो, उम्रके होनेपर, रोगी को रोगमुक्त कर सकता है। कहा है :—

> भिषगादौ परीक्षेत रुग्णस्यायुः प्रयत्नतः ।
> तत आयुषि विस्तीर्णे चिकित्सा सफला भवेत् ॥
> व्याधेस्तत्त्व परिज्ञान, वेदनायाश्च निग्रहः ।
> एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः ॥

वैद्यको पहले यत्नपूर्वक रोगीकी आयु-परीक्षा करनी चाहिये,क्योंकि आयु के दीर्घ होने से ही यानी लम्बी उम्र होने से ही चिकित्सा सफल होती है। रोगके तत्त्व को जानना और रोगीकी तकलीफ को दूर करना,—यही वैद्यका काम है। वैद्य आयुका स्वामी नहीं है, यानी जिसकी आयु नहीं रही है, उसे आयु दे दे, वैद्य में यह सामर्थ्य नहीं है।

जिस तरह रोग-परीक्षामें पण्डित होना आवश्यक है ; उसी तरह औषधियोंके मामलेमें भी पूर्ण जानकारी रखना उचित है। जो वैद्य केवल रोगोंकी पहचान तो जानता है, मगर औषधियोंके मामले में कुछ नहीं समझता, उसे चिकित्सामें कभी सफलता नहीं होती। केवल रोग पहचान लेनेसे ही, विना दवाके, रोगीका रोग निवारण हो नहीं सकता ; इसलिये यदि कोई रोगी ऐसे वैद्यके हाथमें पड़ जाता है, तो वृथा प्राण गँवाता है। कहा है :—

यस्तु केवल रोगज्ञो भेषजेष्वविचक्षणः ।
तं वैद्यं प्राप्य रोगी स्याद् यथा नौर्नाविकं विना ॥

जो वैद्य केवल रोगोंको पहचानता है, किन्तु औषधि करना नहीं जानता, अगर ऐसा वैद्य रोगीकी चिकित्सा करता है, तो रोगी इस तरह विपद्में फँसता है, जिस तरह नाव विना मल्लाहों के विपद् में फँसती है।

औषधियोंके नाम और उनकी पहचान जान लेनेसे ही काम नहीं चल सकता। औषधियोंके गुण, बल, वीर्य्य, विपाक आदि सभी विषयोंमें जानकारी रखनेकी ज़रूरत है। जो औषधियोंके विषयमें इतना भी नहीं जानता, वह वृथा चिकित्सक होनेका ढोंग करता है और प्राणियों की प्राणहानि करता है। "चरक" में लिखा है :—

औषधीर्नाम रूपाभ्यां जानन्ते ह्य जपावने ।
अविपाश्चैव गोपाश्चये चान्ये वनवासिनः ॥
न नाम ज्ञानमात्रेण रूपज्ञानेन वा पुनः ।
औषधीनां परं प्राप्ति कश्चिद्वेदितुमर्हति ॥
योग विन्नाम रूपज्ञस्तासां तत्वविदुच्यते ।
किं पुनर्यो विजानीयादौषधीः सर्वथाभिषक् ॥
योगमासन्त यो विद्या देशकालोपपादितम् ।
पुरुषं पुरुषं वीक्ष्य स विज्ञेयो भिषक्तमः ॥

गाय, भेड़ और बकरी चरानेवाले और जङ्गलमें रहनेवाले जङ्गल में पैदा होनेवाली दवाओंके नाम और रूप जानते हैं, परन्तु मनुष्य औषधियोंके नाम और रूप जाननेसे ही औषधियोंके काममें लानेकी तरकीब

नहीं जान सकता। जो औषधियोंके नाम और रूप एवं उनके काममें लानेकी विधि जानता है, उसे "औषधि-तत्त्वज्ञ" कहते हैं और जो जङ्गलकी जड़ी-बूटियोंके नाम आदि पूरी तरहसे जान कर, उनको देश-काल और व्यक्ति-भेदसे काममें लाता है, उसे श्रेष्ठ वैद्य कहते हैं।

मतलब यह है कि वैद्य-विद्या सीखनेवालेको दवाओंके नाम, रूप, गुण, बल, वीर्य्य, विपाक और प्रभाव आदि अच्छी तरहसे सीखने चाहियें। यह विद्या "निघण्टु" रटने और जङ्गलमें जाकर जङ्गली लोगोंकी सहायतासे जड़ी-बूटियों के देखने से अच्छो तरह आ सकती है। जो वैद्य "निघण्टु" नहीं जानता, उसकी क़दम-क़दम पर हँसी होती है। कहा है:—

निघण्टु विना वैद्यो, विद्वान् व्याकरणं विना।
अनभ्यासेन धानुष्कस्त्रयो हासस्य भाजनम्॥

विना निघण्टु पढ़ा वैद्य, विना व्याकरण पढ़ा विद्वान् और विना अभ्यास का तीरन्दाज़—तीनों अपनी हँसी कराते हैं।

जो कुछ ऊपर लिखा है, उसके सिवा औषधियोंके प्रयोगकी विधि भी सद्वैद्यसे अच्छी तरह सीखनी चाहिये। यदि केवल दवाओंके नाम, रूप, गुण आदि मालूम हों, किन्तु उनके प्रयोग करनेकी रीति न मालूम हो, तोभी अर्थका अनर्थ होनेकी सम्भावना रहती है। यदि तीक्ष्ण विष भी क़ायदे से काममें लाया जाय, तो उत्तम औषधि का काम देता है। यदि उत्तम औषधि भी, बेक़ायदे, ऊटपटाँग रीति से, काम में लाई जाय, तो तीक्ष्ण विष का काम करती है। घृत और मधु दोनों ही परमोत्तम पदार्थ हैं, किन्तु कोई अनजान इन दोनों को समान भाग में मिलाकर काम में लावे, तो ये विषके समान हो जायँगे। इसलिये किसी विद्वान् और अनुभवी वैद्यके पास रहकर, दवा बनाने और चिकित्सा करनेका अभ्यास करना चाहिये। जो मनुष्य पूर्ण रूपसे शास्त्रोंको पढ़ समझ लेता है, और अनेक प्रकारकी अच्छी-अच्छी औषधियाँ तैयार रखता है, तोभी अगर उसने किसीके पास रहकर अपनी आँखोंसे चिकित्सा नहीं देखी, स्वयं अभ्यास नहीं किया, वह बहुधा घबराया करता है। इसलिये चिकित्सा-कर्म अवश्य देखना चाहिये। कहा है :—

यस्तु केवल शास्त्रज्ञः क्रियाष्वकुशलो भिषक्।
स मुह्यति आतुर प्राप्य यथा भीरुरिवाहवमे ॥
यस्तूभयज्ञो मतिमान्समर्थोऽर्थसाधने।
आहवे कर्म निर्वोढु द्विचक्रः स्यन्दनो यथा।
पीया चाराद्यथाऽचक्षुर ज्ञानाद् भीत भीतवत्।
नौर्मारुतवशेवाज्ञो भिषक् चरति कर्मछ।
तस्माच्छास्त्रेऽर्थ विज्ञाने प्रवृतौ कर्म दर्शने।
भिषक् चतुष्टये युक्तः प्राणाभिषर उच्यते ॥

जो वैद्य केवल चिकित्सा-शास्त्रको जानता है, लेकित चिकित्सा करनेमें कुशल नहीं है ; वह रोगीके पास जाकर इस तरह घवराता है, जिस तरह कायर पुरुष लड़ाईमें जाकर घवराता है।

शास्त्र और क्रिया दोनों को पूरी तरहसे जानने वाला वैद्य उसी तरह अपना प्रयोजन सिद्ध कर सकता है ; जिस तरह दो पहियों का रथ युद्धमें अपना काम कर सकता है।

जिस तरह अन्धा, डरके मारे, आगेको हाथ चला-चला कर चलता ह, तूफानके ज़ोर से नाव जिस तरह उलट-पुलट होती या डगमगाती हुई चलती है ; उसी तरह मूर्ख वैद्य घबराकर काम करता है।

जो शास्त्र और शास्त्रके अर्थ को जानता है, जिसने औषधि करनेमें अनुभव प्राप्त कर लिया है, जिसने वैद्यों की चिकित्सा-परिपाटी अच्छी तरह देख ली है, उस वैद्यको "प्राणदाता" कहते हैं।

बहुत लिखनेसे क्या, हमने अनेक बातें विद्यार्थी के जाननेके योग्य ऊपर लिखी है। इतने से ही विद्यार्थी बहुत कुछ समझ सकता है। सारांश यह कि, विद्यार्थीको चिकित्सा-शास्त्रके सब अंग अच्छी तरहसे पढ़ने-समझने चाहिएँ। साथ ही किसी अनुभवी और विद्वान् वैद्यके पास रहकर चिकित्सा-कर्म का अभ्यास करना चाहिये ; तभी वह पूर्ण वैद्य होकर मनुष्योंके इलाजमें हाथ डाल सकता है।

चिकित्सा-कर्म आरम्भ करनेवालोंके लिए उपयोगी शिक्षा।

वैद्य जब तक आयुर्वेद के सब अङ्गों को अच्छी तरह न पढ़ ले ; गुरुके पास रहकर, गुरुके साथ-साथ जाकर चिकित्सा का अभ्यास न करले ; तब तक स्वयं किसीका इलाज न करे।

२ वैद्य को चाहिये कि किसीको अनजानी, बिना आज़माई, दवा न दे ; क्योंकि अनजानी दवा अनेक बार विष, शस्त्र, अग्नि और इन्द्र के वज्र के समान अनर्थ करती है। यदि किसी वैद्य को किसी दवा के नाम, रूप और गुण तो मालूम हों, किन्तु उसके देनेकी विधि न मालूम हो, तो रोगी को भूलकर भी न दे ; क्योंकि अनजानपनसे, बेकायदे, दी हुई दवा बहुधा अनर्थ करती है ; रोगी का रोग बढ़ता है अथवा उसके प्राण नाश होते हैं, और वैद्यका इहलोक और परलोक दोनों में बुरा होता है। इस लोक में बदनामी होती और उस लोक में दण्ड मिलता है।

३ अगर तुमने वैद्यकशास्त्र नहीं पढ़ा है, अगर तुमने गुरुके पास रहकर चिकित्सा का अभ्यास नहीं किया है, तो अपने पेट पालने के लिये ज़बर्दस्ती वैद्य मत बनो। "चरक" में कहा है :—

> वरमाशी विषविषं क्वथितं ताम्रमेव वा।
> पीतमत्यग्नि सन्तप्ता भक्षिता वाप्ययो गुड़ाः॥

नतु श्रुतवतां वेश विभ्रता शरणागतात् ।
गृहीतमन्न पानं वा वित्तं वा रोगपीड़ितात् ॥

साँप का ज़हर पीना अच्छा, गर्मागर्म औटाये ताम्बे का पीना अच्छा, आगमें लाल किये हुए लोहे के गोले का निगलना अच्छा; किन्तु पढ़े-लिखे वैद्यकासा रूप बनाकर, शरण में आये हुए रोगीसे अन्नपान या धन लेना हरगिज़ अच्छा नहीं।

४ अगर आपमें वैद्य के सब गुण हैं, और वैद्य की सम्पद् आपके पास है, तो आप बेखटके मनुष्योंकी प्राणरक्षा कीजिये, क्योंकि वैद्य मनुष्यों का प्राणरक्षक कहलाता है।

अगर आप औषधिका उत्तम रूपसे प्रयोग करेंगे, तो आपको चिकित्सामें सफलता होगी, सफलता होनेसे आपकी नामवरी फैलेगी; नामवरी होने से लक्ष्मी आपके चरणोंमें लोटेगी।

५ अगर आप उत्तम वैद्य होना चाहते हो, तो युक्ति से काम लें; क्योंकि चिकित्साकी सफलता युक्तिके अधीन है। युक्तिके जाननेवाले वैद्य की सदा जय होती है। युक्ति जानने वाला वैद्य औषधि जानने वाले वैद्यों से ऊँचा रहता है। मतलब यह है कि, दवाओं के गुण और रोगों की पहचान जानने से वैद्य उत्तम नहीं हो सकता, किन्तु कुछ ऊपरी युक्तियोंका जानना भी आवश्यक है। जैसे कोई पाचक औषधि किसी रोगी को ढेर सारी एक ही बार खिला देनेवाले वैद्य से, कई बारमें उस औषधि को खिलानेवाला वैद्य उत्तम है। जो वैद्य मूर्खतासे, बिना सोचे-समझे, रोगी को कोई अमृत-समान दवा एक बार ही खिला देगा, उसके रोगी को निस्सन्देह आराम न होगा; उपकार के बदले अपकार होगा। किन्तु जो वैद्य समझ-बूझ कर, रोगीका बलाबल विचार कर, दवाको कई बार में रोगी को देगा; तो दवा अपना चमत्कार दिखावेगी। मान लो, किसी रोगी को ज़ोर से दस्त लग रहे हैं, यदि उस रोगी को एक बार ही एक छटाँक औषधि दे दी जाय; तो वह सारी दवा मलके साथ मिलकर, दस्तोंके साथ निकल जायगी और

कोई लाभ न करेगी। यदि उसी दवा के चार या छै भाग करके, दो दो घण्टे पर दिये जायँ, तो वह पेटमें पचकर दस्तों को बन्द कर देगी। इसी को "युक्ति" कहते हैं। यह किसी के सिखानेसे नहीं आती—अपने-आपही आती है।

६ वैद्य को चाहिये कि, पहले रोगी को दवा की हलकी मात्रा दे। बाज़-बाज़ औक़ात अच्छी दवा भी रोगी के मुआफ़िक़ न होने से फ़ायदेके बजाय उल्टा नुक़सान करती है। जब देखे कि दवाने कोई हानि नहीं की; तब वैद्य दवा की दूनी या ड्यौढ़ी मात्रा कर दे। इस तरह पहले थोड़ी मात्रामें दवा देने और पीछे हानि-लाभ देखकर मात्रा बढ़ा देनेसे कोई उपद्रव भी न होगा और रोगी आराम भी होजायगा। अम्लपित्त-रोगमें 'क्षार' बहुधा लाभदायक होता है; किन्तु अगर वही क्षार अधिक मात्रामें दे दिया जाता है; तो दस्त होने लगते हैं, खट्टी-खट्टी डकारें आने लगती हैं अथवा उदरस्तम्भ हो जाता है। अगर क्षार की मात्रा अधिक न दी जाय, थोड़ी-थोड़ी कई बारमें दी जाय; तो कोई भी उपद्रव न हो और रोग आराम हो जाय। जो वैद्य बुद्धिमान् और युक्तिके जानने वाले होते हैं; वे रोग और रोगी दोनों का विचार करके मात्रा और काल के विभाग से, इलाज करते और सिद्धिलाभ करते हैं। "चरक" में लिखा है :—

मात्राकालाश्रया युक्तिः, सिद्धिर्युक्तौ प्रतिष्ठितः।
तिष्ठत्युपरि युक्तिज्ञो, द्रव्यज्ञानवतां सदा ॥

युक्ति, मात्रा और कालके आश्रय है; और सिद्धि युक्तिके आश्रय है, इसलिये युक्तिवान् वैद्य, दवाओं के ज्ञान रखने वाले वैद्य से श्रेष्ठ होता है।

७ वैद्य, औषधि, सेवक और रोगी, ये चार चिकित्साके पाद हैं; अर्थात् इन चारोंके ठीक होने से रोग शान्त होता है। इन चारोंमें से प्रत्येकमें चार-चार गुण होते हैं :-

शास्त्रमें पारदर्शिता, बहुदर्शिता, चतुराई और पवित्रता—ये वैद्य के चार गुण हैं।

बहुता, योग्यता, अनेक प्रकारके योग-वियोग-पूर्व्वक कल्पना और कीड़े प्रभृति से रहित होना —ये औषधि के चार गुण हैं।

रोगी की सेवा करना जानना, चतुराई, स्वामिभक्ति और पवित्रता,-ये सेवकके चार गुण है।

सब बातों का याद रखना, वैद्यकी आज्ञा का अक्षर-अक्षर पालन करना, निर्भय होना और अपने रोगका यथार्थ हाल कहना—ये रोगीके चार गुण हैं।

इसका मतलब यह है कि, यदि वैद्य, औषधि, सेवक और रोगी में ऊपर कहे हुए गुण हों, तो बहुधा आरोग्यकी ही सम्भावना रहती है। इसलिये यदि वैद्य चारों गुण वाला हो, तो उसे औरोंके गुण देखकर इलाज करना चाहिये ; अर्थात् यदि रोगी की सेवा-शुश्रूषा करनेवाला मूर्ख हो, रोगी वैद्यकी आज्ञा मानने वाला न हो, अपने रोग का ठीक-ठीक हाल कहने वाला न हो, वैद्य का कहा हुआ उसे याद न रहता हो —ऐसे-ऐसे दोष हों, तो वैद्य हरगिज़ इलाज न करे अन्यथा अपयशका पात्र होगा।

भिषक् प्रभृति पादचतुष्टय,—ये सोलह गुण-सम्पन्न होने से रोग और आरोग्यके कारण हैं, परन्तु इन पादचतुष्टयोंमें वैद्य प्रधान है ; क्योंकि उपदेश करना, आगा-पीछा सोचना, दवा देनेकी तरकीब बताना प्रभृति सब काम वैद्यके हैं। जिस तरह रसोइया, रसोई करनेके बर्तन, अग्नि और ईंधन,—इन चारोंसे रसोई तैयार होती हैं ; पर इनमें "रसोईया" ही प्रधान है। यदि रसोइया उत्तम न हो, तो रसोई-कार्य के कारण-स्वरूप—बर्तन, ईंधन और अग्नि ये कितने ही अच्छे क्यों न हों, रसोई हरगिज़ उत्तम न होगी। इसी तरह औषधि, परिचारक (सेवक) और रोगी के अपने-अपने चारों गुण-युक्त होने पर भी, यदि वैद्य अच्छा न हो, तो हरगिज़ आरोग्य लाभ न होगा। इसीलिये वैद्य को प्रधान कहा है। और भी सुनिये,—कुम्हार, चाक, मिट्टी और सूत इन चारोंसे घड़ा बनता है। लेकिन चाक, मिट्टी और

सूत हो ; किन्तु कुम्हार न हो, तो घड़ा नहीं बन सकता ; उसी तरह वैद्यके बिना रोगी, परिचारक और औषधिसे चिकित्सा नहीं हो सकती। मतलब यह निकला कि, सबमें वैद्य ही प्रधान है। उसीका उत्तम होना ज़रूरी है। चिकित्साकी सफलता-असफलता का दारमदार वैद्य पर ही निर्भर है। इसलिये वैद्य की ज़िम्मेवारी बहुत बड़ी है।

८ यदि आप चिकित्सा-कर्म में सफलता प्राप्त करना चाहें, तो आप शास्त्र और बुद्धि दोनोंसे काम लीजिये। शास्त्र दर्पण है,और अपनी बुद्धि प्रतिबिम्ब—अक्स—है। जिस तरह दर्पण और प्रतिबिम्ब से स्वरूप का ज्ञान होता है ; उसी प्रकार शास्त्र और बुद्धि दोनों से जो चिकित्सा की जाती है, वही चिकित्सा उत्तम होती है। जो वैद्य केवल शास्त्र पर चलते हैं, अपनी बुद्धिसे काम नहीं लेते, उन्हें सफलता नहीं होती।

९ वैद्य को उचित है कि,रोगियों से मैत्री करे और करुणा से काम ले ; उत्साह के साथ साध्य रोगी की चिकित्सा करे, स्वस्थ शरीरवाले या मरनेवाले रोगी को दवा न दे।

१० वैद्य को रोग-परीक्षा करते समय साध्य और असाध्य का ख़याल कभी न भूलना चाहिये। जो वैद्य साध्य और असाध्य दो प्रकारके विभाग करके चिकित्सा करता है, वह निश्चय ही रोग को आराम करता है ; किन्तु जो वैद्य साध्य और असाध्य का ख़याल नहीं करता, असाध्य रोगी का भी इलाज करना आरम्भ कर देता है, उसकी दुनिया में बद-नामी होती है। लोग कहते हैं, जब वैद्यजी को साध्यासाध्यका ही ज्ञान नहीं, तब क्यों चिकित्सा करके अपनी धूल उड़वाते हैं? शास्त्रमें कहा है :—

ये न कुर्वन्त्यसाध्यतां चिकित्सां ते भिषग्वराः।
अतः वैद्यः श्रमः कार्यः साध्यासाध्य परीक्षणे॥
साध्यासाध्य विभागज्ञो,ज्ञानपूर्वं चिकित्सकः।
काले चारभते कर्म यत्तत् साधयति ध्रुवम्॥
स्वार्थं विद्या यशो हानिमुपक्रोशमसंग्रहम्।

प्राप्नुयान्नियत वैद्यो योऽसाध्यं समुपाचरेत् ॥
सद्वैद्यास्ते न येऽसाध्यानारभन्ते चिकित्सितुम् ।

जो असाध्य रोगी की चिकित्सा नहीं करते, वे श्रेष्ठ वैद्य हैं; इसलिये वैद्यको साध्य-असाध्य की परीक्षा करनी चाहिये।

जो साध्य-असाध्य के विभागको जानने वाला वैद्य, साध्य-असाध्य का विचार करके चिकित्सा करना आरम्भ करता है, वह निश्चय ही रोगी को आराम करता है।

जो वैद्य असाध्य रोगी का इलाज करता है, उसके स्वार्थ, क्रिया और यश तीनों की हानि होती है; जगह-जगह उसकी निन्दा होती है और वह नालायक़ समझा जाता है।

जो असाध्य की चिकित्सामें हाथ नहीं डालते, वह "सद्वैद्य" यानी उत्तम वैद्य हैं।

सरांश यह, कि असाध्यकी चिकित्सासे कोई लाभ नहीं। जो असाध्य है, वह आराम होगा नहीं ; बिना आराम हुए कुछ धन भी नहीं मिलेगा, कोरी बदनामी का ठोकरा पल्ले पड़ेगा। इसलिये धन और यश चाहते हो, तो असाध्य रोगी को हाथमें न लो।

११ रोगीकी आयुका देखना वैद्यका सबसे पहला काम है। इस-लिये चिकित्सा में सबसे पहले आयु-परीक्षा किया करो। अगर रोगी की आयु दीखे, तो इलाज हाथ में लो ; अगर रोगी आयु-हीन दीखे तो इंकारकर दो; कह दो कि हमसे इलाज न होगा। अगर आप आयुष्मान् रोगी का इलाज करेंगे, तो रोगी को अवश्य आराम हो जायगा, आप को धन और यश मिलेगा। अगर आप लालचवश आयुष्यहीन का भी इलाज हाथमें लेलेंगे, तो रोगी तो आयु न होने से अवश्य मर ही जायगा, आपके पल्ले केवल बदनामी आवेगी। क्योंकि जिसकी आयु क्षीण होगई है, जिसकी उम्र पूरी होगई है, उसकी उम्र कोई वैद्य बढ़ा नहीं सकता, वैद्य का काम तो रोगके तत्त्व को समझना और रोगी की वेदना का नाश करना है। देखिये शास्त्रमें कहा है :—

भिषगादौ परीक्षेत् रुग्णस्यायुः प्रयत्नतः ।
तत आयुषि विस्तीर्णे चिकित्सा सफला भवेत् ॥
व्याधेस्तत्त्व परिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः ।
एतद्वैद्यस्य वैद्यत्व न वैद्यः प्रभुरायुषः ॥

वैद्य को सब से पहले यत्नपूर्वक रोगी की आयु-परीक्षा करनी चाहिये, क्योंकि आयुके दीर्घ होने से ही चिकित्सा सफल होती है।

रोग के तत्त्व को जानना और रोगी की पीड़ा का दूर करना—यही वैद्यका काम हैं; वैद्य आयु का स्वामी नहीं है।

अगर कोई यह सवाल करे कि,जब आयु ही होगी, तब रोगी मरेगा ही क्यों; आप ही लोटपोट कर खड़ा हो जायगा; इसलिये ऐसी दशामें चिकित्साकी ज़रूरत ही क्या है? जिनकी ऐसी समझ है, वे ग़लती करते हैं। आयु होने पर भी रोगी बिना चिकित्साके मर जाता है, इस विषय में अपनी ओर से कुछ न कहकर, हम दो चार ऋषि-वाक्य उद्धृत करते हैं। आशा है, उनसे वैसे प्रश्न करनेवालों को सन्तोष हो जायगा। कहा है :—

साध्या याप्यत्वमायान्ति, याप्याश्चासाध्यतां तथा।
घ्नंति प्राणानसाध्यास्तु, नराणाम क्रियावताम् ॥
आयुष्मान् पुरुषो जीवेत्सन्यथो भेषजं विना ।
भेषजेन पुनर्जीवेत स एव हि निरामयः॥
सति आयुषि नोपायं विनोत्थातुंक्षमो रुजीः।
दर्शितश्चात्र दृष्टान्तः पङ्कमयो यथा गजः ॥
सति चायुषि नष्टः स्यादामयैश्चाचिकित्सितः।
यथा सत्यपि तैलादौ दीपो निर्वाति वात्यया॥

चिकित्सा न करने वाले मनुष्योंके साध्य रोग याप्य और याप्य असाध्य हो जाते हैं; असाध्य रोग निश्चय ही मनुष्य के प्राणनाश कर डालते हैं।

आयु होने पर यदि चिकित्सा न की जाय, तो मनुष्य जीवेगा; परन्तु दुःखों के साथ; और यदि चिकित्सा की जायगी, तो बिना दुःखों के जीवेगा।

आयु के होने पर भी रोगी बिना उपायों के नहीं उठ सकता, जिस तरह कीच में फँसा हुआ हाथी बिना खींचे नहीं निकल सकता।

जिस तरह तेल बत्ती वग़ैरः के होने पर भी, दीपक हवा के झोंके से बुझ जाता है ; उसी तरह, आयु होने पर भी रोगी, बिना चिकित्सा के मर जाता है।

१२ साध्यासाध्य परीक्षाके सिवा, वैद्य को "अरिष्ट-चिह्न" अवश्य देखने चाहिएँ। अरिष्ट-चिह्नोंसे वैद्य को मृत्यु का पता बहुत ठीक लगता है। पहले वैद्य अरिष्ट-चिह्नों के जानकार और अभ्यासी होने के कारण ही, बरसों पहले रोगी की मृत्यु बता दिया करते थे। इसलिए वैद्य को अरिष्ट-चिह्नों की परीक्षा अवश्यमेव करनी चाहिये। जो वैद्य "अरिष्ट-चिह्नों" को देखकर इलाज करता है, वह देवताकी तरह पुजता है। जो बिना अरिष्ट-चिह्नोंको देखे इलाज करते हैं, वे बदनाम होते हैं। अरिष्ट-चिह्नोंके विषयमें हम आगे लिखेंगे; तथापि इस जगह इतना बता देनेमें हर्ज नहीं कि, अरिष्ट किसे कहते हैं। जिन लक्षणोंके होनेसे रोगीकी मृत्यु निश्चयही हो, यदि ऐसेही चिह्न नज़र आवें, तो उन चिह्नोंको "अरिष्ट" या "रिष्ट" कहते हैं। जिस तरह वृक्षमें फूल आनेसे फल लगनेकी, धुआँ होनेसे आग होनेकी और बादल होनेसे वर्षाकी सम्भावना होती है ; उसी तरह अरिष्ट-चिह्न होनेसे मृत्यु होनेकी सम्भावना होती है। वङ्गसेन महोदय कहते हैं:—

न त्वरिष्टस्य जातस्य नाशोऽस्ति मरणादृते।
मरणञ्चापि तन्नास्ति यन्नारिष्टं पुरःसरम्॥

अरिष्ट होनेसे मृत्यु अवश्य होती है। वह मृत्यु नहीं, जिसमें पहले अरिष्टके लक्षण न हों और वह अरिष्ट नहीं, जिसके होनेसे मरण न हो।

वाग्भटने कहा है:—

विना अरिष्टं नास्ति मरणं, दृष्ट रिष्टञ्च जीवितम्।
अरिष्टे रिष्ट विज्ञानं नच रिष्टेऽप्य नैपुणात्॥

अरिष्ट बिना मरण नहीं होता और अरिष्ट होनेसे ज़िन्दगी नहीं

रहती। जो अरिष्ट-चिह्न जाननेमें निपुण नहीं हैं, उनको अरिष्ट-ज्ञा नहीं होता।

बङ्गसेनने कहा है:—

> प्रसिद्धिं प्राप्नुयाल्लोके, प्रतिकुर्वन गतायुषः।
> तस्माद्यत्नेनारिष्टानि लक्षयेत् कुशलो भिषक् ॥

जिसकी आयु पूरी होगई है, उस मनुष्यकी चिकित्सा करनेसे वै की सिद्धि नहीं होती। इस वास्ते चतुर वैद्यको अच्छी तरहसे 'अरि देखकर इलाज करना चाहिये।

सुश्रुतने कहा है :—

> एतान्यारिष्टरूपाणि, सम्यग् बुद्ध्येत भिषक्।
> साध्यासाध्यपरीक्षायां स राज्ञः संमतो भवेत्॥

जो वैद्य इन अरिष्ट लक्षणोंको अच्छी तरह जानता है और साध्या साध्यकी परीक्षा करनेमें निपुण है, वह राजाओंके योग्य होता है।

अरिष्ट-चिह्नोंके पहचाननेका अभ्यास करनेसे रोगीकी आयुका हाल वैद्य फ़ौरन जान जाता है। इसलिये वैद्य इनका अभ्यास करे और आयु परीक्षाके लिये इनसे चिकित्सामें अवश्य काम ले।

(१३) अगर चिकित्सामें विशेष सफलताकी इच्छा रखते हो, तं रोगीके पास जाकर इतनी बातें अवश्य देखो :—

(१) रोगीकी आयु अल्प है, मध्यम है या दीर्घ है। अरिष्ट-चिह्नं सेही आयुका पता लगता है।

(२) अगर आयु शेष हो, तो देखो कि रोगीको कौन रोग है, रोग होनेके कारण क्या हैं? रोगके पूर्ण रूपसे प्रकट होनेके पहले क्या-क्य चिह्न प्रकट हुए थे?

(३) रोगके मालूम हो जानेपर, रोगकी साध्यता और असाध्यताका विचार करो। साथ-ही-साथ यह भी देखो कि, कोई अरिष्ट-चिह्न तो नहीं है। अगर रोग असाध्य हो, अरिष्ट-चिह्न स्पष्ट नज़र आवें, तो रोगीको त्याग दो। अगर रोग साध्य हो, अरिष्ट न हो, तो बुद्धिमानीसे इलाज

करनेका विचार करो ; मगर इलाजका विचार करनेके पहले निम्नलिखित बातोंका विचार औरभी करो:—

(४) देखो कि ऋतु कौनसी है ? इस ऋतुमें कौनसे दोषका कोप होता है ? यह ऋतु रोगीके वातादि दोषोंको शान्त करनेवाली है या कुपित करनेवाली ; ऋतुतुल्यता है अथवा नहीं।

(५) रोगी की अग्नि कैसी है ? अग्नि तीक्ष्ण है, मन्द है या सम है अथवा विषम है।

(६) रोगी की अवस्था कितनी है; यानी उसकी उम्र क्या है ? रोगी बालक है, जवान है या बूढ़ा है ? अवस्था जानकर इस बात का विचार करो कि, इस अवस्था में कौनसा दोष बढ़ा हुआ रहता है। यह रोग जो रोगी को है, इस अवस्था में ज़ोर करता है या कमज़ोर रहता है ; यानी सामान्य साध्य रहता है या कष्टसाध्य। दवा देते समय रोगी की अवस्थानुसार ही दवा की मात्रा तजवीज करो। बालक और वृद्ध* रोगियों की चिकित्सा में सावधानी की ज़रूरत है ; क्योंकि ये दोनों कोमल और बलहीन होते हैं।

(७) रोगी का शरीर दुबला है या मोटा अथवा स्वाभाविक है।

(८) रोगी में कितना बल है ? रोगी बलवान् है या बलहीन ? रोगी के बलाबल का विचार करके ही दवा देनी चाहिये। यदि वैद्य दुर्बल रोगी को अति बलवान्औषधि दे दे, तो रोगी के मर जाने की सम्भावना है। कमज़ोर रोगी अति बलिष्ठ, अत्यन्त गर्म और अत्यन्त शीतल दवा अथवा अग्नि-कर्म, क्षार-कर्मऔर शस्त्र-कर्मको नहीं सह सकता। कमज़ोर रोगी बहुत तेज़ दवासे अक्सर मर जाता है। इसलिये दुर्बल रोगीको हलकी दवा देनी चाहिये। अगर तेज़ दवा देने की ज़रूरत हो, तो थोड़ी-थोड़ी मात्रामें कई बार देनी चाहिए, जिससे किसी प्रकारके उपद्रवकी सम्भावना न रहे। विशेषकर स्त्रियोंके मामलेमें इस बातका और भी

* ६० वर्षके बाद वृद्धावस्था आरम्भ होती है। इस अवस्थामें "वायु" बहुत बढ़ जाता है।

ख़याल रखना चाहिये ; क्योंकि स्त्रियोंका हृदय अस्थिर—चञ्चल—नर्म, खुला हुआ और अत्यन्त डरपोक होता है। जो वैद्य इन बातोंका विचार किये बिना दवा देते हैं, वे रोगी की प्राणहानि करते हैं।

(८) रोगी के सत्त्व यानी मनकी परीक्षा करनी चाहिये। देखना चाहिये, रोगी प्रवर-सत्त्व है, मध्य-सत्त्व है या हीनसत्त्व। आत्माके साथ मन का संयोग होनेसे, मन शरीर का पालन-पोषण करता है। सत्त्व, बल-भेदके कारण, तीन प्रकारका होता है।

प्रवर-सत्त्ववाला प्राणी निज और आगन्तु कारण से हुई घोर पीड़ा से भी नहीं घबराता। मध्य-सत्त्ववाला दूसरे की देखा-देखी या दूसरे की सहायता से पीड़ा को सहन कर सकता है। हीन सत्त्ववाला न तो आप धीरज रखता है और न दूसरे की सहायता से धैर्य्य धारण करता है। ऐसे पुरुष, बड़े भारी डील-डौलके होने पर भी, ज़रासी पीड़ा नहीं सह सकते। लड़ाई की भयङ्कर बात सुनने से या कहीं खून गिरता देख कर ही बेहोश हो जाते हैं अथवा उनका चेहरा फक़ हो जाता है।

(६) सात्म्य-परीक्षा भी करनी चाहिये। देखना चाहिये कि, रोगी को कैसा आहार-विहार अनुकूल होता है; यानी कैसा खाना-पीना उसके मिज़ाज के मुआफ़िक़ होता है। सात्म्य-परीक्षा रोगी से पूछने से होती है।

जिन प्राणियों को घी, दूध, तेल, मांस और खट्टे, मीठे, नमकीन प्रभृति छहों प्रकारके रस सात्म्य यानी मुआफ़िक़ होते हैं ; वे बलवान्, क्लेश सहनेवाले और दीर्घजीवी होते हैं। जो लोग हमेशा रूखा भोजन करते हैं, जिन्हें कोई एकही रस मुआफ़िक़ होता है, वे कमज़ोर और कम-उम्र होते हैं। जिन्हें मिले हुए रस मुआफ़िक़ होते हैं, वे मध्यबली होते हैं।

सात्म्य-परीक्षा से वैद्य को दवा और पथ्य तजवीज करनेमें बड़ा सुभीता होता है। इससे प्रकृति का भी निश्चय हो जाता है। जैसे,

जिसे गर्म आहार-विहार मुआफ़िक़ होते हैं, उसका मिज़ाज ठण्डा और जिसे शीतल आहार-विहार मुआफ़िक़ होते हैं, उसका मिज़ाज गर्म होता है।

(१०) प्रकृति-परीक्षा भी करनी चाहिये। देखना चाहिये, रोगीकी प्रकृति कैसी है? रोगी की प्रकृति वात की है या पित्त की या कफ की; यानी रोगीका मिज़ाज गर्म है या ठण्डा। रोग रोगीकी प्रकृति के अनुकूल है या प्रतिकूल? प्रकृति-तुल्यता है या नहीं? जैसे किसी की पित्त प्रकृति हो और उसको कफका उपद्रव हो, तो प्रकृति-तुल्यता नहीं है। प्रकृति-तुल्यता*, देशतुल्यता† ऋतु-तुल्यता‡ आदि ख़राब हैं। प्रकृति-तुल्यता आदिके न होनेसे रोग सुखसाध्य होता है।

(११) औषधि की परीक्षा भी करनी चाहिये; यानी यह देखना चाहिए कि, औषधि रोगी की प्रकृति और ऋतु के अनुकूल है या प्रतिकूल, देशकाल प्रभृति के विचार से विरुद्ध तो नहीं है।

(१२) देशकी भी परीक्षा करनी चाहिये। देखना चाहिये रोगी जाङ्गल§ अनूप‖ और साधारण¶ इन देशोंमें से किसमें पैदा हुआ है,

---

* पित्त-प्रकृतिवालेको कफका उपद्रव हो,तो प्रकृति-तुल्यता न हुई। यह अच्छी बात है। अगर पित्त-प्रकृतिवालेको पित्तकाही रोग हो, तो प्रकृतितुल्यता होगई,जो खराब है।

† अनूपदेशमें स्वभावसेही वात-कफके रोग होतेहैं। अगर रोगीको उस देशमें पित्तका रोग हुआ, तो देशतुल्यता न हुई, इसलिये रोग सुखसाध्य है। अगर अनूप-देशमें वात-कफका रोग हो, तो देश-तुल्यता हो गई। देश-तुल्यता कष्टसाध्य है।

‡ शरद् ऋतुमें "पित्त" कुपित होता है; यानी शरद "पित्तका मौसम है। अगर शरद् ऋतुमें किसीको पित्तका रोग हो, तब तो ऋतुतुल्यता हुई। अगर शरद् ऋतुमें "कफ"का रोग हो तो ऋतुतुल्यता न हुई। ऋतुतुल्यता का न होना, रोगी और वैद्य दोनोंके लिये अच्छा है।

§ जिस देश में पानी और दरख्त कम हों और जहाँ पित्त और वातके रोग होते हों, उस देश को "जाङ्गल देश" कहते हैं। ऐसा देश मारवाड़ है।

‖ जिस देश में पानी बहुत हो, वृक्ष बहुत हों, और जहाँ वात और कफके रोग होते हों, उस देश को "अनूपदेश" कहते हैं। जैसे बङ्गाल।

¶ जिस देशमें अनूप और जाङ्गल दोनों के लक्षण हों,वह साधारण देश कहलाता है।

किस देशमें बड़ा हुआ है और किस देशमें रोगी हुआ है ? उस देश की आब-हवा कैसी है, वहाँ कैसे रोग होते हैं, रोगीको कैसा रोग हुआ है; देशतुल्यता है या नहीं? जैसे,—देश वादी हो, और रोग भी वादी का हो, तो देश तुल्यता समझनी चाहिये। अगर ऐसा हो तो रोग कष्टसाध्य है।

(१३) रोगीके लिये मात्रा नियत करनेमें वैद्यको पूरी चतुराई से काम लेना चहिये। औषधि की मात्राका कोई बँधा हुआ क़ायदा नहीं है। काल, अग्नि, बल, उम्र, स्वभाव, देश और वातादि दोषों का विचार करके; वैद्य रोगी की मात्रा नियत करे। न कम मात्रा नियत करे न ज़ियादा; रोग के बलाबल के अनुसार मात्रा नियत करनेसे लाभ होगा। कम मात्रा से रोग आराम न होगा, अधिक से रोग बढ़ जायगा या रोगी मर जायगा। कहा है:—

> नाल्पंहन्त्यौषधं व्याधिं यथाल्पाम्बु महानलम्।
> दोषवच्चातिमात्रं स्याच्छस्य मृत्यूदकं यथा॥
> मात्रयाहीनया द्रव्यं विकारं न निवर्त्तयेत्।
> द्रव्याणामतिबाहुल्यादव्यापत्संजायते ध्रुवम्॥

जिस प्रकार अत्यन्त प्रज्वलित अग्नि पर थोड़ासा गर्म जल डालने से वह नहीं बुझती, उसी प्रकार बड़े रोग में थोडी मात्रा की औषधि से रोग आराम नहीं होता। जिस तरह खेत में अधिक जल बरसने से अनाज नष्ट हो जाता है, उसी तरह छोटे रोग में औषधि की अधिक मात्रा देने से रोगी मर जाता है। कम मात्रा से रोग आराम नहीं होता और अधिक मात्रा से निश्चय ही विपद् आती है।

(१४) यदि आपको रोगी के रोग में निम्नलिखित बातें नज़र आवें, तो आप शौक़से इलाज करें; भगवान चाहेंगे तो आपको अवश्य सफलता प्राप्त होगी। ऐसे रोग को सुखसाध्य कहते हैं; यानी जिस रोग में निम्नलिखित लक्षण हों; वह बिना कठिनाई के सुख से आराम हो जायगा—

(क) रोगके हेतु यानी कारण*थोड़े हों ।

(ख) उस रोग के पूर्वरूप† में जितने लक्षण होने चाहियें, उससे कम हुए हों ।

(ग) उस रोग के लक्षण जितने शास्त्रमें लिखे हैं, उस से कम हों ।

(घ) दूष्य ‡ देश, प्रकृति और कालके साथ उस रोग की तुल्यता न हो ।

(ङ) ऐसा रोग न हो, जिसका इलाज न हो सके ।

(च) रोगकी गति एक हो ; चाहे अधोगामी हो, चाहे ऊर्द्धगामी ॥ ।

(छ) रोग नया हो यानी थोड़े दिन का हो ।

(ज) रोग के साथ कोई उपद्रव ¶ न हो ।

(झ) रोग एक दोषज हो ; यानी तीनों दोषों में से किसी एक के कारण हो ; दो या तीनों दोषोंके कुपित होने से न हो ।

---

* जिन कारणों से रोग होता है, उन्हें रोग के कारण कहते हैं। जैसे ; अति भोजन से अजीर्ण रोग होता है। यहाँ "अति भोजन" अजीर्ण का हेतु या कारण है ।

† रोग के पूरी तरह प्रकट होने के पहले जो लक्षण दिखाई देते हैं, उन्हें "पूर्व-रूप" कहते हैं। जैसे ज्वर होने के पहले,—नेत्रों का जलना, शरीर का टूटना, सिरमें दर्द होना प्रभृति ।

‡ रस रक्त आदि को "दूष्य" कहते हैं। वात, पित्त, कफ को "दोष" कहते हैं। पित्त भी गर्म है और रक्त भी गर्म है। अगर पित्त से रक्त दूषित हुआ, तो "दूष्य-तुल्यता" हुई। परन्तु कफ शीतल है, अगर उस से रक्त दूषित हो, तो दूष्यतुल्यता न हुई। दूष्यतुल्यता कष्टसाध्य है ।

॥ रक्तपित्त रोग में रक्त ऊपर के रास्ते नेत्र, कान, नाक, और मुँह से निकलता है तथा नीचे के रास्ते लिङ्ग, गुदा और योनि से निकलता है। जो एक रास्ते से गिरता है, तो रोग सुख से आराम हो जाता है ; दोनों राहों से गिरता है, तो कष्ट से आराम होता है ।

¶ रोगके साथ उपद्रव। जैसे मुख्य रोग तो ज्वर हो, किन्तु उसके साथ कास, श्वास, हिचकी, वमन, अतिसार आदि हों, तो इन को 'ज्वर के उपद्रव' कहेंगे। उपद्रवहीन रोग सहज में आराम होता है ।

(ञ) रोगी का शरीर ऐसा हो, जो हर प्रकार की औषधि को सहन कर सके। चाहे दागिये, चाहे क्षार-कर्म कीजिये, चाहे चीर-फाड़ कीजिये, चाहे जुलाब दीजिये, चाहे क़य कराइये।

(ट) जैसी क़ीमती या दुर्लभ दवा चाहो मिल सकती हो। दवा पहले कहे हुए चारों गुण-युक्त हो।

(ठ) रोगी की सेवा करनेवाला रोगीका भक्त, चतुर, शुश्रूषाकर्म को जाननेवाला और पवित्र हो।

(ड) रोगी में रोगीके सब गुण हों ; यानी रोगी सब बातोंको याद रखनेवाला, वैद्य की आज्ञा पालन करनेवाला, निर्भयचित्त और अपने रोग का ज्यों का त्यों ठीक हाल कहनेवाला हो।

(ढ) स्वयं आप वैद्य महाशयमें शास्त्रपारंगतता, बहुदर्शिता, चतुराई और पवित्रता,—ये चारों गुण हों यानी आप सच्चे वैद्य हों।

(१५) गर्भवती, बालक, और वृद्ध का रोग यदि अत्यन्त उपद्रव-सहित हो, तो असाध्य होता है ; इसलिये ऐसी अवस्था में इनका इलाज न करना चाहिये।

(१६) अगर किसी रोगी का रोग त्रिदोष से हुआ हो, रोग चिकित्सा के मार्ग को अतिक्रम कर गया हो ; साथ ही रोग अस्थिरता-जनक, मोहजनक और इन्द्रिय-विनाशक हो ; तो आप रोगी को हाथ में न लीजिये और यदि ले लिया हो तो जवाब दे दीजिये। अगर किसी दुर्बल व्यक्तिका रोग बहुत बढ़ गया हो और "अरिष्ट-चिह्न" नज़र आते हों, तो आप रोगी को जवाब दे दीजिये।

(१७) अगर किसी रोगी को जुलाब देना हो, तो बड़ी सावधानी और समझ-बूझ कर दीजिये। जुलाब देना सहज काम नहीं है। जुलाब का ज़ियादा लग जाना या न लगना, दोनों ख़राब हैं।

अगर जुलाब न लगेगा, तो रोगीके मुखमें पानी भर-भर आवेगा, हृदय में अशुद्धि होगी, कफ और पित्तकीसी वमन होने की शंका होगी, पेट में अफारा होगा, खाने में अरुचि होगी, उल्टी होगी, देह में बल न

रहेगा, शरीर भारीसा मालूम होगा, आँखों में नींदसी आवेगी, शरीर गीला-गीलासा हो जायगा, ज़ुकाम के चिह्न नज़र आवेंगे, और अधोवायु खुलकर न निकलेगी।

अगर जुलाब ज़ोर से लग जायगा ; तो पहले तो मल, पित्त, कफ और अधोवायु निकलेंगे ; शेष में केवल ख़ून गिरने लगेगा। इसके बाद मांस और मेद से घुला हुआ पानीसा निकलेगा या दस्त, कफ और पित्त जिसमें न होगा, ऐसा जल निकलेगा या काला-काला ख़ून निकलेगा, रोगी को प्यास बहुत लगेगी और वायुका कोप हो जायगा। इसीलिये विद्वानों ने कहा है :—

> चिकित्साप्राभृतो विद्वान् शास्त्रवान् कर्मतत्परः
> नरं विरेचयति यं संयोगात् सुखमश्नुते ॥
> यो वैद्यमानीत्वबुधो विरेचयति मानवम्
> सोऽति योगादयोगाच्च मानवो दुःखमश्नुते ॥

चिकित्सा-कर्म में कुशल, विद्वान्, शास्त्रोंके जाननेवाला और अपने कामका अभ्यास रखनेवाला वैद्य जिसको जुलाब देता है, वह रोगी रोग से छूटकर सुखी होता है। किन्तु वैद्यत्वका घमण्ड करनेवाला अज्ञानी वैद्य जिसको जुलाब देता है, वह मनुष्य अतियोग—अधिक जुलाब लग जाने और अयोग—जुलाब न लगने के कारण दुःख का भागी होता है।

(१८) महर्षियों की निम्नलिखित शिक्षायें प्रत्येक वैद्य को सदा याद रखनी चाहियें :—

"हे वैद्य ! यदि तुझे कर्म-सिद्धि, अर्थ-सिद्धि, यशोलाभ और स्वर्ग की कामना है, तो सदा गुरु के उपदेशों पर ध्यान दे, हमेशा सब जीवों की मङ्गल कामना कर, सर्वान्तःकरण से रोगियों के आरोग्य करने में सावधानी से लगा रह ; अपनी जीविका के लिये रोगियों से अत्यन्त धन न ले ; मन से भी पर स्त्री-गमन की इच्छा न कर ; पराये धन पर मन मत चला ; सदा साफ़-सफ़ेद कपड़े पहना कर और अपने चिकित्सा के यन्त्रों यानी औज़ारों को हमेशा साफ़ रक्खा कर ; भूलकर भी मदिरा

पान मत कर; पाप-कर्म्म से दूर रह; निष्पाप लोगों की संगति कर; धर्म में मति रख; सबका भला चाह; सच्चे दिल से पराया हित कर; ज़ियादा बकवाद मत कर; सदा देश-काल का विचार रख; बातों को याद रक्खा कर; तरह-तरह की वैद्योपयोगी वस्तुओं का संग्रह किया कर।

"जो व्यक्ति राजद्रोही हों, जो बड़े आदमियों से विरोध रखते हों, जो दुष्ट और दुराचारी हों, जिन्हें अपनी बदनामी का भय न हो, जो स्वयं मरनेको तैयार हों,—ऐसे लोगोंकी चिकित्सा न करनी चाहिये। जिन स्त्रियों के सिर पर उनके पति या भाई आदि सम्बन्धी न हों, उनका इलाज भी न करना चाहिये। स्त्रियाँ यदि कोई चीज़ उपहार-स्वरूप दें तो बिना उनके पति, भाई, देवर आदि सम्बन्धियों की आज्ञा के न लो।

"घर के मालिक की आज्ञा लेकर घरमें जाओ। घरमें ख़बर करा कर घुसो। जहाँ जाओ,दिव्य वस्त्र पहन कर जाओ; घरमें नीचा सिर करके घुसो। रोगी के पास जाकर रोग का तत्व समझने की चेष्टा करो और किसी तरह की फ़ालतू बात मत करो। रोगी के काम के सिवा और किसी विषयमें वाक्य, मन, बुद्धि, और इन्द्रियों को न लगाओ।

"रोगीके घरकी बात और किसीसे कभी मत कहो। रोगीकी मृत्यु निश्चित हो, तुमको रोगी के मरने का सोलह आना विश्वास हो जाय तो, यह बात किसी से भी मत कहो। ऐसी बात सुनने से रोगी और रोगी के सम्बन्धियों के चित्त पर गहरी चोट लगती है।

"तुम कैसे ही धुरन्धर विद्वान् क्यों न हो, पर अपनी तारीफ़ आप कभी मत करो; जो लोग अपनी बड़ाई आप करते हैं, उनसे प्राणी विरक्त हो जाते हैं।"

(१६) रोगी की रोग-परीक्षाके समय जल्दबाज़ी मत करो, चाहे आप की हानि ही क्यों न होती हो, आपकी और जगहकी फ़ीस ही क्यों न मारी जाती हो। थोड़े रोगी हाथ में लेना, और उन सबको रोगमुक्त

करना अच्छा ; किन्तु ढेर रोगियों को हाथ में ले लेना और फिर उन्हें सँभाल न सकना अच्छा नहीं ।

आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचा (चमड़े) से रोगी के रोग की परीक्षा करो, पूछने की बातें पूछकर मालूम करो। जब सब तरह से आप की समझ में रोग आ जाय, रोग साध्य हो, रोगी की आयु हो, अरिष्ट न हो—तब रोगी की अवस्था, देश, काल और मात्रा का विचार कर के उत्तम औषधि दो और दवा सेवन-विधि एवं पथ्यापथ्य की बात रोगी और परिचारक को अच्छी तरह समझा दो। बहुत से वैद्य मारे जल्दी के अथवा मिज़ाज के कारण आधी बात कहते और आधी नहीं कहते, फ़ीस जेब में डाल कर चल देते हैं। हमने अनेक बार देखा है, रोगी के ऊपरवालों के अच्छी तरह न समझने से अमृत-समान दवाएँ भी बेकार साबित हुई हैं अथवा उपद्रव बढ़ गये हैं।

(२०) नाड़ी-परीक्षा की आजकल चाल हो गई है। अगर वैद्य नाड़ी न पकड़े, तो लोग उसे वैद्य नहीं समझते। इसलिये वैद्योंको नाड़ी पकड़नी ही पड़ती है। किन्तु सारे रोगों का हाल केवल नब्ज़से किसी को भी मालूम नहीं हो सकता ; क्योंकि कितने ही रोगोंमें नाड़ीकी चाल एकसी होती है। वहाँ निश्चय रूपसे कैसे मालूम हो सकता है कि, अमुक ही रोग है। जैसे—धातुक्षीण वाले की नाड़ी क्षीणगति और बिल्कुल मन्दी होती है और मन्दाग्निवाले की नाड़ी भी क्षीणगति और बिल्कुल मन्दी होती है ; इसी तरह तृप्त मनुष्य की नाड़ी स्थिर होती है और कफ तथा प्रदर रोगमें भी नाड़ी स्थिर होती है। सारांश यह, कि नाड़ीपरीक्षा अवश्य करनी चाहिये; क्योंकि नाड़ीपरीक्षा से वैद्यका बड़ा काम निकलता है, पर एकमात्र नाड़ी-परीक्षा पर निर्भर रहने से बहुधा धोखा हो जाता है।

यद्यपि प्राचीन शास्त्र "चरक सुश्रुत" प्रभृति में नाड़ी-परीक्षा का ज़रा भी ज़िक्र नहीं है, तोभी आज-कल इस का रिवाज हो गया है। नाड़ीज्ञान-बिना वैद्य की प्रतिष्ठा नहीं है, और नाड़ी-परीक्षा से लाभ भी है, इसलिए वैद्य को इस का अभ्यास अवश्य करना चाहिये। मगर

नाड़ी-परीक्षा गुरु के सिखाने से जैसी अच्छी आती है, वैसी अपने-आप पुस्तकों की सहायता से नहीं आ सकती। हाँ, जो एकलव्य की तरह चतुर पुरुष हैं, वे अपने-आप भी इस कठिन विद्याको सीख सकते हैं, पर सभी एकलव्य नहीं, इसी से हमने गुरु की बात लिखी है। आज-कल नाड़ी-परीक्षा शास्त्रानुसार हो गई है; यानी आज-कलके शास्त्र इसे और परीक्षाओं के साथ शामिल करते हैं। यहाँ इस बात को फिर समझ लेना चाहिये कि, यदि वे लोग केवल नाड़ी-परीक्षासे काम चलता देखते तो नाड़ी-परीक्षा के साथ मूत्रपरीक्षा, मलपरीक्षा, जिह्वा-परीक्षा प्रभृति और सात परीक्षाओं की ज़रूरत न समझते।

कहा है:—

गदाक्रान्तस्य देहस्य, स्थानान्यष्टौ परीक्षयेत्।
नाड़ी मूत्र मलं जिह्वां, शब्द स्पर्श दृगाकृतिम्॥

रोगी के शरीर के आठ स्थानों की परीक्षा करनी चाहिये:—नाड़ी, मूत्र, मल, जीभ, शब्द, स्पर्श, आँख और आठवीं आकृति।

यद्यपि आज-कल नाड़ी-परीक्षा प्रधान है; तथापि प्रमेह, सोज़ाक और पथरी—रोग में बिना "मूत्रपरीक्षा" के काम नहीं चलता। अतिसार, संग्रहणी और सन्निपात प्रभृति रोगों में "मलपरीक्षा" करनी होती है। आमवात प्रभृति रोगोंमें "जिह्वा" की और कण्ठके रोगोंमें "शब्द" की परीक्षा की जाती है। दाद खुजली प्रभृति चर्म-रोगोंमें "स्पर्श-परीक्षा" होती है; यानी हाथ से छूकर रोग का तत्त्व मालूम करते हैं। पाण्डु-कामला यानी पीलिये वग़ैरः में आँखें देखी जाती हैं। फोड़ा आदि में फोड़े की आकृति देखते हैं। हमने ऊपर उदाहरण-स्वरूप जो रोग लिखे हैं, इन के सिवा अन्यान्य रोगों में भी नेत्र, जीभ आदि देखे जाते हैं। ज्वर में शरीर के हाथ लगाने से ज्वर का ज्ञान होता है।

(२१) चिकित्सा करनेवाले के लिए अनेक मौक़े ऐसे भी आ जाते हैं, जब किसी रोग का नाम उसे नहीं मालूम होता। यह बात दो तरह से होती है—(१) वैद्य को समय पर उस रोगके लक्षण याद न आनेसे;

(२) कोई ऐसा रोग प्रकट हो जाने से, जिसके लक्षण पूर्व्वाचार्योंने लिखे ही न हों। मोती-ज्वरा, पानी ज्वरा, यकृत-रोग, फिरङ्ग प्रभृति ऐसे अनेक रोग हैं, जो पहले भारत में न होते थे ; किन्तु अब विदेशियों के आवागमन से भारत में आकर बस गये हैं। ऐसे रोगों के निदान लक्षण आदि पुराने ग्रन्थोंमें नहीं हैं। "भावप्रकाश" और "बङ्गसेन"में फिरङ्ग और यकृत की चिकित्सा लिखी है ; किन्तु प्लेग, मोती ज्वरा, आदिका ज़िक इनमें भी नहीं है।

यद्यपि हमारे पूर्व्वाचार्योंने अनेक रोगों के नाम और रूप आदि लिख दिये हैं ; तोभी चिकित्सा का दारमदार वातादि दोषों पर ही रक्खा है। हमारे यहाँ दोषोंकी विषमताका नाम रोग है और समताका नाम आरोग्य है। जिस क्रिया द्वारा वैषम्य-प्राप्त धातुएं समताको प्राप्त होती हैं ; यानी घटे हुए और बढ़े हुए दोष समान हो जाते हैं, उसे ही "चिकित्सा" कहते हैं। वाह वाह ! कैसी अच्छी तरकीब रक्खी है ! क्या ऐसी अच्छी तरकीब और किसी देश के चिकित्साशास्त्र में भी है ? कदापि नहीं।

शास्त्रकारोंने सभी रोगों के नाम नहीं लिखे हैं। इसी लिये किसी रोगका नाम यदि न मालूम हो, तो वैद्यको घबराना और मुँह उतारना उचित नहीं। "चरक" में लिखा है :—

विकारनामाकुशलो न जिह्रीयात्कदाचन।
नहि सर्वविकाराणां नामतोऽस्ति ध्रु वा स्थितिः॥

अगर कोई वैद्य रोग जानने में कुशल न हो, तो हरगिज़ न शरमावे ; क्योंकि सभी रोगों की स्थिति नाम से ही नियत नहीं है।

अगर वैद्य को किसी रोग के नामका पता न लगे, तो घबरावे नहीं, परन्तु वातादिक दोषोंकी परीक्षा अच्छी तरह कर ले ; यानी इस बात की खोज करे कि, कौनसा दोष कुपित है या कौनसा दोष घटा या बढ़ा है और कौनसा दोष समान है। जिन दोषों की घटती-बढ़ती देखे, उन्हें समान करे। दोषों के समान होने से ही रोगी आराम हो जायगा।

कहा है :—

> नास्ति रोगो विना दोषैर्यस्मात्तस्माचिकित्सकः।
> अनुक्तमपि दोषाणां, लिंगैर्व्याधिमुपाचरेत्॥

रोग दोषों के विना नहीं होते, इसलिये यदि किसी रोग का नाम शास्त्रमें न लिखा हो, तो वैद्य दोषों (वात, पित्त, कफ) के चिह्न देख कर, उन्हीं के अनुसार रोग की चिकित्सा करे; अर्थात् घटे हुए दोषों को बढ़ा कर और बढ़े हुए दोषों को घटाकर समान करे; क्योंकि दोषों की विषमता का नाम ही रोग और समता का नाम ही आरोग्य है।

"चरक" में औरभी लिखा है :—

> विकारो धातु वैषम्य, साम्य प्रकृतिरुच्यते।
> सुखसङ्कमारोग्यं, विकारो दुःखमेवच॥
> याभिः क्रियाभिर्जायन्ते, शरीरेधातवः समाः।
> सा चिकित्सा विकाराणां, कर्मतद्भिषजां मतम्॥

वात, पित्त और कफ की विषमता का नाम रोग है और इन की समता का नाम आरोग्य है। आरोग्य का नाम सुख और रोग का नाम दुःख है।

जिस क्रिया के द्वारा विषम धातुएँ सम हो जायँ, उसे ही रोगोंकी चिकित्सा कहते हैं और वही वैद्यों का कर्म है।

२२ हारीत मुनिने लिखा है कि, तपस्वी, ब्राह्मण, स्त्री, बालक, दीन-दुर्बल, बुद्धिमान, पण्डित, महात्मा, वेदपाठी, साधु, अनाथ और बन्धु-हीन रोगी की चिकित्सा वैद्य, विना कुछ लिये, पुण्यार्थ करे और इन की चिकित्सा में टालमटोल करके विलम्ब न करे।

राजा, साहूकार, ठाकुर, सेनापति—इनकी चिकित्सा करके वैद्य को धन लेना चाहिए और इन से भय न करना चाहिये।

ब्राह्मण, प्रोहित, कवीश्वर, कत्थक और ज्योतिषी—इनकी चिकित्सा अवश्य करनी चाहिये, क्योंकि ऐसे ही लोगों की चिकित्सा से वैद्यको यश मिलता है।

कसाई, चोर, म्लेच्छ, अग्नि लगानेवाला, मछलियों को मारने वाला,

अनेकों का दुश्मन और चुग़लख़ोर,—इन की चिकित्सा न करनी चाहिए।

अब हारीत मुनि का ज़माना नहीं है, इसलिये अब जैसा समय है वैसा ही काम करना चाहिये। मतलब यह है, कि जिनके पास धन है, जो देने योग्य हैं, उनसे धन अवश्य लेना चाहिये और जिनके पास धन नहीं है, जो दीन और अनाथ हैं, उनकी चिकित्सा मुफ्त करनी चाहिये। मुफ्त इलाज करने से अवश्य कीर्त्ति फैलेगी।

इस विषय में वङ्गसेन महोदयने आजकल के समय के अनुकूल ख़ूब अच्छा लिखा है। उन्होंने लिखा है :—"अत्यन्त क्रोधी, विना विचारे हर प्रकार का साहस करनेवाला, भयभीत, किसीका उपकार न मानने वाला, हर समय शोक में डूबा रहनेवाला, मरने की इच्छा करने वाला, जगत् से वैर रखनेवाला, शिथिल इन्द्रियोंवाला, वैद्य में विश्वास न रखनेवाला, अपने तईं वैद्य के समान समझनेवाला, वैद्य को ठगनेवाला —ऐसे रोगियों की चिकित्सा वैद्यको न करनी चाहिये। ऐसे रोगियों का इलाज करने से वैद्य को सिवा हानि के कोई लाभ नहीं ; मिलने-जुलने को तो ख़ाक नहीं, यदि किसी तरह रोग बढ़ जाय तो वैद्य बेचारेकी बदनामी होती है। निर्धनों की चिकित्सा करने में वैद्य को लोभ त्याग कर पुण्य-संचय करना चाहिये और धनवानों से धन लेना चाहिये।

२३ हमारे देशमें आजकल "लङ्घन" की बड़ी चाल हो गई है। ज्वर आया नहीं कि, रोगी को वैद्यजीने लङ्घन का हुक्म दिया नहीं। इसका नतीजा बहुत ख़राब होता है। अनेक रोग उठ खड़े होते हैं। लङ्घन कराने से वातादि दोषों का क्षय होता है, भूख लगती है, ज्वर हलका होता है ; मगर चाहे जिस ज्वर में, चाहे जिस रोगी को लङ्घन कराने और बल का विचार किये बिना अंधाधुन्ध लङ्घन कराने का परिणाम ख़राब होता है। लङ्घन इस तरह कराना चाहिये, जिस से बल न घटे, क्योंकि बल के अधीन ही आरोग्यता है और आरोग्यता के लिये ही चिकित्सा की जाती है। वात रोगी, प्यासे, भूखे, थके हुए तथा बालक,

बूढ़े, गर्भवती स्त्री आदि को लङ्घन कराना ही मुनासिब नहीं। वाग्भट ने लिखा है,—जिसे खाना खा चुकते ही बुखार चढ़ आवे और जिसे आमज्वर हो, उसे वमन यानी कय करानी चाहिये। अत्यन्त लङ्घन करने से हड़फूटन, खाँसी, मन में भ्रम प्रभृति तकलीफें उठ खड़ी होती हैं; भूख प्यास का नाश हो जाता और रोगी बलहीन हो जाता है। इस वास्ते लङ्घन विचार कर कराने चाहिएँ। लङ्घन के सम्बन्धमें विस्तारसे हम आगे लिखेंगे।

२४ वैद्य जिस रोगी का इलाज करे, उस की औषधि ही का प्रबन्ध करके न रह जाय। साथ-ही पथ्य-अपथ्य का भी ख़याल रक्खे। हमने अनेक वैद्य ऐसे देखे हैं, जो रोगी को देख कर दवा लिख जाते या दे जाते हैं, परन्तु पथ्य का उन्हें ख़याल ही नहीं रहता। रोगी या रोगी के घरवाले अगर पूछते हैं, तो आप लापरवाही से साबूदाना या मूँग का यूप या रूखी रोटी, परवल का साग आदि बता कर अपना पीछा छुड़ाते हैं। वैद्यों को इस बात का हमेशा ख़याल रखना चाहिये कि, बिना पथ्य सेवन के हज़ार उत्तम औषधियाँ देने पर भी, रोगी को आराम नहीं हो सकता। कहा है:—

> विनापि भेपजैर्व्याधिः, पथ्यादेव निवर्त्तते।
> नतु पथ्यविहीनस्य. भेषजानां शतैरपि॥
> पथ्ये सति गदार्त्तस्य. किमौषध निषेवणैः।
> अपथ्ये सति गदार्त्तस्य,किमौषधनिषेवणैः॥

बिना दवा के केवल पथ्य से भी रोगी का रोग आराम हो जाता है और पथ्यहीन रोगी का रोग हज़ारों दवाइयों के सेवन से भी आराम नहीं होता।

यदि पथ्य सेवन किया जाय, तो रोगी को दवा खाने की ज़रूरत नहीं; उस का रोग बिना दवाके ही आराम हो जायगा; यदि रोगी अपथ्य सेवन करे, तो उसे दवा देना व्यर्थ है; क्योंकि अपथ्य सेवन करने पर, हज़ारों दवाइयाँ देने से भी रोग आराम न होगा, इसीलिये कहा है कि "एक पथ्य और हज़ार दवा।"

२५ कैसी भी बड़ी जगह हो, पर वैद्यको रोगीके घर बिना बुलावा आये हरगिज़ न जाना चाहिये। जो वैद्य बिना बुलाये रोगीके घर जाते हैं। उन का मान नहीं होता।

कहा है:—

> कुचैलः कर्कशः स्तब्धः ग्रामीणः स्वयमागतः ।
> शास्यते यत्र वैद्यो न धन्वन्तरिसमा यदि ॥

जो वैद्य मैले कपड़े पहनता है, कड़वी वाणी बोलता है, अभिमानी कातर और व्यवहार-कुशल नहीं होता, गाँव का गँवार होता है, बिना बुलाये अपने-आप रोगी के घर चला जाता है ; यदि वह धन्वन्तरि के समान हो, तोभी उस की इज़्ज़त नहीं होती। इसके विपरीत जो साफ सफेद वस्त्र पहनता है, मीठी-मीठी बातें करता है, घमण्ड नहीं करता और व्यवहार-कुशल होता है, तमीज़दारी से काम लेता है और बिना बुलाये रोगी के यहाँ नहीं जाता, उस का आदर-मान होता है।

२६ अगर तुम किसी वैद्य को असाध्य रोगी की चिकित्सा करते और सफलता प्राप्त करते भी देख लो, तोभी तुम स्वयँ वैसा मत करो। असाध्य रोगी का इलाज हाथ में लेने वाले वैद्य अच्छे वैद्य नहीं; चाहें उन्हें घुणाक्षर न्याय की तरह सफलता ही क्यों न हो जाय। देखते हैं, अगर मूर्ख भी शीघ्र ही प्रमेह में माषान्न और मदात्यय रोगमें जौ की शराब का सेवन करता है, तो उस का काम बन जाता है।

२७ पहले के वैद्य रोगी के जल का बहुत कुछ ख़याल रखते थे ; मगर आजकल के वैद्य भी डाक्टरों की देखा-देखी, बहुधा, सभी रोगों में शीतल जल पीने को दिला देते हैं ; अथवा जिनका ख़याल गर्म जल पर जमा हुआ है, वह सभी रोगों में औटाया हुआ जल दिला देते हैं। मगर यह बड़ी भारी ग़लती है। वैद्य को चाहिये कि, जिन रोगोंमें गर्म जल की आज्ञा है, उन में गर्म जल दिलावे और जिन में शीतल जल की आज्ञा है, उन में शीतल जल दिलवावे ; अन्यथा भलाई के बदले बुराई होने की सम्भावना है। रक्तपित्त, मूर्च्छा और ख़ूनविकार एवं पित्त

के रोगों में गर्म जल हानिकारक है ; इसी तरह जुकाम, ताज़ा ज्वर, हिचकी और खाँसी वगैरः में शीतल जल हानिकारक है। सन्निपात रोग में प्यास से पीड़ित रोगी को विना पकाया शीतल जल देना और उसकी मृत्युको बुलाना, दो बात नहीं हैं।

कहा है :—

> मूर्च्छा पित्तोष्ण दाहेषु, विषरक्ते मदात्यये।
> श्रमे भ्रमे विदग्धेऽन्ने. तमके वमथौ तथा॥
> उर्द्ध्वगे रक्तपित्ते च शीताम्बु प्रशस्यते।
> पार्श्वशूले प्रतिश्याये वातरोगे गलग्रहे।
> आध्माने स्तिमिते कोष्ठे सद्यः शुद्धौ नवज्वरे॥
> अरुचि ग्रहणी गुल्मश्वास कासेषु विद्रधौ।
> हिक्कायां स्नेहपाने च शीताम्बु परिवर्जयेत्॥
> सन्निपातेन तृष्यन्तं, पार्श्वरुक्तालु शोषिणम्।
> यः पाययेज्जलं शीतं, स मृत्युर्नर विग्रहः॥

मूर्च्छा, पित्त, गरमी, दाह, विष, रक्तविकार, मदात्यय, श्रम, भ्रम, तमकश्वास, वमन और ऊपरके रक्तपित्त,—इन रोगोंमें तथा जिसका अन्न जल गया हो, उसे शीतल जल अच्छा है।

पसली की पीड़ा, जुकाम, वादीके रोग, गलग्रह, अफारा, दस्तकब्ज़, जुलाब के ऊपर, नये बुखार में, अरुचि, संग्रहणी, गुल्मरोग, श्वास, खाँसी, विद्रधि और हिचकी में तथा तेल आदि पीने पर शीतल जल पीना मना है ; अर्थात इन रोगोंमें गरम किया हुआ जल पीना चाहिये।

सन्निपात-रोगी यदि प्यास के मारे घबरा रहा हो,—उस की पसलियों में दर्द हो, उस का तालुआ सूख रहा हो, अगर ऐसी दशा में वैद्य उस रोगी को ठण्डा पानी पीनेको दिलावे, तो उस वैद्य को रोगी की मृत्यु समझना चाहिये।

बहुत से रोग ऐसे भी हैं, जिनमें वैद्यको रोगीके लिये थोड़ा-थोड़ा जल पीनेकी हिदायत करनी चाहिये। अरुचि, जुकाम, मन्दाग्नि, सूजन, क्षय, मुखप्रसेक (मुँहसे जल गिरना), उदर-रोग, कोढ़, नेत्ररोग, ज्वर, व्रण और मधुमेह में अल्प जल पीना अच्छा है।

२८ सन्निपात में रोगी अक्सर बकझक करने लगता है, उस समय लोग कहा करते हैं कि, इसे वादी आ गई है। मूढ़ वैद्य उस वादी के शान्त करने के लिये रोगी को "घी" पिलाते हैं, क्योंकि घृतपान करने से वातकी शान्ति होना प्रसिद्ध है। मगर यह बड़ी भारी ग़लती है, सन्निपातमें "घी" पिलाना रोगी को मारना है। बङ्गसेन में लिखा है:—

> सन्निपातेन मनुजं विलपन्तन्तु यो घृतम्।
> पाययेद् भोजयेद् वापि तौ च स्यातामुभौ वधम्॥

सन्निपात-रोगमें प्रलाप करते हुए रोगी को घी पिलाने या उसके भोजनमें घी देनेसे रोगी मर जाता है।

सन्निपात-रोगी को भूख लगने पर मांस और भात देना तथा दाहके मारे रोगी के चिल्लाने पर उसके ऊपर ठण्ढा पानी गिराना, महामूर्खों का काम है। इन बातों से रोगी मर जाता है।

सन्निपातों में "मधु" कदापि न देना चाहिये, क्योंकि मधु खाने पर शीतल उपचार किया जाता है, और सन्निपात में शीतल उपचार की मनाही है।

सन्निपात-ज्वर में अगर पसीना आवे, तो उसे शीघ्र बन्द करना चाहिये; क्योंकि पसीने से शीत आने और शीघ्र ही रोगी के मरने का भय रहता है।

सन्निपात के शान्त होने पर, दूध प्रभृति पतले रसों के सेवन या दिनमें सोने से आमाशयमें कफ सञ्चित होकर, वायु के मार्गों को रोक कर, धमनियों में घुस कर "तन्द्रा" पैदा करता है। तन्द्रावाले की आँखें आधी बन्द आधी खुली सी रहती हैं और कुछ टेढ़ी-मेढ़ीसी मालूम होती हैं, आँखों के तारे इधर-उधर घूमते हैं, पलक स्थिर हो जाते हैं, बाहर से ही दाँत दीखते हैं। ऐसे-ऐसे और भी लक्षण होते हैं। यह तन्द्रा तीन दिन तक साध्य है, फिर असाध्य हो जाती है, इसलिये नास वगैरः देकर, यथा-सामर्थ्य तन्द्राको शीघ्र दूर करना चाहिये, नहीं तो रोगी मर जायगा। ज्वरमें तन्द्रा सबसे अधिक बुरा उपद्रव है। कहा है:—

सन्निपात ज्वरोत्पन्नां युक्त्या तन्द्रां जयेद्भिषक् ।
उपद्रवः कष्टतमो, ज्वराणां सविशेषतः ॥

सन्निपात-ज्वर में जो तन्द्रा पैदा हो, उसे वैद्य को बड़ी बुद्धिमानी से नाश करना चाहिये, क्योंकि ज्वर मे यह उपद्रव सबसे अधिक कष्ट-कर है ।

सन्निपात-ज्वर के अन्त में रोगीके कान की जड़में एक प्रकार की घोर सूजन पैदा हो जाती है, उस सूजनसे कोई ही भाग्यवान बचता है; नहीं तो जिनके होती है, वे ही मर जाते हैं । उसको भी अपनी भरसक जोंक प्रभृति उपचारों से शीघ्र नाश करना चाहिये ।

सन्निपात-ज्वर के रोगियों के आराम करने के वास्ते—बेहोशी, पसीना, तन्द्रा प्रभृति उपद्रवोंके नाश करने के लिये,—उत्तमोत्तम नास, अञ्जन, शरीर या हाथ-पैरों में मलनेकी उत्तमोत्तम दवाइयाँ वैद्य पहले से तैयार रक्खे । ऐसे रोग में वक्त पर हाथ पैर फूल जाते हैं, अनेक चीज़ों के जल्दी न मिलने या तैयार करने में देरी होने से रोगी की जान चली जाती हैं । यहाँ हमने सन्निपात ज्वर-सम्बन्धी दो चार इशारे लिख दिये हैं । खोल-खोलकर प्रत्येक विषय, जहाँ सन्निपात-ज्वर का ज़िक्र होगा, वहाँ समझावेंगे ।

जितने रोग हैं, उनमें ज्वरकी चिकित्सा कठिन है। गाय भैंस हाथी घोड़े प्रभृति पशुओं को तो ज्वर मारही डालता है; केवल मनुष्य इसे सह लेते हैं, पर मनुष्योंमें भी यह स्वभावसे ही कष्ट-साध्य है । यह सब रोगों से बलवान है, इसीसे इसे रोगोंका राजा कहा है । ज्वरमें भी सन्निपात ज्वर सबसे बुरा है । इसलिये वङ्गसेन ने कहा है:—

समुद्रतरणं ह्येतद्वदन्ति भिषगीश्वराः ।
मृत्युना सह योद्धव्यं सन्निपात चिकित्सुना ॥
सन्निपातार्णवे मग्नं योऽभ्युद्धरति मानवम् ।
कस्तेन न कृतो धर्म्मः काञ्च पूजां न सोऽर्हति ॥

जो वैद्य सन्निपातकी चिकित्सा करता है, वह साक्षात् मौत से लड़ता है ; उसको प्राचीन वैद्य समुद्र से निकालनेवाला कहते हैं ।

सन्निपात-रूपी समुद्र में डूबे हुए रोगीको जो बचाता है, उसने कौनसा धर्म नहीं किया और वह किस पूजा के योग्य नहीं है ?

हारीत-संहितामें लिखा है,—"सन्निपात-ज्वर में पहले वात-कफको नाश करनेवाली क्रिया करनी चाहिये ; जब कफका क्षय हो जाता है तब वात और पित्त आपही शान्त हो जाते हैं। सन्निपात-ज्वरमें यत्नसे तन्द्रा को दूर करना चाहिये, क्योंकि यह बड़ा कठिन और शीघ्र प्राण-नाशक उपद्रव है। सन्निपात-ज्वरमें कफसे पूरित रोगीको जो वैद्य पथ्य देता है, वह वैद्य रोगी का शत्रु है। इस ज्वरमें पथ्य और दवा योंही न दे देनी चाहिये।" मतलब यह है कि,वैद्य सन्निपात-ज्वरमें ऐसे उपाय करे, जिससे कफ दूर हो। जब कफ निकल जाय, शरीरके छेद शुद्ध हो जायँ, शरीर हलका हो जाय और प्यास जाती रहे ; तब वैद्य पथ्यादिक का विचार करे ; कफ के बिना दूर हुए ही यदि पथ्य दे दिया जायगा, तो रोगी अवश्य मरेगा। सन्निपातके इलाजमें बड़े धैर्य्य, बड़े साहस और बड़ी बुद्धिमानी की ज़रूरत है।

२६ याद रक्खो ; ज्वर ऋतुके अनुसार दोषोंकी तुल्यता होने से साध्य होता है ; प्रमेह दोषों की दूष्यता समान होने से साध्य होता है और रक्तगुल्म पुराना होने से सुखसाध्य होता है।

३० जिस रोगी के शरीर की शोभा नष्ट होगई हो, इन्द्रियाँ अपना-अपना काम न कर सकती हों, अन्नमें एकदम अरुचि हो, ज्वर तेज़ और उसका वेग गम्भीर हो,—ऐसे ज्वर रोगीका इलाज मत करो।

बवासीर याने अर्शके रोगीको भी समझ-बूझकर हाथमें लेना चाहिये। यदि बवासीर गुदाकी पहली बलि या पहले आँटे में हो, एक दोष से उत्पन्न हुई हो और बहुत दिनों की न हो तब तो आप इलाज कीजिये ; रोगी आराम हो जायगा। अगर बवासीर दो दोषोंसे पैदा हुई हो, गुदा की दूसरी बलिमें हो और जिसे एक वर्ष हो चुका हो, वह तक-लीफ़ से आराम होती है। जो बवासीर जन्म से हो, अथवा तीनों दोषों से पैदा हुई हो और भीतरकी बलिमें हो, उसको असाध्य समझो

और वैसी बवासीर आराम करनेका दावा मत करो। हाँ, असाध्य बवासीर भी; अगर रोगी की उम्र बाक़ी हो; वैद्य, औषधि, सेवक और रोगी अपने-अपने चारों गुणों से युक्त हों; रोगी की अग्निदीप्त हो; तो शायद बड़ी-बड़ी चेष्टाओं से आराम हो जाय।

अगर बवासीरवाले रोगीकेहाथ, पाँव, मुख, नाभि, गुदा और फोतों मेंसूजन हो; हृदय और पसलियोंमें दर्द हो; तो रोग को असाध्य समझो।

जिस बवासीर-रोगी को प्यास लगती हो, अरुचि हो, दर्द के मारे घबराता हो, ख़ून ज़ियादा गिरता हो, साथ ही सूजन और अतिसार हो, ऐसा रोगी मर जाता है।

अनेक बवासीर-रोगी जिनकी बवासीर में अत्यन्त तकलीफ़ नहीं होती, जिनके शरीर में बल होता है, दवा सेवन करते रहते हैं और साथही अपथ्य भी सेवन करते रहते हैं, इसलिये उनको आराम नहीं होता; बल्कि रोग बढ़ जाता है। "हारीत-संहिता" में लिखा है :—

> यथाकाष्टचयं दूरात् प्राप्य घोरतरोऽग्निकः।
> तथा ह्यपथ्यस्य संयोगादभवेद्घोरतरोगदः॥

जैसे लकड़ियोंके ढेर में दूर से पड़ी हुई अग्नि घोर रूप धारण कर लेती है; उसी तरह अपथ्य के संयोग से रोग भी घोर रूप धारण कर लेता है। इसलिये आप अपने रोगी से चेता-चेताकर कह दो, कि भाई! दिशा पेशावकी हाजत मत रोकना, स्त्री-प्रसङ्ग मत करना, हाथी या घोड़े की सवारी मत करना, उकरू मत बैठना, दोष करनेवाले पदार्थ हरगिज़ न खाना-पीना। एक तरफ दवा होती रहे और दूसरी ओर रोगी उपरोक्त काम करता रहे, तो रोग कैसे आराम होगा? बवासीर-रोगी को "माठा" सेवन करने की सलाह ज़ोर से दीजिए। माठा सेवन करने से मस्से जाते रहते हैं और फिर पैदा नहीं होते। माठे से बल, वर्ण और अग्नि की वृद्धि होती है, शरीर के स्रोत शुद्ध हो जाते हैं, इसलिए रसका सञ्चार अच्छी तरह होना है और कफ-वात के सैकड़ों विकार नाश हो जाते हैं।

चीते की जड़ की छाल को खूब महीन पीस कर, घड़े में लेप करके, उसीमें दही जमा कर और बिलोकर माठा पीने से हमारे अनेक रोगी बवासीर से छुटकारा पागये हैं। यह नुसख़ा बहुत अच्छा है। सारांश यह, कि बवासीरमें मेदेका बलवान रहना, अग्निवृद्धि होना, भूख लगना बहुत ज़रूरी है। इसके लिए तक यानी माठा *परमोत्तम है। आप अपने रोगीको माठा पीने की सलाह अवश्य देते रहें।

पाण्डु या पीलिया अत्यन्त पुराना हो, तो असाध्य समझो। जिस पीलियेवालेके शरीरमें सूजन हो, जिसे जगत्के सभी पदार्थ पीले-ही-पीले दीखें, उसे भी असाध्य समझो। रुधिरके क्षय होने से जिसका शरीर सफेद या पीला होगया हो; जिसके दाँत, नाख़ून और नेत्र पीले हो गये हों और जिसे सारे संसारके पदार्थ पीले दीखें, वह पीलिये वाला रोगी अवश्य मर जाता है।

वात-व्याधि, प्रमेह, कुष्ठ, बवासीर, भगन्दर, पथरी, मूढ़गर्भ और उदर रोग—ये आठ "महाव्याधि" कहलाती हैं। ये आठों स्वभाव से ही कष्टसाध्य हैं। यदि इन महारोगोंके साथ बलक्षय, मांसक्षय, श्वास, तृषा, शोष, छर्दि, ज्वर, मूर्च्छा, अतिसार और हिचकी—ये उपद्रव भी हों ; तब तो इनका आराम होना असम्भव ही है। इसलिये उत्तम वैद्य, जो अपनी सिद्धि चाहे, ऐसे रोगवालोंको हाथ में न ले।

बालक, अति वृद्ध और विकलके सारे शरीर में सूजन हो, तो वे निश्चय ही मर जायेंगे।

जिस रोगीका सारा चमड़ा पीला होगया हो, जिसकी आँखें पीली पड़ गई हों, जिसका पेशाब भी पीला हो तथा जिसे सभी चीज़ें पीली दीखें—ऐसा रोगी अवश्य मर जाता है।

---

* यद्यपि माठा बल पैदा करता और थकान दूर करता है ; ग्रहणी-दोष, बवासीर और अतिसारमें हितकारी है तथापि और और रोगोंमें यह नुक़सान भी करता है। जिनको मूर्च्छा, भ्रम, प्यास-रोग और रक्तपित्त हो, उनको माठा कभी न देना चाहिये। इन रोगोंमें माठा लाभके बदले हानि करता और अनेक रोग पैदा करता है। ग्रीष्म ऋतु और शरद् ऋतु में माठा हानिकारक है।

जो रोगी बहुत दिनों का बीमार हो और जिसका रोग बढ़ रहा हो, जो खाने को न खाता हो, जो टूटे हुए अङ्गों को देखता रहता हो और औषधि न लेता हो—ऐसे रोगी का इलाज समझ-बूझ कर करना चाहिये, क्योंकि ऐसी जगह सफलता की आशा बहुत ही कम होती है।

जिस रोगी की जीभ, दोनों होठ, और आँखें लाल होगई हों अथवा उनसे खून गिरता हो;—ऐसा रक्तातिसार और रक्तपित्तवाला रोगी मर जाता है। जिसकी क़य में खून गिरे, विशेष करके जिसकी आँखें लाल हों और जिसे सब तरफ लाल-ही-लाल रङ्ग दीखे—ऐसा रक्त-पित्त-रोगी भी मर जाता है।

सूचना

हमारे यहाँ से भर्तृहरि कृत "नीतिशतक" का अपूर्व अनुवाद प्रकाशित हुआ है। ऐसा अनुवाद आजतक भारत में प्रकाशित नहीं हुआ। जियादा तारीफ करना फिज़ूल है। नीचे की सम्मति देखनेसे मालूम हो जायगा कि, अनुवाद लाजवाब है कि नहीं:—

श्री शारदा लिखती है—

"संसारमें अपना जीवन सुख और सफलता के साथ बिताने के लिये मनुष्य को नीति-ज्ञान की आवश्यकता है। इसी नीति-ज्ञान के लिए कविवर भर्तृहरिका "नीति-शतक' संस्कृत-साहित्यमें बहुत प्रसिद्ध है। इसकी बड़ी भारी विशेषता यह है, कि यह जितना सरल है उतना ही सुन्दर है। इसी कारण, थोड़ीबहुत संस्कृत जानने वालों को भी इसके अनेक श्लोक कठाग्र रहते हैं। इस ग्रन्थ के अनेक हिन्दी अनुवाद हो चुके हैं, परन्तु प्रस्तुत पुस्तक जिस सुन्दर रूप में निकली है, उसकी कल्पना शायदही किसी ने की हो। इस सुन्दर कल्पना का श्रेय बाबू हरिदासजी को है, जो हिन्दी के एक अति उत्साही पुस्तक-प्रकाशक ही नहीं, वरन् एक सुलेखक भी हैं। यही कारण है, जो आपकी प्रकाशित पुस्तकें उपयोगी होने के साथही, अपनी छपाई की सजधज में निराली होती हैं।।

इस 'नीतिशतक' में पहले मूल श्लोक, उसके नीचे भावार्थ, भावार्थ के नीचे व्याख्या, और व्याख्या के अन्त में अँगरेजी अनुवाद दिया गया है। पूर्व तथा पश्चिम के अनेक प्रसिद्ध नीतिकारों की नीतियाँ भी अनेक स्थानों पर दी गई हैं। कहीं कहीं अनुवादक ने अपना अनुभव भी लिख दिया है, जो बहुत अच्छा हुआ है। कई श्लोंको के चित्र भी दिये गये हैं, जिससे पुस्तक में विशेषता आगई है। पुस्तक के आरम्भ में महाराजा भर्तृहरि का २७ पृष्ठ-व्यापी सचित्र परिचय दिय गया है। समग्र ग्रन्थ सुन्दर, चिकने और मोटे कागज पर, तीन रङ्गों में छापा गया है। इतनी सब सजधज को देखते हुए ८॥) मूल्य कुछभी अधिक नहीं है। जो लोग ८॥) खर्च न करना चाहें, वे ४॥) में साधारण संस्करण की प्रति खरीद सकते हैं।

उपयोगी परिभाषायें।

(१) आयुर्वेद—जिस ग्रन्थ से आयु का हिताहित और आयु का प्रमाण मालूम हो, उसे 'आयुर्वेद' कहते हैं।

(२) आयु—शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा के संयोग को 'आयु' कहते हैं।

(३) द्रव्य—पृथ्वी, जल, तेज (अग्नि), पवन, आकाश, आत्मा, मन, काल और दिशाओंके समूह को 'द्रव्य' कहते हैं।

(४) चेतन—इन्द्रिय-विशिष्ट द्रव्य को 'चेतन' कहते हैं। जैसे; मनुष्य पशु पक्षी आदि।

(५) अचेतन—इन्द्रिय-रहित द्रव्य को 'अचेतन' कहते हैं। जैसे; वृक्षादि।

(६) स्थावर—इन्द्रियहीन जीवोंको जो चेतना-रहित हैं 'स्थावर' कहते हैं।

(७) जङ्गम—इन्द्रियवाले चैतन्य जीवोंको 'जङ्गम' कहते हैं।

(८) अर्थ—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द को 'अर्थ' या 'विषय' कहते हैं।

(६) विषय—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द इनको विषय कहते हैं। ये पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के विषय हैं।

(१०) द्रव्यगुण—गुरु, लघु आदिको गुण कहते हैं। "द्रव्यगुण" २० हैं।

(११) कर्म—प्रयत्न आदि चेष्टा को "कर्म" कहते हैं।

(१२) शारीरिक दोष—वात, पित्त और कफ,—ये शारीरिक दोष हैं।

(१३) मानसिक दोष—रज और तम,—ये मनके दोष हैं।

शारीरिक वायु—तीन दोषोंमें से एक दोष है। यह रूखा, हलका शीतल, सूक्ष्म, चञ्चल, पिच्छिलता-रहित और परुष है। इस के विपरीत गुणवाले द्रव्यों से इसकी शान्ति होती है।

(१५) रस—रस छः हैं। मीठा, खट्टा, नमकीन, चरपरा, कड़वा और कसैला।

(१६) वातनाशक रस—जिस रस से वादी शान्त हो, उसे वात-नाशक रस कहते हैं। मीठा, खट्टा और नमकीन,—ये तीन रस वातनाशक हैं।

(१७) पित्तनाशक रस—मीठा, कसैला और कड़वा—ये तीन रस पित्त को शान्त करते हैं।

(१८) कफनाशक रस—कड़वा, कसैला और चरपरा,—ये तीन रस कफ को शान्त करते हैं।

(१६) पित्त—तीन दोषों में से एक दोष है। यह कम चिकनाई लिये, गर्म, तीक्ष्ण, पतला, खट्टा, दस्तावर और चरपरा है। रूखे, शीतल प्रभृति विपरीत गुणवाले द्रव्यों से इसकी शान्ति होती है।

(२०) कफ—तीन दोषोंमें से एक दोष है। यह भारी, शीतल, मृदु, चिकना, मधुर, स्थिर और पिच्छिल है। हलके गर्म प्रभृति विपरीत गुणवाले द्रव्यों से इसकी शान्ति होती है।

(२१) प्राणिज द्रव्य—प्राणियोंसे पैदा होनेवाले द्रव्योंको "प्राणिज द्रव्य" कहते हैं। जैसे; दूध, शहद और गोरोचन आदि।

(२२) पार्थिव द्रव्य—पृथ्वी-सम्बन्धी द्रव्योंको "पार्थिव द्रव्य" कहते हैं। जैसे; शीशा, राँगा, ताँबा और हरताल आदि।

(२३) स्थावरद्रव्य—चेतना-रहित जीवों से सम्बन्ध रखनेवाले द्रव्यों को "स्थावर द्रव्य" कहते हैं। जैसे; आम, जामुन, गूलर, जौ, गेहूँ आदि।

(२४) मूलप्रधान औषध—उन औषधों को कहते हैं; जिनकी केवल मूल या जड़ ही ली जाती हैं। ये गिन्तीमें १६ हैं। जैसे वच, निशोथ आदि।

(२५) फल-प्रधान औषधि—उन औषधों को कहते हैं, जिनके फल ही लिये जाते हैं। ये उन्नीस हैं। जैसे मैनफल, बायबिडङ्ग आदि।

(२६) चार स्नेह—घी, तेल, चरबी और मज्जा;—ये चार स्नेह या चिकने पदार्थ हैं।

(२७) पञ्चलवण—संचर नोन, कालानोन, सेंधानोन, विड़नोन और समन्दर नोन;—ये पाँच तरह के नोन हैं। अजीर्ण, वायुगोला, शूल और उदर रोगों में ये हितकारी हैं।

(२८) आठ मूत्र—भेड़का मूत्र, बकरी का मूत्र, गाय का मूत्र, भैंस का मूत्र, हथिनी का मूत्र, ऊँटनी का मूत्र और गधी का मूत्र; ये आठ तरह के मूत्र होते हैं। ये अफारा, बवासीर, उदर-रोग, वायुगोला और कुष्ठ आदि रोगोंमें तथा लेप, पुलटिस और तरड़ा देनेके काम में आते हैं। इनके पीने से कफ का नाश, वायु का अनुलोमन (सीधापन) और पित्तका अधोगमन (नीचे जाना) होता है। इनमें बकरीका दूध पथ्य और त्रिदोष-नाशक है। गोमूत्र—कृमिरोग, कोढ़ और खुजलीको आराम करता है; पीने से त्रिदोष-जन्य-उदर-रोग नाश होते हैं। भैंस का मूत्र दस्तावर है; बवासीर, सूजन और उदर-रोग में अच्छा है। ऊँट का मूत्र—श्वास, खाँसी और बवासीर को नाश करता है। गधी का मूत्र—मृगी और उन्मादमें अच्छा है। हाथीका मूत्र—कृमि और कोढ़को नाश करता है;मल-मूत्रके रुकने को दूर करता है; विष-विकार, कफ और बवासीर में अच्छा है।

(२९) आठ दूध—भेड़, बकरी, गाय, भैंस, ऊँटनी, घोड़ी, हथिनी, और स्त्री का दूध—ये आठ दूध होते हैं।

(३०) तेरह वेग—मूत्र, मल, शुक्र, अधोवायु, वमन, छींक, डकार,

जँभाई, भूख, प्यास, निद्रा, आँसू और श्वास—ये तेरह वेग हैं। इनके रोकने से बड़े-बड़े भयानक रोग होते हैं।

(३१) चिकित्साके पाद—वैद्य, औषध, सेवक और रोगी,—ये चार चिकित्सा के पाद हैं।

(३२) रोग—वात, पित्त और कफकी विषमताको "रोग" कहते हैं।

(३३) स्वास्थ्य—वात, पित्त और कफकी समानताको "स्वास्थ्य" या "आरोग्य" कहते हैं।

(३४) सुख-दुःख—आरोग्यता को "सुख" और रोग को "दुःख" कहते हैं।

(३५) चिकित्सा—जिस क्रिया द्वारा विषम (बिगड़े हुए) दोष समान किये जाते हैं, उसे ही "चिकित्सा" कहते हैं।

(३६) वैद्य के चार गुण—शास्त्रपारङ्गतता, बहुदर्शिता, चतुरता और पवित्रता,—ये चार वैद्य के गुण हैं।

(३७) औषध के चार गुण—बहुता, योग्यता, योग-वियोग-पूर्व्वक कल्पना और कीड़े आदिसे रहित होना,—औषधके ये चार गुण हैं।

(३८) सेवक के चार गुण—शुश्रूषा-ज्ञान, चतुराई, स्वामिभक्ति और पवित्रता—सेवक के ये चार गुण हैं।

(३९) रोगी के चार गुण—स्मरण-शक्ति, वैद्य की आज्ञापालन, निर्भयता और रोग का यथार्थ हाल कहना—रोगी के ये चार गुण हैं।

(४०) साध्य—जिस रोग को वैद्य आराम कर सके, उसे "साध्य" कहते है।

(४१) सुखसाध्य—जिस रोग को वैद्य सुख से आराम कर सके, उसे "सुखसाध्य" कहते हैं ; अथवा जो रोग एक दोषसे उत्पन्न होता है, जिसमें कोई उपद्रव नहीं होता और जो नया होता है, उसे "सुखसाध्य" कहते हैं। सुखसाध्य रोगके आराम करनेमें वैद्यको बहुत कष्ट नहीं उठाना पड़ता।

(४२) कष्टसाध्य—जिस रोग को वैद्य बड़ी तकलीफ़ों से आराम

कर सके, अथवा जो चीरफाड़ प्रभृतिसे इलाज करने लायक़ हो, उसे "कष्टसाध्य" या "कृच्छ्रसाध्य" कहते हैं।

(४३) असाध्य—जो रोग आराम न हो सके, रोगी के प्राण नाश करके पीछा छोड़े, उसे "असाध्य" कहते हैं।

(४४) अचिकित्स्य—जिस रोगका इलाज न हो सके, उसे 'अचिकित्स्य' कहते हैं।

(४५) याप्य—जो रोग क्रिया यानी चिकित्साको धारण कर ले, किन्तु रोगमें की हुई क्रिया ज्योंही निवृत्त हो, कि रोगी मर जाय; ऐसे रोगको "याप्य" कहते हैं ; अथवा असाध्य रोग यदि नरम हो, आराम होनेका कुछ भरोसा हो, तो उसे भी "याप्य" कहते हैं।

(४६) द्विदोषज—जो रोग वात, पित्त और कफ इन तीन दोषों में से किन्हीं दो दोषोंके कोपसे हो, उसे "द्विदोषज" कहते हैं।

(४७) त्रिदोषज—जो रोग तीनों दोषोंसे हो, उसे "त्रिदोषज" कहते हैं।

(४८) चार परीक्षा—आप्तोपदेश, प्रत्यक्ष, अनुमान और युक्ति—ये परीक्षा के चार प्रकार हैं ; यानी इन चारों से परीक्षा होती है।

(४९) आप्तोपदेश—जो ज्ञान और तपोबल के प्रभाव से रजोगुण और तमोगुण से रहित हो गये हैं, जो त्रिकालज्ञ हैं, जिनका निर्मल ज्ञान कभी नाश नहीं होता, उनको 'आप्त' कहते हैं और उनके उपदेश को "आप्तोपदेश" कहते हैं।

(५०) प्रत्यक्ष ज्ञान—आत्मा, मन, इन्द्रिय और इन्द्रियों के विषय,—इनके इकट्ठे होनेसे इन्द्रिय-ज्ञान होता है। इसीको "प्रत्यक्ष-ज्ञान" कहते हैं।

(५१) अनुमान—कार्य, कारण और कार्य-कारण,—इन तीनोंके लक्षणोंसे किसी बात का अन्दाज़ा लगानेको "अनुमान" कहते हैं। जैसे; धूआँ के देखने से आग का अनुमान होता है और गर्भ के देखने से इस बात का अनुमान किया जाता है कि, पहले मैथुन किया गया है।

(५२) युक्ति—जो बुद्धि अनेक प्रकार के कारणों से अनेक प्रकार के

नतीजे निकाल सके, उसे 'युक्ति' कहते हैं। जैसे बीज बिना अंकुर कहाँ से होगा ?

(५३) त्रिवर्ग—धर्म, अर्थ और काम,—ये "त्रिवर्ग" कहाते हैं।

(५४) आप्तागम—लोक-परम्परा से चले आनेवाले शास्त्रवाक्य को 'आप्तागम' कहते हैं।

(५५) त्रिविध बल—स्वाभाविक बल, कालकृत बल और युक्तिकृत बल—इन तीनों प्रकार के बलों को 'त्रिविधबल' कहते हैं। शरीर और मन के स्वभावसे जो बल होता है, उसे "स्वाभाविक बल" कहते हैं। ऋतु विशेष और अवस्था विशेष के कारण जो बल होता है, उसे "कालकृत बल" कहते हैं, और जो बल अच्छा-अच्छा खाने और कसरत वगैरः से किया जाता है, उसे "युक्तिकृत बल" कहते हैं।

(५६) तीन आयतन—रोगके तीन आयतन या कारण होते हैं। (१) इन्द्रियोंके विषय,—रूप, रस, शब्द, स्पर्श और गन्धका अतियोग, अयोग और मिथ्या योग। (२) कर्म का अतियोग, अयोग और मिथ्या योग। (३) काल का अतियोग, अयोग और मिथ्या योग। बस, इन तीन कारणों से रोग होते हैं। किसी खूबसूरत स्त्री को हद से ज़ियादा देखना "रूपका अतियोग" है। किसी खूबसूरत स्त्री या चीज़ को देखना ही नहीं या देखना छोड़ देना; "रूप का अयोग" है। बहुत ही बारीक या बहुतही दूरकी अथवा महाभयङ्कर चीज़ को देखना—"मिथ्या योग" है। इसी तरह इन्द्रियों के और चारों विषयों के सम्बन्ध में समझ लो।

किसी काम में एकदम लग जाना "कर्म का अतियोग" हैं। उसमें बिल्कुल न लगना "कर्म का अयोग" है। कर्म को जिस तरह करना चाहिये, उस तरह न करना—कर्म का "मिथ्या योग" है। मलके वेग को रोकना या बिना वेग के मल त्याग करना, विषम भाव से चलना-फिरना सोना प्रभृति "शारीरिक मिथ्या योग" हैं। निन्दा करना, झूठ बोलना, झगड़ा करना, कठोर वचन बोलना प्रभृति "वाचिक मिथ्या योग" हैं। शोक, क्रोध, लोभ, ईर्षा, द्वेष प्रभृति "मानसिक-मिथ्या योग" हैं।

सरदी-गरमी का ज़ियादा पड़ना, वर्षा का ज़ोर से होना, "काल का अतियोग" है। इन का ऋतुके लक्षण अनुसार न होना काल का अयोग है। इनका ऋतु के लक्षण-अनुसार न होना, "कालका मिथ्या योग" है।

(५७) कर्म—शरीर, वाणी और मन की चेष्टा को 'कर्म' कहते हैं।

(५८) काल—सरदी, गरमी और वर्षा इन मौसमों के समुदाय या समिष्टि को "संवत्सर" या "वर्ष" कहते हैं। इसीको "काल" कहते हैं।

(५६) तीन रोग—रोग तीन तरहके होते हैं:—(१) निजरोग, (२) आगन्तु रोग, (३) मानसिक रोग। शरीर के वायु, कफ और पित्त के कारण से जो रोग होते हैं, उन्हें 'निज रोग' कहते हैं। विष, हवा, आग और चोट वग़ैरः के लगने से जो रोग होते हैं, उन्हें 'आगन्तु' रोग कहते हैं। प्यारी चीज़ के न मिलने और अप्यारी चीज़ के मिलने से जो रोग होते हैं, उन्हें 'मानसिक' रोग कहते हैं।

(६०) तीन रोग-स्थान—रोगों के तीन स्थान हैं :—(१) रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र;—ये सात धातु और त्वचा (चमड़ा); (२) मर्म, अस्थि, सन्धि; (३) कोष्ठ या कोठे। येही तीनों रोगों के स्थान हैं। गलगण्ड, अपची, अर्बुद, कुष्ट प्रभृति रोग पहले प्रकार के हैं। पक्षाघात, अंगग्रह, अपतानक, लकवा (अर्दित), सूजन, यक्ष्मा, अस्थि-शूल, सन्धि-शूल तथा सिर में होनेवाले, वस्ति में होनेवाले और हृदय में होनेवाले रोग दूसरे प्रकार के हैं; यानी ये मर्म-स्थानों, हड्डियों और शरीर के जोड़ों में होते हैं। ज्वर, अतिसार, वमन, हैज़ा, श्वास, खाँसी, हिचकी, अफारा, उदर-रोग और तिल्ली प्रभृति रोग कोठों में होते हैं।

(६१) तीन वैद्य—छद्मचर वैद्य, सिद्ध-साधित वैद्य और वैद्य-गुण-युक्त वैद्य,—ये तीन वैद्य होते हैं। जो वैद्योंकीसी शीशी और पुस्तक वग़ैरः रखते हैं एवं वैद्यों के से कपड़े पहन कर वैद्य होने का ढोंग करते हैं, पर असल में वैद्यक का अक्षर भी नहीं जानते, उन्हें "छद्मचर वैद्य" कहते हैं। जो किसी नामी-गिरामी विद्वान् वैद्य के कारण से पुजने

लगते हैं, मगर जानते कुछ नहीं, उन्हें "सिद्ध-साधित वैद्य" कहते हैं। जो वैद्य प्रयोग-कुशल, विद्वान्, आरोग्यदाता और प्राण-रक्षक होते हैं यानी सच्चे वैद्य होते हैं, उन्हें "वैद्य" या "सद्वैद्य" कहते हैं। आज-कल छद्मचर और सिद्ध-साधित वैद्य बहुत हैं।

(६२) तीन औषधि--तीन प्रकार की औषधियाँ होती हैं। (१) देवव्यपाश्रय (२) युक्तिव्यपाश्रय (३) सत्वावजय। हवन, जप, पूजा, व्रत, उपवास, हीरा-पन्ना आदि रत्नों का धारण करना प्रभृति, पहली क़िस्म की दवा है। क़ायदेके माफ़िक़ पथ्य-परहेज़ करना और औषधि सेवन करना, दूसरी क़िस्म की दवा है और देश, काल, बल, कुल और शक्ति के विरुद्ध काम न करना, अहित विषयों से मनको रोकना या शान्ति लाभ करना, ये तीसरी क़िस्म की दवा है। मतलब यह है कि, जप हवन व्रत उपवास प्रभृति करने, पथ्य और औषधि सेवन करने और शान्त रहने से रोग आराम होते हैं।

(६३) रसक्षय—रस धातुके क्षय या कमीको "रसक्षय" कहते हैं। जिस समय शरीर में रसका क्षय होता है, उस समय मनुष्य का हृदय चिलोयासा हो जाता है, ज़ोर की आवाज़ बर्दाश्त नहीं होती, कलेजा धक-धक करता और सूनासा मालूम होता है, ज़रा सी मिहनत करने से आँखों के सामने अँधेरा आ जाता है।

(६४) रक्तक्षय—जब शरीर में खून कम होता है, तब कहते हैं कि रक्तक्षय हुआ है। रक्तक्षय होने से शरीर का चमड़ा कड़ा, रूखा और फटासा हो जाता है।

(६५) मांसक्षय—मांसके कम होनेको कहते हैं। मांसक्षय होनेसे कमर, गर्दन और पेट ये विशेष रूप से सूख जाते हैं।

(६६) मेदक्षय--चरबी के कम होने को कहते हैं। मेदक्षय होने से सन्धियाँ फटने लगती हैं, दोनों आँखों में ग्लानि होती है, थकानसी मालूम होती और पेट पतला हो जाता है।

(६७) अस्थिक्षय—हड्डीके क्षय होने को कहते हैं। अस्थिक्षय होने

से बाल, रोएँ, नाखुन, मूँछ, हड्डी और दाँत बिना समय के यानी समय से पहिले गिर जाते हैं, जोड़ ढीलेसे हो जाते हैं और भ्रम होता है।

(६८) मज्जाक्षय—हड्डियों के गूदे के क्षीण होनेको कहते हैं। मज्जा क्षीण होने पर हड्डियाँ गिरने लगती हैं, दुर्बल और हल्की हो जाती हैं और रोगी को सदा वायु का रोग बना रहता है।

(६९) शुक्रक्षय—वीर्यके क्षय होने को कहते हैं। इसके क्षय होने से मनुष्य कमज़ोर हो जाता है, मुँह सूखता है, पीलापन छा जाता है; अवसाद, ग्लानि और नपुंसकता होती है तथा वीर्य नहीं निकलता।

(७०) विष्ठाक्षय—विष्ठा यानी मलका क्षय होनेसे वायु आँतोंमें दर्द करती है, शरीर रूखा हो जाता है, वायु कूखको ऊँची करके और तिरछी होकर ऊपर-नीचे जाती है।

(७१) मूत्रक्षय—पेशाब के कम होनेको कहते हैं। मूत्रक्षय होनेसे मूत्रकृच्छ्र रोग हो जाता है, पेशाब का रंग बदल जाता है, प्यास लगती है, मुह सूखता है, मल-मार्ग सूने, हलके और सूखे से मालूम होते हैं।

(७२) ओजक्षय—सब धातुओंमें "ओज" सार है। ओजक्षय होनेसे रोगी सदा डरता रहता है, कमज़ोर हो जाता है, हर समय चिन्ताग्रस्त रहता है, सारी इन्द्रियाँ पीड़ित होती हैं; शरीर क्षीण, रूखा और कान्तिहीन हो जाता है।

(७३) दोषों की तीन अवस्था—वात, पित्त और कफ की तीन अवस्थाएँ होती हैं। (१) क्षय (२) वृद्धि (३) स्थिति; यानी घटना, बढ़ना और समान रूपसे रहना,—ये तीन अवस्थायें होती हैं।

(७४) दोषों की तीन गति—वात, पित्त और कफ की तीन गति या चाल होती हैं—(१) ऊर्ध्व (२) अध, (३) तिर्यक; यानी ये दोष ऊपर, नीचे और तिरछे चलते हैं। इनके सिवा और भी तीन गति होती हैं—(१) कोठों में जाना, (२) रसरक्त आदि सात धातुओं और चमड़े में जाना, (३) मर्म-स्थान, हड्डी और सन्धियों में जाना।

(७५) दोषों की कालकृत तीन गति—ऋतुओं के बदलने के साथ वात, पित्त और कफकी तीन गति होती हैं :—(१) संचय, (२) कोप, (३) उपशम। जैसे वर्षा ऋतुमें पित्त का सञ्चय होता है; शरद ऋतु में उसका कोप होता है और हेमन्त में शान्ति होती है।

(७६) प्रकृतिस्थ पित्त—जब पित्त घटा या बढ़ा हुआ नहीं होता, समभावसे होता है; तब कहते हैं, कि पित्त प्रकृतिस्थ है। प्रकृतिस्थ पित्त की गरमी से ही अन्न पचता है। जब यह कुपित होता है; अनेक रोग पैदा करता है।

(७७) प्रकृतिस्थ कफ—प्रकृतिस्थ कफ ही शरीर में बल है, विकृत कफ ही शरीर में मल है, कफ ही शरीर में "ओज" कहाता है। इसे ही अवस्था-भेद से वायु कहते हैं।

(७८) प्रकृतिस्थ वायु—प्रकृतिस्थ वायुही प्राणियोंका प्राण है। इसीसे सब तरहकी चेष्टायें होती हैं। इसी के कुपित होनेसे अनेक रोग होते हैं।

(७९) प्रत्याख्याय—असाध्य रोग यदि दारुण हों, आराम होने की ज़रा भी उम्मीद न हो, तो "प्रत्याख्याय" यानी त्याज्य कहाते हैं।

(८०) निदान— रोगकी उत्पत्तिके कारण को "निदान" कहते हैं।

(८१) पूर्वरूप—रोग की उत्पत्ति के पहले लक्षण को "पूर्वरूप" कहते हैं।

(८२) रूप—रोग प्रकट हो जाने पर जो लक्षण प्रकाशित हो, उसे ही "रूप" कहते हैं।

(८३) उपशय—जो वस्तु अपनी आत्मा के अनुकूल हो, उसे "उपशय" या "सात्म्य" कहते हैं।

(८४) सम्प्राप्ति—व्याधि की उत्पत्ति को "सम्प्राप्ति" कहते हैं।

(८५) प्राधान्य सम्प्राप्ति—वातादि दोषोंके कम और ज़ियादा होने से प्रधानता और अप्रधानता होती है।

(८६) विधि—रोगों के भेद को विधि कहते हैं:—(१) निज और

आगन्तु; (२) एक-दोषज, द्विदोषज,त्रिदोषज; (३) साध्य और असाध्य, (४) मृदु और दारुण—रोगोंके ये चार प्रकार हैं।

(८७) विकल्प—मिले हुए वात, पित्त और कफ के अंशांश की कल्पनाको "विकल्प" कहते हैं। जैसे; ज्वरके ६३ विकल्प होते हैं।

(८८) बलकाल सम्प्राप्ति—ऋतु, दिन, रात, और आहार इनके काल-भेद से व्याधि के बलकाल में भेद होता है। वर्षा-काल की अपेक्षा शरद् ऋतु में पित्त-ज्वरका अधिक बल होता है। मध्याह्न-काल और मध्यरात्रि में पित्तज्वरवाले को अधिक कष्ट होता है।

(८९) चार अग्नि—तीक्ष्ण, मन्द, सम और विषम—ये चार अग्नि होती हैं।

(९०) मन्दाग्नि—मनुष्य की कफ की प्रकृति होने से मन्दाग्नि होती है, उसे थोड़ा भी आहार यथार्थ रूपसे नहीं पचता।

(९१) तीक्ष्णाग्नि—मनुष्य की पित्त प्रकृति होने से तीक्ष्ण अग्नि होती है। इस अग्निवाले को ज़ियादा खाया-पिया भी सुख से पच जाता है।

(९२) विषमाग्नि—मनुष्यकी वात प्रकृति होने से विषम अग्नि होती है। इस अग्निवालेको कभी अन्न पच जाता है, और कभी नहीं पचता है।

(९३) समाग्नि—जिसकी अग्नि सम होती है, उसका खाया-पीया अच्छी तरह पच जाता है।

(९४) रोगका निदान रोग—यों तो सभी रोगोंके आदि कारण—कुपित हुए वात, पित्त और कफ—ये तीन दोष हैं। परन्तु इनके सिवा, रोग भी रोग का कारण या निदान होता है; यानी जिस तरह कुपित हुए वात आदि दोषों से रोग होते हैं; उसी तरह रोगों से भी रोग होते हैं; अर्थात जो काम निदान करता है, वही काम रोग भी करता है। जैसे; ज्वर के संताप से रक्तपित्त होता है; रक्तपित्त से ज्वर उत्पन्न होता है; रक्तपित्त और ज्वर इन दोनों से श्वास होता है; तिल्ली के बढ़ने से

उदर-रोग होता है ; उदर-रोग से सूजन या शोथ होता है; बवासीर से उदर-रोग और गुल्म होता है; जुकाम (प्रतिश्याय) से खाँसी होती है; खाँसी से ओज प्रभृति धातुओं का क्षय होकर, क्षय या राजयक्ष्मा अथवा राजरोग होता है। पहले तो ये रोग स्वतन्त्र होते हैं, जब इन्हें बल मिल जाता है, तब ये दूसरे रोगों को पैदा करते हैं। इनमें एक विचित्रता होती है यानी कोई रोग तो दूसरे को पैदा करके आप शान्त हो जाता है; और कोई दूसरे को पैदा करके आप भी जैसे-का-तैसा बना रहता है। बवासीर आप नहीं मिटती, जैसी-की-तैसी बनी रहती है और उदर-रोग तथा गुल्म रोग पैदा कर देती है।

(९५) पीयूषपाणि—जिस वैद्यके हाथ में अमृत हो, यानी जिसके हाथमें आकर सभी रोगी आराम हो जाते हों, उसे "पीयूषपाणि" कहते है।

(९६) दोष—वात, पित्त और कफ को दोष कहते हैं। धातु और मल इन दोषोंसे दूषित होते हैं, इसलिये इन्हें "दोष" कहते हैं। यह देह को धारण करते हैं, इसलिये विद्वान् इन्हें "धातु" भी कहते हैं। वाग्भटने कहा है, वात, पित्त और कफ दूषित होने से देह का नाश करते हैं और शुद्ध होने से शरीर को धारण करते हैं।

(९७) धातु—रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र—इन सातों को "धातु" कहते हैं। यह मनुष्यके शरीर में स्वयं स्थित रह कर देह को धारण करते हैं, इसीलिये इन्हें "धातु" कहते हैं।

(९८) रस—भले प्रकार से पचे हुए भोजन के सार को "रस" कहते हैं।

(९९) मर्म्म—शिरा, स्नायु, सन्धि, मांस, और हड्डी,—ये जब इकट्ठे होकर मिलते हैं, तब"मर्म स्थल" कहलाते हैं। इन मर्मस्थालोंमें विशेष कर प्राण रहते हैं। देहधारियों के शरीरमें कुल १०७ मर्म हैं।

(१००) सन्धि—शरीरके जोड़ों को सन्धि या जोड़ कहते हैं। देहधारियोंके शरीर में २१० सन्धि या जोड़ होते हैं।

(१०१) शिरा—एक प्रकारकी नसें हैं। ये सब शिरायें नाभिमें बँधी हैं और चारों ओर को फैल रही हैं। इन्हीं से सन्धियाँ बँधी हैं और यही वातादि दोषों और रस रक्त आदि धातुओं को बहाती हैं। इन्हीं शिराओं से शरीर सिकुड़ता और फैलता है। यह गिन्ती में सात सौ हैं।

(१०२) स्नायु—स्नायु भी एक प्रकार की नसें हैं। ये शिराओंकी अपेक्षा मज़बूत हैं। देहमें मांस, हड्डी और सन्धियाँ इन्हींसे बँधी हुई हैं। मनुष्य-शरीर में नौ सौ स्नायु हैं।

(१०३) धमनी—नाड़ियों को कहते हैं। ये नाभि से उत्पन्न हुई हैं और गिन्तीमें चौबीस हैं।

(१०४) कण्डरा—बड़ी स्नायुओंको कण्डरा कहते हैं। ये गिन्तीमें १६ हैं। ये भी शरीर के सुकेड़ने और फैलाने में काम आती हैं।

(१०५) रन्ध्र—छेदों को कहते हैं। आँखोंमें दो, कानोंमें दो, नाक में दो, मुख में एक, लिङ्गमें एक, गुदामें एक, इस तरह मर्द के शरीर में मुख्य नौ छेद होते हैं; पर स्त्रियोंके शरीरमें तीन छेद ज़ियादा होते हैं,—स्तनोंमें दो और गर्भाशयमें एक।

(१०६) स्रोत—मन, प्राण, अन्न, पानी, दोष, धातु, उपधातु, धातुओंका मल, मूत्र, और विष्ठा इत्यादि पदार्थ शरीरमें जिन रास्तोंसे चलते हैं, उन रास्तों को "स्रोत" कहते हैं। ये स्रोत अनगिन्ती हैं।

(१०७) त्वचा—चमड़े को कहते हैं। जिस तरह आग पर औटे हुए दूध में मलाई होती है; उसी तरह पित्त से पके हुए वीर्य्य और रज से त्वचा होती है। ये त्वचायें सात होती हैं।

(१०८) रोग और आरोग्य—दोषों की विषमता को "रोग" और उनकी समता को "आरोग्य" कहते हैं।

(१०९) आगन्तुक रोग—लकड़ी पत्थर आदिके लगने से जो रोग होता है, उसे "आगन्तुक रोग कहते हैं।

(११०) स्वाभाविक रोग—जो रोग अपने स्वभावसे होते हैं, उनको

"स्वाभाविक रोग" कहते हैं। भूख, प्यास, सोने की इच्छा, बुढ़ापा, मृत्यु, जन्मसे अन्धापन प्रभृति स्वाभाविक रोग हैं।

(१११) मानसिक रोग—जो रोग मनसे होते हैं, उन्हें "मानसिक रोग" कहते हैं। काम, क्रोध, मोह, लोभ, भय, अभिमान, दीनता, चुगली, शोक, ईर्षा, द्वेष, मात्सर्यता, उन्माद, मृगी, मूर्च्छा, भ्रम, अन्धकार और संन्यास प्रभृति रोग मानसिक रोग हैं।

(१११क) कायिक रोग—काया यानी शरीर से सम्बन्ध रखनेवाले रोगोंको "कायिक रोग" कहते हैं। जैसे पीलिया, ज्वर आदि।

नोट—चारों प्रकारके रोगोंका भेद अच्छी तरह समझ लो।

(११२) कर्मज व्याधि—पूर्व जन्मके प्रबल दुष्ट कर्मोंके कारण जो व्याधि होती है, वह अच्छी-से-अच्छी चिकित्सा करने पर भी आराम नहीं होती, उसे "कर्मज व्याधि" कहते हैं।

(११३) दोषज व्याधि—मिथ्या आहार-विहारके कारण वात, पित्त और कफके कुपित होने से जो रोग होते हैं, उन्हें "दोषज व्याधि" कहते हैं।

(११३) त्रिविधा रोग—साध्य, याप्य, और असाध्य—इन तीनों प्रकारके रोगोंको "त्रिविधा रोग" कहते हैं।

(११५) उपद्रव—रोगको आरम्भ करनेवाले दोषोंका प्रकोप होनेसे जो और-और विकार होते हैं, उन्हें "उपद्रव" कहते हैं। जैसे ज्वर में खाँसी, ज्वर का उपद्रव है।

(११६) अरिष्ट—जिन लक्षणोंके प्रकट होनेसे रोगी की मृत्यु अवश्य हो, उन लक्षणोंको "अरिष्ट या रिष्ट" कहते हैं।

(११७) प्रतिनिधि—जो औषधि दूसरी औषधिके स्थानमें काम देती है, उसे उसका "प्रतिनिधि" कहते हैं। जैसे रसौत के अभाव में दारुहल्दी ली जाती है; अतः दारुहल्दी रसौतकी प्रतिनिधि हुई।

(११८) षट् रस—मीठा,खट्टा,खारी कड़वा, चरपरा और कसैला—इन छै रसोंको षट् रस कहते हैं। ये छै रस पदार्थोंमें रहते हैं।

(११६) त्रिफला—हरड़, बहेड़ा और आमला—इन तीनों को एकत्र मिलाकर "त्रिफला," "फलत्रिक" अथवा "वरा" कहते हैं।

(१२०) त्रिकुटा—सोंठ, मिर्च और पीपल—इन तीनों को एकत्र मिलाकर "त्रिकुटा" कहते हैं।

(१२१) पञ्चकोल—पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ,—इन पाँचों को एक-एक कोल यानी आठ-आठ माशे ले, तो उसे "पञ्च-कोल" कहते हैं।

(१२२) षड्रूषण—पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ, और गोल मिर्च—इनको "षड्रूषण" कहते हैं।

(१२३) चतुर्बीज—मेथी, हालों, काला ज़ीरा और अजवायन—इन चारों मिले हुए पदार्थों को "चतुर्बीज" या "चारदाना" कहते हैं।

त्रिजातक—दालचीनी, इलायची और तेजपात,—इन तीनों को "त्रिजातक" कहते हैं। अगर इनमें नागकेशर और मिला दे, तो इन्हें "चतुर्जातक" कहते हैं।

(१२५) मांसपेशी—मांस के टुकड़ों को कहते हैं। इनसे शरीर सीधा खड़ा रहता है और उसमें बल रहता है।

(१२६) आयु-मृत्यु—शरीर और प्राणके संयोग को "आयु" कहते हैं। शरीर और प्राण के वियोग होने को पञ्चत्व या "मरण" कहते हैं।

(१२७) उदान वायु—यह वायु गले में रहती है। इसीकी शक्ति से आदमी बोलता और गीत प्रभृति गाता है। इसीके कुपित होनेसे कण्ठादिक के रोग होते हैं।

(१२८) प्राणवायु—यह वायु सदैव मुख में चलती और प्राणोंको धारण करती है। इसीके द्वारा खाया-पिया भीतर जाता है। इसीके कुपित होनेसे हिचकी और श्वास प्रभृति रोग होते हैं।

(१२६) समान वायु—यह वायु आमाशय और पक्काशयमें रहनेवाली जठराग्नि से मिलकर, अन्न को पचाती और मलमूत्र को अलग-अलग करती

है। इसके कुपित होनेसे मन्दाग्नि, अतिसार और वायु-गोला प्रभृति रोग होते हैं।

(१३०) अपानवायु—यह वायु पक्वाशय में रहती है। यही मल मूत्र, शुक्र, गर्भ और आर्त्तवको निकालकर बाहर डालती है। इसके कुपित होने से मूत्राशय और गुदासे सम्बन्ध रखनेवाले रोग होते हैं।

(१३१) व्यानवायु—यह वायु सारे शरीर में घूमती है। यही वायु, रस, पसीना और खून को बहाती है। आँख खोलना, बन्द करना, नीचे डालना और ऊपर को फेंकना प्रभृति क्रियाएँ इसीसे होती हैं। यह कुपित होकर सारे शरीरके रोगोंको प्रकट करती है।

(१३२) पाचक पित्त—यह पित्त भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य—इन चारों प्रकारके अन्नोंको पचाता है। इसीसे इसे "पाचक पित्त" कहते हैं।

(१३३) भ्राजक पित्त—यह पित्त चमड़े में रहता और कान्ति उत्पन्न करता है। इसीसे शरीर में किया हुआ चन्दन वगैरः का लेप, मालिश किया हुआ तेल और स्नान वगैरः पचते हैं।

(१३४) रञ्जक पित्त—यह पित्त रँगनेका काम करता है, इसीसे इसे "रञ्जक" पित्त कहते हैं। यह यकृत और प्लीहामें रहकर खून बनाता है।

(१३५) साधक पित्त—मेधा और धारणा शक्तिको करता है।

(१३६) अलोचक पित्त—यह पित्त दोनों आँखोंमें रहता है; इसीसे जीवको दिखाई देता है।

(१३७) क्लेदन कफ—यह कफ अन्नको गीला करता है। इसी कारण से इकट्ठा हुआ अन्न अलग-अलग हो जाता है। यह आमाशय में रहता है।

(१३८) अवलम्बन कफ—यह कफ हृदय में रहता है। यह अवलम्बन आदि कर्म द्वारा हृदयका पोषण करता है।

(१३९) संश्लेषण कफ—यह कफ सन्धियोंमें रहता और उनको जोड़ता है।

(१४०) रसन कफ—यह कफ कण्ठमें रहता है और रसको ग्रहण

करता है। इसीसे कड़वे, कसैले और चरपरे प्रभृति रसोंका ज्ञान होता है।

(१४१) स्नेहन कफ—यह कफ मस्तक में रहता है और इन्द्रियों को तृप्त करता है; इसीसे इन्द्रियों में अपने-अपने कामकी सामर्थ्य होती है।

(१४२) एकादश इन्द्रिय—कान, आँख, जीभ, नाक और त्वचा—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं और मुँह, हाथ, पैर, उपस्थ और गुदा—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। ग्यारहवाँ "मन" इनका सञ्चालक है। इन ग्यारहों को "एकादश इन्द्रिय" कहते हैं।

(१४३) त्रिविध अहंकार—राजस, तामस और सात्विक,—तीन तरहके अहंकार होते हैं। सांख्य-शास्त्रवाले कहते हैं कि, इन्द्रियाँ तीनों तरह के अहंकारोंसे पैदा हुई हैं; किन्तु वैद्यक-शास्त्रवाले इन्हें भौतिक कहते हैं।

(१४४) पञ्चतन्मात्रा—शब्दतन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा, रूपतन्मात्रा, रस तन्मात्रा और गन्धतन्मात्रा— ये पाँच "तन्मात्रायें" हैं।

(१४५) भूतपञ्चक—आकाश, पवन, अग्नि, जल और पृथ्वी—ये "पञ्च महाभूत" हैं।

(१४६) इन्द्रियोंके विषय—कान, आँख, जीभ नाक और चमड़ा, ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये ज्ञानेन्द्रियों के पाँच विषय हैं : यानी कान का विषय सुनना, चमड़े का छूना, आँखका देखना, जीभ का स्वाद लेना और नाक का सूँघना।

इसी तरह मुँह (बाणी), हाथ, पैर, उपस्थ (लिङ्ग या भग) और गुदा—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। भाषण, आदान, विहार, आनन्द और उत्सर्ग—ये क्रमसे कर्मेन्द्रियों के पाँच विषय हैं ; यानी मुँहका विषय बोलना, हाथका काम लेना-देना, पैर का काम चलना-फिरना, उपस्थ का काम सम्भोग-आनन्द करना या मूत्र त्याग करना और गुदाका काम मल त्याग करना है।

(१४७) षोडश विकार—दश इन्द्रिय, उभयात्मक-मन और पञ्च महाभूत—ये सोलह विकार हैं।

(१४८) चौबीस तत्व—अव्यक्त, महान, अहङ्कार, पाँच तन्मात्रा, ग्यारह इन्द्रिय और पाँच महाभूत—इन्हीं चौबीसों को चौबीस तत्व कहते हैं। इन्हीं चौबीसों तत्वोंसे यह शरीर बना है। इस शरीररूपी घरमें जो जीवात्मा रहता है, वही पचीसवाँ है। मन उसका दूत है। यद्यपि जीवात्मा आकाश की तरह निर्विकार है, तथापि जिस तरह निर्विकार आकाश सन्ध्या-समय सूर्य्य-किरणोंके संयोग से लाल हो जाता है; उसी तरह जीवात्मा विकारवान वस्तुओंके संयोग से विकारवान हो जाता है।

(१४९) जीव-बन्धन—काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, दश इन्द्रिय और बुद्धि,—ये जीवके बन्धन हैं।

(१५०) काम—पुरुषों की स्त्रियों से और स्त्रियों की पुरुषों से उपभोगके लिये जो प्रीति होती है,उसे "काम" कहते हैं।

(१५१) क्रोध—प्राणीके हृदय से एकबारगी ही गरमी प्रकट होकर पराया बुरा चाहती है, उससे चित्त को एक प्रकार का दुःख पहुँचता है, उसी दुःख या क्लेश को "क्रोध" कहते हैं।

(१५२) लोभ—पराया धन, पराया भाग और परायी सामर्थ्य की बात देख-सुनकर प्राणी के हृदय में जो तृष्णा पैदा होती है, उसे ही "लोभ" कहते हैं।

(१५३) मोह—बुरे को भला और भले को बुरा समझना मिथ्या-ज्ञान है। कल्याणकारक और अकल्याणकारक बातों का निश्चय जब बुद्धिको नहीं होता, वह इन दोनोंके बीचमें घूमती है, तब उसे "संशय" या "मोह" कहते हैं।

(१५४) अहंकार—जब प्राणी कार्य्य-कारण से युक्त 'अहं' इस अभिमानके साथ काम में लगता है, तब उसको "अहंकार" कहते हैं। "यह काम मैं करता हूँ, "यह काम मैंने किया"—यह भाव अहंकार प्रकट करता है।

(१५५) मल या विष्ठा—जो कुछ खाते हैं, उसके सार को रस

और निःसार को मल कहते हैं। यही मूत्रवाहिनी नसों द्वारा वस्ति या मूत्राशय अथवा पेड़ूमें जाकर, मूत्र या पेशाव हो जाता है और शेष रहा हुआ कीट पक्काशयके एक कोने में जाकर, विष्ठा या मल हो जाता है। इसे अपान वायु गुदा के बाहर निकाल कर फेंक देती है।

(१५६) गुदा—शरीरका वह सूराख है, जिधरसे अपान वायु मलको निकालती है। इस गुदामें शङ्खकी भाँति तीन वलियाँ या आँटे होते हैं। इन वलियोंके नाम प्रवाहिनी, सर्जनी और ग्राहिका हैं।

(१५७) स्वरस—ताज़ा रसदार द्रव्य लाकर, उसे तत्काल कूटने और कपड़ेमें रखकर निचोड़नेसे जो रस निकलता है, उसे "स्वरस" कहते हैं।

नोट—अगर ताजा रसदार द्रव्य न मिले, तो सूखा हुआ आध सेर द्रव्य चूर्ण करके, एक सेर जलमें एक-दिन रात भिगोकर छान ले। उस रस को भी 'स्वरस' की जगह काम में लेते हैं; अथवा वैद्य सूखे द्रव्यको अठगुने जलमें पकावे, जब चौथाई पानी रह जाय, तब उतार कर 'स्वरस' के स्थानमें ग्रहण करें।

(१५८) कल्क—सूखे या जल-युक्त ताज़ा द्रव्यको शिलपर पीस कर लुगदीसी बना लेते हैं, उसीको "कल्क" कहते हैं। आवाप और प्रक्षेप कल्कके पर्य्याय शब्द हैं।

(१५९) चूर्ण—सूखा हुआ द्रव्य भली-भाँति कूट-पीसकर कपड़ेमें छान लिया जाय, तो उसे "चूर्ण" कहते हैं।

(१६०) श्रृत—कूटे हुए द्रव्यको जल मिलाकर आग पर पकाते हैं, फिर मसलकर कपड़ेमें छान लेते हैं; छाननेसे जो रस निकलता है, उस को "श्रृत" कहते हैं। क्वाथ, कषाय और निर्यूह इसके पर्याय हैं।

(१६१) शीत—आठ तोले द्रव्यको कूटकर, बयालीस तोले जलमें एक रात भिगो रक्खे, उसको "शीत" कहते हैं।

(१६२) तण्डुलोदक—आठ तोले सूखे हुए चाँवल अच्छी तरहसे कूटकर चौगुने जलमें एक दिन या एक रात भिगो रक्खे, फिर छान ले; इस जलको "तण्डुलोदक" कहते हैं। "शार्ङ्गधर" मे लिखा है—चार तोले,

साफ चाँवलोंको अठगुने पानी यानी बत्तीस तोले जल में डाल हाथसे मसले। यह "चाँवलोंका धोवन" सब काममें लावे।

(१६३) फाँट—आठ तोले द्रव्यको अच्छी तरहसे कूटकर, मिट्टी के वर्त्तनमें, चौगुने गरम जल के साथ भिगो रक्खो ; जब खूब गर्म हो जाय, छान लो। उसको "फाँट" एवं "चूर्ण द्रव्य" कहते हैं।

(१६४) उष्णोदक—जलको मिट्टीके बर्त्तनमें औटावे, जब औटते-औटते अष्टमांश (सेराका आधा पाव) चतुर्थांश (सेरका एक पाव) अथवा अर्द्धांश (सेर का आध सेर) रह जाय, तब उतार ले या थोड़ा ही गरम कर ले—ऐसे जलको "उष्णोदक" कहते हैं।

(१६५) अवलेह—क्वाथादि दुवारा आग पर पका कर वना यानी गाढ़ा किया जाय, तो उसे "अवलेह" "लेह" या "प्राश" कहते हैं।

(१६६) मात्रा—एक वारमें रोगीको जितनी दवा दी जाय, उतनी दवाको "दवाकी मात्रा, खूराक या मौताद" कहते हैं।

(१६७) कर्ष— वैद्यक शास्त्रकी पुरानी तोल है। आजकल के दो तोलेके बराबर एक कर्ष होता है। कोई-कोई एक तोलेके बराबर लिखते हैं।

(१६८) पल—यह भी एक तोल है। पल आठ तोलेका होता है

(१६९) प्रस्थ—यह भी तोल है। प्रस्थ २ सेरका होता है।

(१७०) खारी—यह भी तोल है। एक खारी ५१२ सेर यानी १२ मन, ३२ सेरकी होती है।

(१७१) पञ्चलवण—विरिया, सञ्चर, सेंधा, विड़, उद्भिद और समन्दर नोन—इन पाँचके मेलको पञ्चलवण कहते हैं।

(१७२) मूत्रवर्ग—मेडका मूत्र, बकरी का मूत्र, गोमूत्र, भैंसका मूत्र, हाथीका मूत्र, ऊँटका मूत्र, घोड़ेका मूत्र और गधेका मूत्र इन आठ को "मूत्रवर्ग" कहते हैं।

(१७३) चार स्नेह—घी, तेल, वसा और मज्जा—ये चार प्रकार के स्नेह हैं। ये पीने, मालिश करने पिचकारी लगाने और नस्य-कर्मके काममें आते हैं।

(१७४) दुग्धवर्ग—भेड़का दूध, बकरीका दूध, गायका दूध, भैंस का दूध, ऊँटनीका दूध, हथिनीका दूध और गधीका दूध;—इन दूधोंको "दुग्धवर्ग" कहते हैं।

(१७५) सर्वगन्ध—दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेसर, कपूर, काकोली, अगर, लोबान और लौङ्ग,—इन सबको मिलाकर "सर्वगन्ध" कहते हैं।

(१७६) महती त्रिफला—हरड़, बहेड़ा और आमला—इनको "महती-त्रिफला कहते हैं।

स्वल्प त्रिफला—गम्भारी-फल, फालसा और खजूर—इनको "स्वल्प त्रिफला कहते हैं।

(१७८) त्र्यूषण—पीपल, सोंठ और मिर्चको "त्र्यूषण" कहते हैं।

(१७९) त्रिमद—वायविडङ्ग, मोथा और चीता—इनको "त्रिमद" कहते हैं।

(१८०) क्षीर-वृक्ष—गूलर, वड़, पीपल, बेंत और पिलखन—इन पाँच को "क्षीरवृक्ष" कहते हैं

(१८१) पञ्चपल्लव—आम, जामुन, कैथ, बिजौरा नीबू और बेल—इन पाँचोंको "पञ्चपल्लव" कहते हैं।

(१८२) महत् पञ्चमूल—बेल, श्योनाक, गम्भारी, पाढ़ल और अरणी इन पाँचोंको महत् "पञ्चमूल" कहते हैं।

(१८३) लघु पञ्चमूल—शालपर्णी (सरिवन) पिठवन, वृहती, कटेरी और गोखरू—इन पाँचोंको "लघु पञ्चमूल" कहते हैं।

(१८४) दशमूल—लघु पञ्चमूल और वृहत पञ्चमूल—इन दोनोंकी दसों चीज़ोंको मिलाकर "दशमूल" कहते हैं।

(१८५) पञ्चतृण—कुश, काँस, शर, दर्भ और गन्ना—इन पाँचोंको "पञ्चतृण" या "पञ्चमूल" कहते हैं।

(१८६) वल्लीज पञ्चमूल—विदारीकन्द, मेढ़ासिङ्गी, हल्दी अनन्तमूल और गिलोय—इन पाँचों को "वल्लीज पञ्चमूल" कहते हैं।

(१८७) कण्टकाख्यमूल—करञ्ज, गोखरू, तालमखाना, पियावाँसा और शतावरी,—इन पाँचोंको "कण्टकाख्यमूल" कहते हैं।

(१८८) अष्टवर्ग—ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, ऋषभक, जीवक, काकोली और क्षीर काकोली,—इन आठोंको "अष्टवर्ग" कहते हैं।

(१८९) जीवनीयगण—अष्टवर्गकी आठों चीज़ें तथा मसवन, मुगवन, जीवन्ती और मुलहटी—इन सबको मिलाकर "जीवनीयगण" कहते हैं।

(१६०) श्वेत मरिच—सहँजनेके बीजको "श्वेत मरिच" कहते हैं।

(१६१) ज्येष्ठाम्बु—चाँवलोंके पानीको "ज्येष्ठाम्बु" कहते हैं।

(१६२) सुखोदक—गरम जलको "सुखोदक" कहते हैं।

(१६३) वेशवार—बिना हड्डीका मांस, गुड़, घी, पीपल और मिर्च मिलाकर पकाया जाय, उसे वेशवार कहते हैं।

(१६४) अम्लमूलक—मूली काँजीमें भिगो रखकर, बासी करके पका ली जाय, तो उसको "अम्लमूलक" कहते हैं।

(१६५) कट्वर—मक्खन सहित दहीके माठेको "कट्वर" कहते हैं।

(१६६) तक्र—दहीमें दहीसे चौथाई जल मिलाकर मथें, तो वह "तक्र" कहावेगा। आधा पानी मिलाकर मथनेपर "उदश्वित" तैयार होगा। अगर दहीमें बिल्कुल पानी न मिलावें और मथें तो "मथित" तैयार होगा।

(१६७) आसव—गन्नेका रस पकाकर जो मद्य तैयार किया जाता है, उसे "सीधु" कहते हैं और गन्नेके कच्चे रससे जो मद्य तैयार किया जाता है, उसे "आसव" कहते हैं।

(१६८) कृशरा या त्रिसरा—तिल, चाँवल और उर्दसे तैयार किये हुए यवागूको "कृशरा या त्रिशरा कहते हैं।

(१६६) अरिष्ट—पके हुए क्काथ और मधुर रस-युक्त पतले पदार्थसे बने हुए मद्यको अरिष्ट कहते हैं।

(२००) तुषोदक—चरकने कहा है, उर्दकी भूसी भुनाकर पकावे, फिर उसमें जौका आटा मिलाकर, काँजी तैयार करनेकी विधिके अनुसार, जल डालकर भिगो रक्खे, जब खट्टा हो जाय, तब "तुषोदक"को तैयार समझे।

(२०१) पञ्चक्रिया—वमन, विरेचन, नस्य, निरूह और अनुवासन—इन पाँच क्रियाओं को "पञ्चक्रिया" कहते हैं। इन क्रियाओंसे शरीरके वातादि दोष शुद्ध होते हैं।

(२०२) नस्य—नाकसे जो औषधि धीरे-धीरे चढ़ाई जाती है, उसे "नस्य" कहते हैं। रूखे मस्तकको चिकना करनेके लिये और गर्दन, कन्धे और छातीका बल बढ़ानेके लिए जो तैलादिका प्रयोग किया जाता है, उसको भी "नस्य" कहते हैं।

(२०३) प्रधमन—छः उङ्गल लम्बे, दो मुँहवाले ख़ाली नलमें तेज़ दवाका एक तोले चूर्ण भरकर, फूँक द्वारा नाकमें घुसाया जाय, उसे "प्रधमन" कहते हैं।

(२०४) अवपीड़—तेज़ दवाको कूटकर रस निकाला जाय और वह नस्यके काममें लाई जाय, तो उसे "अवपीड़" कहते हैं। गलेके रोग, सन्निपात, विषम ज्वर, उन्माद प्रभृति रोगोंमें "अवपीड़ नस्य" दी जाती है; किन्तु प्रबल दोष और अचेतन अवस्थामें "प्रधमन नस्य" देनी चाहिये। इससे शीघ्र लाभ होता है।

(२०५) यवागू—चाँवल अथवा मूँग अथवा उड़द अथवा तिल इनमेंसे जिस द्रव्यकी यवागू बनानी हो, उसको लेकर, उसमें उससे छः गुना पानी डालकर पकावे, जब तक गाढ़ी न हो जाय, पकाता रहे; इसी को "अन्नयवागू" और इसीको "कृशरा" कहते हैं। यह मलादिकों को स्तम्भन करती, शरीरमें बल-पुष्टि करती और वायुका नाश करती है।

(२०६) विलेपी—चाँवल या मूँगमेंसे कोई चीज़ लेकर, द्रव्यसे चौगुना पानी डालकर पकावे, जब लहापसीके समान गाढ़ी और लिपटनेवाली हो जाय, उतार ले। इसीको "विलेपी" कहते हैं। यह पुष्टिकारक, हृदयको हित, मधुर और पित्तनाशक है।

(२०७) पेया—जिसकी पेया बनानी हो, उस द्रव्यसे चौदह गुणा पानी उसमें डालकर पकावे, जब तक कुछ लहसदार न हो जाय पकावे ; किन्तु बहुत गाढ़ी न हो जाय; पेया पीने लायक़ पतली रहती है। पेयासे

कुछ गाढ़ा "यूष" होता है। पेया बलदायक, कण्ठको हितकारी, हल्की और कफ नाशक है।

(२०८) शुद्ध मण्ड—शुद्ध चाँवलोंको चौदह गुने जलमें डालकर पकाओ, जब चाँवल पक जायँ, माँड निकाल लो। इसी माँडको "शुद्ध-मंड" कहते हैं। इसमें सोंठ और सेंधा नोन मिलाकर पीवे, तो अन्नका पाचन हो और अग्नि-दीपन हो।

(२०६) अष्टगुण मंड—धनिया, सोंठ, मिर्च, पीपल, सेंधानोन, मूँग, चाँवल, हींग और तेल,—इन नौ चीज़ोंसे यह मंड तैयार होता है।

पहले तेलमें हींग मिलाओ। पीछे आठ तोले मूँग और सोलह तोले चाँवलोंको तेल-मिली हींगके साथ भूनो। पीछे धनिया, सोंठ, मिर्च, पीपल और नमकको इन भूने हुए मूँग चाँवलोंमें, इस अन्दाज़से मिलाओ, कि ज़ायक़ा ख़राब न हो। पीछे इनमें चौदह गुना पानी डालकर औटाओ। जब सीज जायँ, उतारकर छान लो। इस माँडको ही "अष्टगुण मंड" कहते हैं।

इस मंडमें आठ गुण हैं। इसके पीने से अग्नि दीप्त होती है, मूत्र-वस्तिका शोधन होता है, बल बढ़ता है, ख़ूनकी वृद्धि होती है तथा ज्वर, कफ, पित्त और वायुका नाश होता है।

(२१०) लाजामंड—धान की भुनी खील अथवा चाँवलों को भूनकर, उसमें चौदह गुना पानी डालकर औटावे; पीछे पसाकर मांड, निकाल ले। इसी माँडको "लाजा मंड" कहते हैं। इससे कफ-पित्तका प्रकोप दूर होता है; संग्रहणी और अतिसार के दस्तोंमें रुकावट होती है; अधिक प्यास वाला ज्वर शान्त होता है।

(२११) वाट्य मंड—अच्छे जौ लेकर कूटो और भूनो, पीछे चौदह गुना जल डाल कर पकाओ। पकने पर मांड निकाल लो। यही "वाट्यमंड" है। इससे कफ-पित्तका प्रकोप दूर होता है। यह कण्ठको हितकारी और रक्तपित्तकी शान्ति करनेवाला है।

(२१२) आम्रादि यवागू—आम, आमला और जामुन—इन तीनों वृक्षों

की सोलह तोले छालको मिलाकर, जौ-कुट करके, चौंसठ गुने पानीमें यानी प्रायः पौने तेरह सेर जलमें औटावे । जब आधा पानी रह जाय, तब उतार कर छान ले। उस दवाके पानीमें सोलह तोले चाँवल डालकर पकावे। जब पकते-पकते गाढ़ा हो जाय, उतार ले। इसे "आम्रादि यवागू" कहते हैं। इस यवागू के खाने से संग्रहणी दूर होती है।

(२१३) पानक—चार तोले दवा को जौकुट कर, चौसठ गुने पानी में डालकर औटाओ ; आधा रहने पर उतार कर छान लो ; प्यास लगने पर पिलाओ। जैसे ; उशीरादि पानक—

उशीरादि पानक—खस, पित्तपापड़ा, नेत्रवाला, नागरमोथा, सोंठ और रक्तचन्दन,—इन छै दवाओं को मिलाकर चार तोले लो। पीछे जौकुट करके, २५६ तोले जलमें औटाओ ; जब आधा पानी रहजाय, उतार लो। शीतल होने पर, जिस ज्वर में अत्यन्त प्यास लगती हो, थोड़ा-थोड़ा दो। इसके पीने से प्यास और ज्वर दूर होंगे। इसी तरह और पानक भी तैयार हो सकते हैं।

(२१४) पञ्चमूली क्षीरपाक—औषधि से अठगुना दूध और दूध से चौगुना पानी मिलाकर औटानेसे "क्षीर" या दूध तैयार होते हैं। सरिवन, पिथवन, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी और गोखरू—लघुपञ्चमूल की इन पाँचों द्रव्योंको जौकुट करके, अठगुने दूधमें और दूधसे चौगुने पानीमें डाल कर औटाओ। जब औटते-औटते पानी जल जाय और केवल दूध रह जाय, उतार कर छान लो। यही "पंचमूली क्षीरपाक" है। इसके पीनेसे श्वास, खाँसी, मस्तकशूल, पसली का दर्द, पीनस (जुकाम) और जीर्णज्वर आराम होते हैं। यह दूध सब तरहके जीर्णज्वरोंकी परमोत्तम परीक्षित औषधि है।

(२१५) क्राथ—चार तोले औषधि को, चौंसठ तोले जलमें डालकर, मिट्टीके बासन में हलकी-हलकी आगसे पकाओ। जब आठवाँ भाग यानी ८ तोले पानी शेष रहे, तब उतार कर छानलो। इसीको क्राथ (काढ़ा), शृत, कषाय और निर्यूह कहते हैं। हाँ, काढ़ेके बर्तन पर, औटाते समय, ढक्कन भूलकर भी न रखो; अन्यथा काढ़ा भारी हो जायगा।

(२१६) पुटपाक—गोली वनस्पति को कूट-पीस कर गोला बनाओ। पीछे उस गोले को कम्भारी, बड़ या जामुन के पत्तों से लपेट दो। ऊपर से सूत बाँध दो। पीछे उस पर दो अङ्गुल मिट्टी चढ़ा दो। इसके बाद कण्डे लगा कर, उसके बीचमें गोलेको रखकर, आग लगा दो। जब गोलेकी मिट्टी लाल हो जाय, गोलेको निकाल लो। पीछे गोलेके ऊपरसे मिट्टी और पत्ते हटा कर, उसे कपड़े में रख कर निचोड़ लो। यह रस "पुटपाक-विधिसे" तैयार हुआ। पुटपाक द्वारा तैयार हुआ रस"शहद" आदि डालकर पीया जाता है।

(२१७) मंथ—आठ तोले दवाको अच्छी तरह कूटो, पीछे बत्तीस तोले शीतल जलको मिट्टीके बर्तन में भरो; फिर उसमें आठों तोले दवा डाल दो। पीछे उस दवा को रईसे मथो, जब एकदम झाग आने लगें, उसको छान लो। यही "मंथ" है। इसके पीनेकी मात्रा फाँट की तरह दो पल या १६ तोलेकी है।

(२१८) हिम—आठ तोले दवा को जौकुट कर लो। अड़तालीस तोले जल किसी हाँडी में भरकर, उसी में जौकुट की हुई दवाको डाल दो और रातभर भीगने दो। सवेरे उस जलको छान कर पी जाओ। इसको "हिम" अथवा "शीत काढ़ा" कहते हैं। इसकी मात्रा भी फाँटके समान सोलह तोलेकी है।

(२१९) गुटिका—गोली कहते हैं। गुटिका, वटी, मोदक, वटिका, पिण्डी, गुड और वत्ती,—ये सब गोलीके नाम हैं। यदि गोली बनानी हों; तो गुड़, खाँड़ या गूगल को पका कर, उसमें चूर्ण मिलाकर गोली बना लो। अगर बिना पाक किये गोली बनानी हों तो गूगल को शोध कर पीस लो, फिर उसमें चूर्ण मिला कर घी से गोली बना लो। यदि खाँड़ या मिश्री आदि डालकर गोली बनानी हों, तो चूर्णसे चौगुनी लेकर दोनोंको मिलाकर गोली बना लो। यदि कभी गूगल और शहद दोनों मिलाकर गोली बनानी हों, तो दोनों को चूर्णके बराबर लेकर गोली बना लो।

(२२०) शीतरस सीधु—कच्चे ईखके रस आदि मधुर पदार्थों से सिद्ध किये मद्यको "शीतरस सीधु" कहते हैं।

(२२१) पक्व रससीधु—ईख आदि मधुर द्रव पदार्थोंको पकाकर जो मद्य बनाते हैं, उसे "पक्व रस सीधु" कहते हैं।

(२२२) सुरा—चाँवल आदि धान्यको उबाल कर, अग्निके संयोग से, यन्त्र-द्वारा जो मद्य बनाते हैं, उसको शास्त्रमें "सुरा" कहते हैं।

(२२३) कादम्बरी—उपरोक्त नं० २२२ की सुराके घन भागको "कादम्बरी" कहते हैं।

(२२४) जगल—उपरोक्त सुराके नीचे के भागमें जो पतलासा पदार्थ होता है, उसको "जगल कहते हैं।

(२२५) मेदक—जगल के गाढ़े भागको "मेदक" कहते हैं।

(२२५) पुक्कस—मेदक के सार-भागको "पुक्कस" कहते हैं।

(२२७) किण्वक—सुराबीजको "किण्वक" कहते हैं।

(२२८) वारुणी—ताड़ या खजूरके रससे, अग्निके संयोग से, यन्त्र-द्वारा जो रस खींचते है, उसको "मद्य," "वारुणी," "ताड़ी" या "खजूरी" कहते हैं।

(२२६) चुक्र—बिना खट्टे हुए मधुर द्रव पदार्थोंको पात्र में भर कर, पात्रका मुँह बन्द करके, उस पर मुद्रा देकर, एक मास या पन्द्रह दिन रखनेसे जो मद्य तैयार हो, उसे "चुक्र" कहते हैं।

(२३०) गुड़सूक्त—गुड़, जल, तेल, कन्दमूल और फल—इन सबको किसी बर्तनमें भरकर,मुँह बन्द कर दो और पीछे मुद्रा दे दो। एक मास या दो पक्ष तक रक्खा रहने दो। जब खट्टा हो जाय, तब काममें लाओ। इसे "गुड़सूक्त" कहते हैं। इसी तरह ईख और घासका सूक्त बनाते हैं।

(२३१) तुषाम्बु—कच्चे जौ भूनकर किसी बासनमें रक्खो, ऊपर से पानी भरकर मुँह बन्द करदो और मुद्रा देदो। कुछ दिन बाद काममें लाओ। यही "तुषाम्बु" है।

(२३२) सौवीर—जौओं के छिलके दूर करके, उनको आग पर

[illegible] फिर उन्हें एक बासनमें भरकर ऊपरसे पानी भर दो। फिर मुँह बन्द करके मुद्रा दे दो और कुछ दिन रक्खा रहने दो। यही "सौवीर" है।

(२३३) काँजी—कुलथी अथवा चाँवलोंका पानी डाल कर पकाओ। पीछे माँड निकाल लो। उस माँडमें सोंठ, राई, ज़ीरा, हींग, सेंधा नोन, हल्दी प्रभृति डालकर वासन का मुँह बन्द करके मुद्रा दे दो। तीन या चार दिन रक्खा रहने दो। इसीको "काँजी" कहते हैं।

काँजी की और विधि—पहले मिट्टीके बर्तनको सरसोंके तेलसे पोत दो। पीछे उसमें निर्मल जल भरदो। पीछे राई, ज़ीरा, सेंधानमक, हींग, सोंठ और हल्दी,—इन छहों को पीस कर डाल दो। पीछे चाँवलों का भात मिला हुआ माँड, कुलथीका काढ़ा और थोड़ेसे बाँसके पत्ते—ये सब भी उसी बर्तनमें डाल दो। पीछे पानी के अन्दाज़से उड़दके दस पाँच बड़े भी उस में डाल दो। पीछे बर्तन का मुख बन्द करके, तीन चार दिन रक्खा रहने दो। जब खट्टी-खट्टी बास आने लगे; समझ लो "काँजी" तैयार है।

(२३४) सण्डाकी—एक बर्तनमें मूलीको कतर-कतर कर डाल दो और ऊपरसे पानी डाल दो। पीछे हल्दी, हींग, राई, सेंधानोन, ज़ीरा और सोंठ प्रभृति डालकर बर्तनका मुँह बन्द करके मुद्रा दे दो। तीन-चार दिन रक्खा रहने दो। इसीको "सण्डाकी" कहते हैं।

(२३५) सप्त धातु—रस, रक्त, मांस आदि को देहका धारक होने से जिस तरह धातु कहते हैं, उसी तरह सोना, चाँदी, ताम्बा, जस्ता, शीशा, राँगा और फौलाद—इन सातोंको भी "धातु" कहते हैं; क्योंकि ये भी बुढ़ापे और कमज़ोरी आदिका नाश करके देहको धारण करते हैं।

(२३६) धातु-शोधन—ये सातों धातुएँ पहाड़ोंसे पैदा होती हैं, इस लिये इनमें मैल रहता है। इनके बारीक पत्र करके आगमें बारम्बार तपा-तपा कर तेल, माँठा, काँजी, गोमूत्र और कुलथी का काढ़ा—इनमें से प्रत्येकमें तीन-तीन बार बुझाते हैं। इस तरह सुवर्ण आदि धातुओं का मैल दूर होकर शुद्धि होती है। इसीको "धातु-शोधन" कहते हैं।

शीशा और राँगा नरम धातु हैं। इसलिये जब यह तपनेसे गल जावें,

तब इनको तीन-तीन बार तेल,माँठा, काँजी, कुलथी-क्काथ, गोमूत्र, हल्दी-क्काथ और आकके दूधमें बुझानेसे शोधन होता है।

(२३७) मारण—पहले धातुका शोधन होता है। वह हम नं० २३६ में लिख चुके हैं। अब मारण बताते हैं। चूल्हेमें आग जलाओ। चूल्हे पर मिट्टी का खपरा रक्खो। खपरे पर शुद्ध धातु को डालकर तपाओ। जब गलकर पानी हो जाय,तब धातुसे चौथाई इमलीकी छाल और पीपल की छालके चूर्ण को पास रखकर, गली हुई धातु पर ज़रा-ज़रा डालो और लोहेको कलछो से चलाते जाओ। इस तरह एक पहर तक करते रहने से शीशे की और दोपहर तक करते रहनेसे राँगेकी भस्म हो जाती हैं। यही धातु का"मारण" कहलाता है।

(२३८) भस्म—मारण की हुई धातुकी भस्म को अन्यान्य चीज़ों के साथ खरल करके, दो सराइयों के बीचमें रखकर, सराइयों का मुँह कपड़-मिट्टीसे बन्द करके, खड्डेमें आरने कण्डे भरकर, उन कण्डोंके बीचमें सराइयोंको रखकर आग लगा देते हैं। ठण्डा होने पर फिर निकाल लेते हैं। इसी तरह कई बार करने से असल "भस्म" तैयार हो जाती है।

(२३९)—निरुत्थ भस्म—जो भस्म घी, शहत, सुहागा, चिरमिटी, और गुग्गुल,—इन पाँचोंके योगसे भी नहीं जीवे, उसे "निरुत्थ भस्म" कहते हैं। निरुत्थ भस्म मनुष्यका बुढ़ापा नाश करती, बल बढ़ाती और प्रमेह आदि अनेक रोगोंका नाश करती है; किन्तु कच्ची भस्म कोढ़, बवासीर प्रभृति अनेक रोग पैदा करती है।

(२४०) मित्रपञ्चक—घी, शहद, सुहागा, चिरमिटी और गूगल,—इनको "मित्रपञ्चक" कहते हैं। ये बराबर-बराबर लिये जाते हैं।

(२४१) उपधातु—सोनामक्खी, नीलाथोथा, अभ्रक, सुरमा, मैनसिल, हरताल और खपरिया—ये सात उपधातु हैं। इनका भी शोधन होता है; यानी इनका भी मैल अलग किया जाता है।

(२४२) गंडूष और कवल—काढ़े वगैरः जो पतले पदार्थ हैं,

उनसे मुँह को भरकर, उनको मुँहमें रहने दे; पीछे थोड़ी देरमें बाहर निकाल दे, बस यही "गंडूष" या "कुल्ला" है। कल्कादिक पदार्थ यानी दवाओंकी लुगदी को मुँहमें रखकर, इधर-उधर फिरावे और मुखमें रक्खे रहे—इसी को "कवल" कहते हैं।

(२४३) प्रतिसारण—किसी सूखी, गीली या पतली दवा को उँगली के पोरुए में लगा कर, जीभ और सारे मुँहमें लगाने को "प्रतिसारण" कहते हैं। जैसे;—

कूट, दारुहल्दी, लजालू, पाढ़, कुटकी, मजीठ, हल्दी, नागरमोथा और लोध—इन नौ दवाओं का चूर्ण करके, उँगलीके पोरुए से जीभ और सारे मुँहमें लगाने से दाँतोंसे खून गिरना, दाँतों का दर्द; दाह (जलन) और सूजन अवश्य आराम हो जाती हैं। यही प्रतिसारण का उदाहरण है।

(२४४) आलेप—लिप्त, लेप, लेपन और आलेप,—चारों नाम लेपके हैं। मुखके लेप तीन तरहके होते हैं,—(१) दोषघ्न, (२) विषघ्न और (३) वर्ण्य; अर्थात् सूजन खुजली वगैरः के नाश करनेवाले को "दोषघ्न" मिलावे, वच्छनाग या किसी कीड़ेके ज़हर के नाश करनेवालेको "विषघ्न" और मुँहकी सुन्दरता बढ़ाने वाले तथा मुहाँसेः झाईं, नील प्रभृति नाश करनेवालेको "वर्ण्य" कहते हैं।

जैसे ;—

पुनर्नवा (साँठ), देवदारू, सोंठ, सफेद सरसों और सहँजने की छाल—इन पाँचों को बराबर-बराबर लेकर, काँजीमें सिलपर पीसकर, लेप करनेसे नौ प्रकारकी सूजन नाश हो जाती है। यह नुसख़ा उत्तम है। अनेक बार इसे रामबाणका काम करते देखा है। (काँजी बनानेकी विधि नं० २३३ परिभाषाके शेषवाली उत्तम है।) यह लेप "दोषघ्न" है; यानी वात पित्त और कफ से हुई नौ तरह की सूजन को आराम करता है।

लालचन्दन, मजीठ, लोध; कूट, फूलप्रियंगु, बड़के अंकुर और मसूर,—

ये सात चीज़ें पसारी के यहाँ से बराबर-बराबर लाकर पानीमें पीस लो और मुखपर मला करो, तो आपका मुँह खूबसूरत हो जायगा, मुखपर कान्ति विराजने लगेगी, साथ ही यदि कोई वादी का रोग होगा तो वह भी दूर हो जायगा। यह नुसख़ा ठीक है। निष्फल न जायगा। आज़माकर देखिये ; मगर बहुत दिन तक लेप कीजिये। यह लेप "वर्ण्य" है।

बकरीके दूधमें तिलों को पीस कर, उसमें मक्खन मिलाकर लेप करो, तो भिलावे की सूजन आराम हो जायगी।

(२४५) शलाका—सलाई को कहते हैं। इससे आँखोंमें सुरमा लगाया जाता है। शोधे हुए शीशेकी सलाई, बिना सुरमेके, फेरने से भी अनेक नेत्र-रोग नाश हो जाते हैं। हम अपनी परीक्षित सलाई बनाने की विधि बताते हैं:—

त्रिफले का काढ़ा, भाँगरे का रस, सोंठका काढ़ा, घी, गोमूत्र, शहद और बकरीका दूध,—इन सातों को पहले तैयार करके रखलो, पीछे एक लोहेके कलछे या मिट्टीके बर्तन में शीशे को गर्म करो, जब पानी सा हो जाय, त्रिफलेके काढ़ेमें डाल दो, फिर निकाल कर फिर पिघलाओ, पानी सा हो जानेपर फिर त्रिफलेके काढ़े में डाल दो, इस-तरह सात बार त्रिफलेके काढ़ेमें डालो। पीछे इसी तरह सात बार भाँगरे के रसमें, फिर सात बार सोंठके काढ़ेमें, फिर सात बार घी में, फिर सात बार गोमूत्र में, फिर सात बार शहद में, फिर सात बार बकरी के दूधमें डालो—इस तरह त्रिफलेके काढ़े वगैरः सातों चीज़ों में शीशे को सात-सात बार (कुल ४६ बार) बुझानेसे शीशा शुद्ध हो जायगा। उस शुद्ध शीशे की सलाई बनाकर आँखोंमें फेरा करो; तो नेत्रोंके सारे रोग धीरे-धीरे आराम हो जायँ। अगर ऐसी सलाई बनाकर बेची जायँ, तो लोगों को लाभ हो, बेचनावाला भी खूब कमावे। बाज़ारू सलाइयाँ अशुद्ध शीशे की होती हैं, जो लाभ के बदले हानि करती हैं।

नोट—इस सलाईके आँखोंमें फेरने से जब दोष दूर हो जायँ,

आँखोंसे पानी निकल जाय, तब रोगी क्षण-भर शीतल जल को देखे, पीछे आँखोंको जलसे धोले। जब तक दोष निकल न जावें, आँखों को जल से न धोवे।

(२४६) दीपन—जो पदार्थ कच्चे को न पकावे, किन्तु अग्निको प्रदीप्त करे; उसे "दीपन" कहते हैं। जैसे, सौंफ।

पाचन—जो पदार्थ कच्चे को पकाता है; किन्तु अग्निको दीपन नहीं करता है, उसे "पाचन" कहते हैं। जैसे नागकेशर।

(२४८) दीपनपाचन—जो पदार्थ अग्निको दीपन करता है और कच्चे को पकाता भी है, उसे "दीपन-पाचन" कहते हैं। जैसे चीता।

(२४६) शमन—जो पदार्थ तीनों दोषोंको शुद्ध नहीं करता, समान दोषोंको बढ़ाता नहीं, किन्तु विषम दोषोंको सम करता है, वह पदार्थ "शमन" कहाता है। जैसे; गिलोय।

(२५०) अनुलोमन—जो पदार्थ कच्चे वात, पित्त और कफको पकाकर, वायुके बंधको भेदन करके और नीचे ले जाकर, गुदा द्वारा निकाल देता है, उसे "अनुलोमन" कहते हैं। जैसे; हरड।

(२५१) स्रंसन—जो पदार्थ कोठेमें चिपटे हुए पकाने योग्य मल, कफ और पित्तको बिना पकायेही नीचे ले जाय, उसे "स्रंसन" कहते हैं। जैसे; अमलताश।

(२५२) भेदन—जो पदार्थ वातादि दोषोंसे बँधे हुए अथवा न बँधे हुए गाँठेके समान मलमूत्रादिको तोड़-फोड़ कर नीचे लेजाकर गुदा द्वारा निकाल दे, उसे "भेदन" कहते हैं। जैसे; कुटकी।

(२५३) रेचन—जो पदार्थ अधपके अथवा कच्चे मलको पतला करके नीचेको गिरा दे; यानी दस्त करा दे, उसे "रेचन" कहते हैं। जैसे; निशोथ।

(२५४) वमन—जो पदार्थ कच्चे पित्त, कफ तथा अन्न-समूह को ज़बर्दस्ती मुँहसे निकाले, वह पदार्थ "वमन" कहाता है। जैसे मैन-फल।

(२५५) संशोधन—जो औषधि स्वस्थानमें सञ्चित मलोंको ऊपरकी

ओर ले जाकर मुँह और नाक द्वारा बाहर निकाले अथवा सञ्चित मलको नीचेकी ओर लेजाकर गुदा या लिङ्ग या भग द्वारा बाहर निकाले, उसे "संशोधन" कहते हैं। जैसे; देवदालीका फल।

(२५६) छेदन—जो पदार्थ आपसमें मिले हुए कफादि दोषोंको, अपनी शक्तिसे फोड़कर अलग-अलग कर देवे, उसको "छेदन" कहते हैं। जैसे: जवाखार, कालीमिर्च और शिलाजीत।

(२५७) ग्राही—जो पदार्थ अग्निको दीपन करता है, कच्चेको पकाता है, गरम होनेकी वजहसे गीलेपनको सुखाता है, वह "ग्राही कहलाता है। जैसे; सोंठ, ज़ीरा, और गजपीपल।

(२५८) स्तम्भन—जो पदार्थ रूखा, शीतल, कसैला और लघुपाकी होनेके कारण, वायुको उल्टा करनेवाला होता है; यानी नीचे जानेवाले पदार्थको नीचे जानेसे रोकता है, उसे "स्तम्भन" कहते हैं। जैसे; कुड़ा, सोनापाठा।

(२५९) लेखन—जो पदार्थ देहकी धातुओंको अथवा मलको सुखाकर दुर्बलता करता है; यानी मोटेको पतला करता है, उसे "लेखन" कहते हैं। जैसे; मधु, उष्णजल, वच और इन्द्रजौ।

(२६०) वाजीकरण—जिस पदार्थके प्रयोगसे स्त्रीके साथ रमण करनेका उत्साह हो, मैथुन-शक्ति बढ़े, वह द्रव्य "वाजीकरण" कहलाता हैं। जैसे; असगन्ध, मूसली, चीनी, शतावर, दूध, मिश्री इत्यादि।

वाजीकरण दो तरहका होता है। (१) वीर्य्यको रोकनेवाला; (२) वीर्य्यको बढ़ानेवाला। दूध, मिश्री, शतावर आदि वीर्य्यको बढ़ानेवाले पदार्थ हैं; अफ़ीम, भाँग, जायफल आदि वीर्य्यको स्खलित होनेसे रोकने वाले हैं।

(२६२) शुक्रल—जिस द्रव्यसे वीर्य्यकी वृद्धि हो, उसे "शुक्रल" कहते हैं। जैसे, नागवाला, कौंचके बीज इत्यादि।

दूध, उड़द, भिलावेकी मींगी और आमले—ये अपने प्रभावसे, शीघ्रही रसरक्त आदिको पैदा करके वीर्य्यको प्रकट करते और वीर्य्यकी अधिकता होनेपर उसकी प्रवृत्ति करते हैं।

स्त्री वीर्य्यको निकालनेवाली, कटेरीका फल वीर्य्यको रेचन करने वाला, जायफल गिरते वीर्य्यको रोकनेवाला और इन्द्रजौ वीर्य्यक्षय करने वाला है।

स्त्री—स्मरण, कीर्त्तन, दर्शन, सम्भाषण, स्पर्श, चुम्बन, आलिङ्गन और मैथुन इन सारी क्रियाओंसे अथवा थोड़ी क्रियाओंसे अथवा एकही क्रियासे वीर्य्य को निकालने वाली है।

(२६२) रसायन—जो पदार्थ बुढ़ापे और ज्वर आदि रोगोंका नाश करे, उसे "रसायन" कहते हैं। जैसे हरड़, दन्ती, गूगल और शिलाजीत।

(२६३) व्यवायि—जो पदार्थ अपक्व यानी कच्चाही सारी देह में व्याप्त होकर, पीछे मद्यकी तरह पाक अवस्था को प्राप्त हो, उसे "व्यवायी कहते हैं। और चीजें पककर अपना गुण करती है, किन्तु व्यवायि पदार्थ कच्चेही अपने गुणोंसे सारे शरीरमें व्याप्त होकर पीछे पकते हैं। जैसे, भाँग और अफीम।

(२६४) विकाशी—जो पदार्थ सारे शरीरमें रहनेवाले वीर्य्यमेंसे 'ओज' को सुखाकर, शरीरकी सन्धियोंको ढीला करते हैं, उन्हे विकाशी कहते हैं। जैसे; सुपारी और कोदों।

(२६५) मादक—जो पदार्थ अधिक तमोगुण वाला और बुद्धिके नाश करनेवाला हो, उसे 'मादक' कहते हैं। जैसे मदिरा।

(२६६) विष—जो पदार्थ सारे शरीरमें व्याप्त होकर, पीछे पकता है, वीर्य्यमेंसे 'ओज' को सुखाकर शरीरके जोड़ोंको ढीला करता है, जो कफको नाश करता है और नशा लाता है तथा जिसमें अग्निका अंश अधिक होता है, जो प्राणीके प्राणोंको नाश करता है और जिस पदार्थके साथ मिलता है, उसीके गुण ग्रहण कर लेता है, उसे 'विष' कहते हैं, जैसे; वत्सनाभ।

(२६७) प्रमाथी—जो पदार्थ अपने बलसे स्रोतोंमेंसे दोषोंको निकाल देता है, उसे "प्रमाथी" कहते हैं। जैसे मिर्च और बच।

(२६८) अभिष्यन्दी—जो पदार्थ रेशेवाला, कफकारी और भारी

होनेके कारण रस बहानेवाली शिराओंको रोककर शरीरमें भारीपन करता है, उसे 'अभिष्यन्दी' कहते हैं। जैसे दही।

(२६६) विदाही—जिस पदार्थके खानेसे खट्टी-खट्टीडकारें आवें, प्यास लगे, हृदयमें जलन हो, उसे "विदाही" कहते हैं। ऐसी चीज़ देरमें पचती है।

(२७०) योगवाही—जो पदार्थ अपने साथ मिली हुई द्रव्योंके गुण ग्रहण करे, उसे 'योगवाही' कहते हैं। जैसे; शहद, घी, तेल, पारा और लोहा आदि।

(२७१) हलका—जो पदार्थ अत्यन्त पथ्य, कफनाशक और शीघ्र पचनेवाला हो, उसे 'हलका' या 'लघु' कहते हैं।

(२७२) भारी—जो पदार्थ भारी हो, वातनाशक हो, पुष्टिकारक हो, कफकारी और देरसे पचनेवाला हो, उसे 'भारी' या 'गुरु' कहते हैं।

(२७३) स्निग्ध—जो पदार्थ वातनाशक, वीर्य्यवर्द्धक, कफकारक और बलवर्द्धक होते हैं, उन्हें "स्निग्ध" कहते हैं। स्निग्ध का अर्थ चिकना है।

(२७४) रुक्ष—रुक्षका अर्थ रूखा है। रूखे पदार्थ वायुको बढ़ाने-वाले और कफको नाश करनेवाले होते है।

(२७५) तीक्ष्ण—तीक्ष्ण पदार्थ पित्तकारक, रसरक्तादि धातुओं को सुखानेवाले, कफ तथा बादीको नाश करनेवाले होते हैं।

(२७६) श्लक्ष्ण—इसका अर्थ छोटा, पतला और चिकना या तेलिया है। जो पदार्थ स्नेह-युक्त न होने पर भी तथा कठिन होनेपर भी चिकना हो, उसे 'श्लक्ष्ण' कहते हैं।

(२७७) स्थिर—जो पदार्थ वायु और मलको रोकने वाला हो, उसे स्थिर' कहते हैं।

(२७८) सर—जो पदार्थ वायु और मलको प्रवृत्त करनेवाला हो, उसे 'सर' कहते हैं। सरका अर्थ यहाँ दस्तावर है। इस शब्दके मलाई, झील, तालाब, सरकना आदि बहुतसे अर्थ होते हैं। "सर

शब्द "स्थिर" का उलटा है। "सर" दस्तावर को कहते हैं, 'स्थिर' क़ाबिज़को कहते हैं।

(२७९) पिच्छिल–जो पदार्थ रेशेवाला, बलकारी, जोड़नेवाला, कफकारी और भारी होता है, उसे 'पिच्छिल' कहते हैं।

(२८०) विशद–गीले को सुखानेवाले और घाव भरनेवाले पदार्थ को "विशद" कहते हैं।

(२८१) शीत—इसका अर्थ शीतल है। जो पदार्थ सुखकारक, रक्तकी अति प्रवृत्तिको रोकनेवाला, मूर्च्छा, दाह, प्यास और पसीने को रोकनेवाला हो, उसे शीत कहते हैं। जिस पदार्थमें 'शीत' गुण होता है, यानी जो ठण्डा होता है, उससे मूर्च्छा, प्यास, दाह वगैरः में लाभ अवश्य होता है।

(२८२) उष्ण—इसका अर्थ गर्म है। यह शीत का उल्टा है। जो पदार्थ गर्म और पाचक होता है, उसे "उष्ण" कहते हैं।

(२८३) मृदु—इसका अर्थ नर्म या मुलायम है। पदार्थ में मृदुता एक गुण होता है।

(२८४) कर्कश—इसका अर्थ कठोर है। पदार्थ में कठोरता एक गुण होता है।

(२८५) स्थूल—इसका अर्थ मोटा है। जो पदार्थ शरीर को मोटा करता है और स्रोतों (छेदों) को रोकता है, उसे "स्थूल" कहते हैं।

(२८६) सूक्ष्म—इसके अर्थ छोटा बारीक, न दिखाई देने वाला आदि बहुतसे हैं। शरीरके सूक्ष्म (अत्यन्त छोटे-छोटे) छेदों में तेल आदि जिस गुण से भीतर घुस जाते हैं, उसे "सूक्ष्म" कहते हैं।

(२८७) द्रव—इसका अर्थ पानी-जैसा पतला है। जो पदार्थ गीला करने वाला और व्यापक होता है, उसे द्रव" कहते हैं।

(२८८) शुष्क—इसका अर्थ सूखा है। यह द्रव का उल्टा है। द्रव गीले को कहते हैं और शुष्क सूखे को कहते हैं। पदार्थों में

गीलापन सूखापन आदि गुण होते हैं। जो पदार्थ सूखा होता है और व्यापक नहीं होता, उसे "शुष्क" कहते हैं।

(२८६) आशु—जिस पदार्थमें आशु गुण होता है, वह शरीरमें फैल जाता है ; यानी जो पदार्थ पानी में तेल की तरह शरीर में फैल जाता हैं, उसे "आशु" कहते हैं।

(२६०) मन्द—जो सब कामोंमें शिथिल और अल्प होता है; उसे "मन्द" कहते हैं।

नोट—नं० २७१ "हलका" से लेकर ऊपर २६० "मन्द" तक जो शब्द लिखे है ; ये गिन्ती में बीस हैं ; यही बीस गुण द्रव्यों 'पदार्थों' में होते हैं। सुश्रुत ने पदार्थों में जो बीस गुण बताये हैं, उनको हमने विद्यार्थियों की समझ में सुगमता से आने के लिये उलट कर लिख दिया है

याद रक्खो; हलकापन आकाशका, भारीपन पृथ्वी का, चिकनापन जलका, रूखपन वायुका और तीक्ष्णता अग्निका गुण है।

ध्यान में धर लो; जो पदार्थ हलका होगा, जल्दी पचेगा और जो भारी होगा, देर में पचेगा। जो पदार्थ भारी और चिकना होगा, वह कफकारक अवश्य होगा; जो कफकारक और भारी होगा वह बल, वीर्य बढ़ानेवाला और बादी को नाश करनेवाला होगा। इसीसे प्रायःसभी बल बढ़ानेवाली चीज़ें, बहुधा भारी और देर में पचनेवाली होती हैं।

रूखी चीज़ें बादी को बढ़ाती हैं, किन्तु कफ को नाश करती हैं। चिकनी चीज़ें कफ को बढ़ाती और बादी को नाश करती हैं। गर्म चीज़ें पित्तको बढ़ाती और कफ तथा बादी को नाश करती हैं।

ऊपर जो हमने पाँच गुणों का सार लिखा है, उसे अच्छी तरह समझ कर माथे में जमा लो। चिकित्सा में इससे बड़ी आसानी पड़ती है। पर इस बात का भी ध्यान रक्खो, कि ये साधारण नियम हैं, इनके विपरीत भी कहीं-कहीं होता है।

(२६१) मधुर—मधुर का अर्थ मीठा है।- यह एक रस है। छहों रसों में मीठा रस उत्तम हैं। इसकी पैदायश पृथ्वी और जल

से हैं। पृथ्वीका गुण भारीपन और जलका चिकनापन है; इसलिए मधुर रस भी भारी और चिकना होता है। यह रस शीतल है। इससे वात और पित्तका नाश होता है।

(२६२) अम्ल—अम्लका अर्थ खट्टा है। इसकी उत्पत्ति पृथ्वी और अग्निसे है। यह रस वात नाशक है, किन्तु पित्त और कफको बढ़ानेवाला है। यह गरम है।

(२६३) क्षार—क्षारका अर्थ खारी है। इसकी पैदायश जल और अग्निसे है। यह रस कफ तथा पित्तको करनेवाला और वातको नाश करनेवाला है।

(२६४) कटु—कटुका अर्थ चरपरा है। इसकी पैदायश आकाश और वायुसे है। यह रस वात-पित्तको बढ़ानेवाला और कफको हरने-वाला है। यह गरम है।

(२६५) तिक्त—इसका अर्थ कड़वा है। इसकी पैदायश वायु और अग्निसे है। यह रस वातकारक और पित्त-कफ नाशक है। यह शीतल है।

(२६६) कषाय—इसका अर्थ कसैला है। इसकी उत्पत्ति वायु और पृथ्वीसे है। यह रस वायुको कुपित करनेवाला और कफ, रुधिर और पित्तको हरनेवाला है। यह शीतल है।

(२६७) वीर्य—वीर्य बहुधा द्रव्यके आश्रय रहता है और दो तरहका होता है:—(१) शीतल, (२) गरम।

(२६८) विपाक—जठराग्निके संयोगसे पचनेपर छहों रसोंका जो परिणाम होता है, उसे "विपाक कहते हैं। विपाक तीन तरहका होता है:— मीठे और खारी रसका पाक मीठा होता है; खट्टे रसका पाक खट्टा होता है; कसैले, कड़वे और चरपरे रसका पाक बहुधा तीक्ष्ण या चरपरा होता है। इन तीनों तरहके पाकोंसे तीन दोष उत्पन्न होते हैं। मधुर पाकसे कफ, खट्टेसे पित्त, और चरपरेसे वायु उत्पन्न होती है।

(२६९) प्रभाव—द्रव्यकी शक्तिको "प्रभाव कहते हैं। जो काम रस, गुण, वीर्य और विपाकसे नहीं होते, वह शक्ति या प्रभावसे होते हैं। जैसे: खैर कोढ़का नाश करता है। यह इसकी विलक्षण शक्ति है।

नोट—रस, गुण, वीर्य आदिके सम्बन्धमें हम आगे विस्तारसे लिखेंगे।
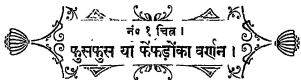
इस चित्रमें फेंफड़े दिखाये गये हैं ; इनका स्थान छाती है, यानी ये छातीमें रहते हैं। अंगरेज़ीमें इनको "लंगज़" (lungs) और अरबीमें इनको "रिहा" कहते हैं। ये गिन्तीमें दो होते हैं। एकको दाहिना फुफ्फुस और दूसरेको बायाँ कहते हैं। हमलोगोंके फेफड़ोंका वज़न क़रीब-क़रीब दो पौण्ड या एक सेरका होता है। पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंके फेंफड़ों का वज़न कुछ कम होता है। इनमें हवा भरी रहती है। यों तो यकृत तिल्ली प्रभृति भी ख़ूनके साफ़ करनेमें मदद देते हैं ; किन्तु फेफड़े, गुर्दे और चमड़ा—ये ख़ूनको साफ करनेमें मुख्य हैं।

इस चित्रमें जहाँ "ख" अक्षर लिखा है, वह हवाकी प्रधान नली है। इसे श्वास-नली कहते हैं। नाकके छेदोंसे फेफड़ों तक हवाके आने-जाने की यही राह है। फेंफड़ोंमें हवाके पहुँचते ही, उसे वहाँ अनेक नालियाँ मिल जाती हैं। इन्हीं नालियोंके द्वारा हवा फेंफड़ोंके सब भागोंमें पहुँच जाती है। फेंफड़ोंमें हवाकी कोई १७।१८ करोड़ कोठरियाँ हैं। आप दाहिनी ओरके फेंफड़ेमें वृक्षकी शाखाओंकी तरह फैली हुई चीज़ोंको देखिये।

फेंफड़ोंके कोने-कोनेमें हवा का भरा रहनाही अच्छा है। इसलिए जो लोग ख़ूब औंडा साँस लेते हैं, उनके फेंफड़ोंमें हवा भरी रहती है; हलके साँस लेनेसे उनमें हवाकी कमी रहती है। फेंफड़ोंमें हवा भरी रहती है; इसीसे ये पानीसे हलके होते और पानी पर तैर सकते हैं। जब इनके किसी हिस्सेमें दोष हो जाता है, तब वह हिस्सा हवा न होने से पोला नहीं रहता। क्षय, तपेदिक़ प्रभृति रोगोंमें फेंफड़ोंके-जो भाग ठोस हो जाते हैं, वे जलपर तैर नहीं सकते।

नं० १ चित्र ।

फुफ्फुस और हृदय ।
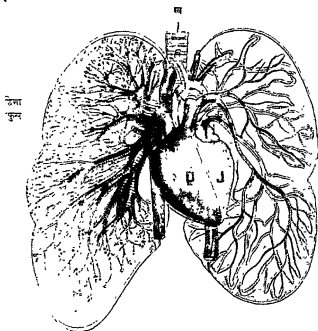
दोनों फेफड़ों को देखिये। दाहिना फेफड़ा बायें से बड़ा है। बीच में नीला और लाल (D और J) हृदय है। "ख" जहाँ लिखा है, वह श्वास-नलिका है। इसके पीछे रबड़ के समान खाने की नली है, जो कण्ठ से मलाशय तक चली गई है। इस नली से खाना आमाशय में, फिर वहाँ से आँतों में जाता है। आँतों से मल मलाशय में और सार पदार्थ रस रसवाहिनी नाड़ियों में चला जाता है। "क" जहाँ लिखा है, वह बृहत् धमनी है। इसमें होकर खून सारे शरीर में चक्कर लगाता है।

हवाका फेंफड़ोंमें जाना और वहाँसे बाहर आनाही श्वास लेना है। जब मनुष्य साँस लेता है ; यानी नाकके छेदों द्वारा हवा भीतर जाती है, तब छाती बड़ी हो जाती है और जब मनुष्य साँस छोड़ता है यानी जब हवा भीतरसे बाहर आती है, तब छाती पहले जितनी ही हो जाती है। साँसके एक बार भीतर जाने और बाहर आनेको एक साँस कहते हैं।

तन्दुरुस्त आदमी १ मिनिटमें १५।२० साँस लेता है। बालक अधिक साँस लेता है। हालका पैदा हुआ बच्चा एक मिनिटमें प्रायः ४५ साँस लेता है। पाँच सालका बालक प्रायः २५ साँस लेता है। कह आये हैं कि स्वस्थ मनुष्य एक मिनिटमें १५।२० साँस लेता है ; पर भागते हुए, स्त्री-संगम करते हुए, कसरत या और कोई मिहनत करते समय साँसोंकी संख्या मामूलसे ज़ियादा हो जाती है। बीमारीकी हालत में अथवा अफीम प्रभृतिके ज़हर चढ़ने की दशामें, साँसों की संख्या कम हो जाती है : पर ज्वरकी हालतमें साँस जल्दी-जल्दी चलने लगता है।

जो हवा साँस द्वारा फेंफड़ोंमें जाती है, वही खूनको साफ़ करती है। इसलिए मनुष्यको सदा साफ़ हवामें रहना चाहिये। फेंफड़े साफ़ हवाको खींचते हैं और उससे शरीरकी जान—खूनको साफ करते हैं तथा बाहर आनेवाले साँस द्वारा ज़हरीले पदार्थोंको बाहर निकाल देते हैं। न्यूमोनिया या क्षय रोग अथवा थाइसिसमें जब फेंफड़े ख़राब हो जाते हैं, तब बड़ी कठिनता होती है।

आप जो इस चित्रमें नीली और लाल दो तरह की नालियाँ देखते हैं : आपके मनमें सवाल उठता होगा, कि ये दो रङ्गकी नालियाँ कैसी हैं ? सुनिये,—शरीरका खून नालियों में ही रहता है। ये नालियाँ दो तरह की होती हैं :—(१) धमनी, (२) शिरा। धमनियाँ शिराओं से मोटी होती हैं और इनमें साफ़ खून रहता है। शिरायें पतली होती हैं और इनमें मैला खून रहता है। फेंफड़ोंके बायें हिस्से में जो नीली-नीली नालियाँ हैं वे शिरायें हैं ; उनमें मैला खून रहता है। दूसरी जो लाल-लाल हैं, वे धमनियाँ हैं ; उनमें साफ़ खून रहता है।

नं० २ चित्र

मस्तिष्क और वात नाड़ियों का वर्णन।

मनुष्य-शरीरमें मस्तिष्क सार और मुख्य अङ्ग है। यह कपाल में रहता है। यह आठ हड्डियोंसे बना एक कोठा है। इस कोठेके अन्दर जो चीज़ है, वही मस्तिष्क है। कपाल की पेंदीमें एक बड़ा छेद होता है। इसी स्थानपर एक नली आ मिली है। इस नलीको *Spinal cord* या कशेरुक नली कहते हैं। इस नलीके भीतर एक और नली रहती है, उसे सुषुम्ना नाड़ी कहते हैं। यह मस्तिष्कके नीचेके हिस्से से मिली हुई है।

मस्तिष्क अण्डेकीसी शकलका होता है। स्त्रियोंके मस्तिष्कसे पुरुषोंका मस्तिष्क कुछ अधिक वज़नी होता है। यह तोलमें कोई सवा सेर के क़रीब होता है। मस्तिष्क और सुषुम्नासे निकलकर अनेकों नाड़ियाँ सारे शरीरमें फैली हुई हैं।

मस्तिष्क दो होते हैं—(१) बड़ा,और (२) छोटा। इनके काम भी अलग-अलग हैं।

भारतवर्षकी राजधानी दिल्ली है। दिल्लीसे तारोंकी मुख्य लाइन चलती है और उससे सारे भारतवर्षके नगरोंके तारोंका सम्बन्ध है। भारतके किसी भी नगरमें जो कोई बुरा-भला काम होता है, उसकी ख़बर उन तारों द्वारा दिल्ली पहुँच जाती है और फिर दिल्लीसे जो आज्ञा जारी होती है, वह सब नगरोंमें पहुँच जाती है। जिस तरह दिल्ली सारे भारतकी तार लाइनसे सम्बन्ध रखती है और वहींसे सब तरहका हुक्म होता है और वहीं सबकी शिकायत पहुँचती हैं; उसी तरह मानव देहमें मस्तिष्क मुख्य स्थान है, जहाँसे सारे शरीरको आज्ञायें निकलती हैं और जहाँ सारे अङ्ग-प्रत्यङ्गोंके दुःख-सुखकी ख़बरें पहुँचती हैं। मतलब यह है, कि शरीरमें जो नाड़ी-जाल है, वह तारोंके जाल-

नं० २ चित्र।
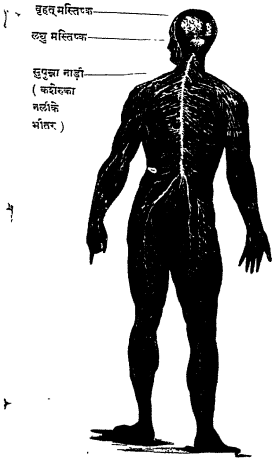
स्नायु या नाड़ीजाल दिखानेवाला चित्र।

की तरह है। अगर मौसममें भी ज़रासा फेरफार होता है, तो शरीर की तारवरकी फ़ौरन मस्तिष्कको ख़बर देती है।

सुषुम्ना नाड़ी इस शरीरकी मुख्य तारकी लाइन है, जो मस्तिष्कसे चलती है। इससे फिर और-और तरफ़ों को लाइनें निकली हैं। इसीमें होकर ख़बरें आया और जाया करती हैं। मस्तिष्कसेही इच्छा, विचार, बुद्धि, ज्ञान, अनुभव और सञ्चालन क्रिया होती है। जब मस्तिष्क बिगड़ जाता है, तब कोई इन्द्रिय काम नहीं करती। मस्तिष्क बिना शरीरकी रक्षा नहीं है। जिस तरह अच्छा राजा प्रजाकी रक्षा करता है, उसी तरह मस्तिष्क शरीरकी रक्षा करता है। मान लो—आपके पाँवमें बिच्छू काटना चाहे। बिच्छूके पास आतेही वह ख़बर नाड़ी रूपी तारवरकी द्वारा मस्तिष्कमें पहुँचेगी। ख़बर पहुँचतेही वहाँसे हुक्म आवेगा—पैर हटा लो। ख़बर पातेही आप पैर हटा लेंगे और तकलीफ़से बच जायेंगे। इसी तरह दुःख-सुख, गरमी-सरदी सभी बातोंकी ख़बर, मस्तिष्क-रूपी राजधानीमें, नाड़ी-जाल रूपी तारों द्वारा पहुँचती है और वहाँसे हर बातका यथोचित उत्तर आता है। इससे सिद्ध हुआ कि मस्तिष्क प्रधान अङ्ग है। उसमें बिगाड़ होनेसे शरीर-की ख़ैर नहीं। इस मस्तिष्कमें ही आत्मा या मन रहता है। जब मनको ज़रा भी कष्टकी सम्भावना होती है, तब मस्तिष्क शीघ्रही उस दुःखदायी ख़बरको शरीरके प्रत्येक अङ्गके पास पहुँचा देता है। पीछे सभी अङ्ग मिलकर दुःख निवारणकी कोशिशें करते हैं। बाज़-बाज़ मौकों-पर जब कोई भयानक शोकप्रद घटना होती है, तब मन ऐसे विचारोंमें डूब जाता है कि, वह सब वैद्युतिक शक्तिको ख़र्च कर डालता है। जब अपने पासकी शक्ति ख़र्च हो जाती है, तब अपने नीचे वालोंकी शक्तिको भी खींचकर ख़र्च कर देता है। जब कुछ नहीं रहता, दीवाला हो जाता है, सारा ख़ज़ाना ख़ाली हो जाता है, तब अक्सर मृत्यु हो जाती है। मस्तिष्कका इतना प्रभाव है कि, यदि सिरमें कोई तकलीफ़ हुई कि, भूख-बन्द हो जायगी अथवा और कोई रोग हो जायगा। देखते हैं,

हमें घण्टे भर पहले ऐसी भूख लग रही थी कि,भूखके मारे घबराये जाते थे। हम खानेको जानेही वाले थे कि, हमारे उठते-उठते एक बड़ी भारी दुखदायी ख़बर आ गई। उसे सुनतेही हमारी भूख न जाने कहाँ चली गई। इन सब बातोंसे साफ़ जाहिर है कि, चित्त और मस्तिष्क का हृदय और फेंफड़ों पर बड़ा प्रभाव है। चित्तपर बुरा प्रभाव होनेसे मनुष्यका दिल धड़कने लगता है और मनुष्य बेहोश हो जाता है। नाज़ुक-मिज़ाजोंकी तो मृत्यु तक हो जाती है।

मिस्टर इलियट बारवर्टन महोदय लिखते हैं कि,एक हाजीको राहमें महामारी मिली। उन्होंने कहा—"तुम बड़ी दुष्टा हो, जो कैरोके इतने मनुष्यों को हड़प गई!" महामारीने कहा,—"अरे भाई क्या बकते हो? हाँ,उस नगरके २० हज़ार आदमी मर गये, पर मेरे हाथोंसे तो कोई दो हज़ार ही मरे हैं। शेष सब तो मेरे साथी "भय" के मारे मरे हैं।"

हृदय का वर्णन।

जहाँ अङ्गरेज़ी के D और J अक्षर लिखे हैं, वह हृदय या दिल है। इसके भी दो भाग हैं। जहाँ D लिखा है, वह नीला है और जहाँ J लिखा है, वह लाल है। हृदय दोनों फैंफड़ोंके बीचमें रहता है।

मनुष्य-शरीर में खून सदा चक्कर लगाया करता है। हृदयमें होकर खून आता और जाता है; इसीसे ये सिकुड़ता और फैलता है। हृदय का फड़कना आपको छातीपर हाथ लगानेसे मालूम हो सकता है।

हृदयमें कोठे होते हैं। उनमें किवाड़ होते हैं। जब एक कोठेमें नालियों द्वारा खून आता है, तब वह खूनसे भरकर सिकुड़ता है और खून को दूसरे कोठेमें निकालकर फिर फैलता है। पिछले कोठे का खून पहले में नहीं जा सकता, क्योंकि उसके बाहर आतेही द्वार वन्द हो जाता है। तब वह खून बड़ी धमनीमें (बड़ी धमनी वह है जहाँ "क" लिखा है)

चला जाता है। बड़ी धमनी में से अनेक शाखायें निकली हैं। उनमें होकर खून सारे शरीरमें फैल जाता है।

इस तरह खूनके आने और जानेके कारण हृदय सिकुड़ता और फैलता रहता है। हृदयका यह काम ज़िन्दगी-भर चलता रहता है; इसलिए हृदयका कोई भी कोठा खूनसे ख़ाली नहीं रहता। कहते हैं, हृदय एक मिनिटमें कोई ७२ बार खूनको लेता है और उतनेही बार निकालता है। जब हृदय फैलता है, उसमें खून आता है और जब वह सिकुड़ता है, खून बाहर जाता है। हृदयके फैलने और सिकुड़ने से एक प्रकारका शब्द होता है, जो मनुष्यके बायें स्तनसे नीचे, कान लगाकर सुननेसे, साफ सुनाई देता है।

बचपनमें हृदय जल्दी-जल्दी धड़कता है। ज्यों-ज्यों बालक बड़ा होता जाता है, धड़कन कम होती जाती है। मध्य अवस्था वाले पुरुषका हृदय एक मिनिटमें प्रायः ७०।७५ बार धड़कता है। जन्मे हुए बालकका प्रायः १४०।१४४ बार धड़कता है। अनेक रोगों या मानसिक विकारोंके कारण हृदयकी धड़कन कम और ज़ियादा भी हो जाती है; खुशीकी ख़बरसे अथवा स्त्री-प्रसङ्गकी इच्छासे हृदयकी धड़कन तेज़ हो जाती है। बुरी ख़बर सुननेसे धड़कन कम हो जाती है।

नाड़ीकी चाल हृदयकी धड़कन पर ही निर्भर है। वैद्य लोग अँगूठेके मूलकी धमनियोंको, कलाईके ऊपर, अपनी अँगुलियोंसे दबाकर नाड़ी देखते हैं। इन धमनी नाड़ियोंका सम्बन्ध हृदयसे है। यह बात आप नं० ३ चित्रको देखनेसे सहजमें समझ जायेंगे।

आप चित्रके दाहिने हाथकी धमनी नाड़ियोंको देखिये। इन धमनियोंका सम्बन्ध प्रधान धमनीसे है। प्रधान धमनी और उसकी शाखा धमनियाँ खूनके कारण फैला और सिकुड़ा करती हैं। इसीसे नाड़ीमें फड़कन होती है। इस फड़कनके देखनेकोही नाड़ी देखना कहते हैं। डाक्टरोंके मतानुसार नाड़ीसे विशेष कर दिल और धमनियोंके रोगही जाने जा सकते हैं।
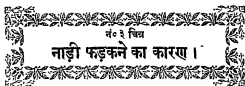
नं० ३ चित्र

नाड़ी फड़कने का कारण।

इस चित्रमें छातीकी जगह दोनों ओर बारह-बारह पसलियाँ हैं। हृदयके सम्बन्धमें पीछे पृष्ठ ङ और च में लिख आये हैं। जहाँ "क" और "क" लिखे हैं, ये दोनों वृक या गुर्दे हैं। इनमें मूत्र तय्यार होता है। यहाँसे मूत्र दो नालियों द्वारा मूत्राशय या मूत्रकी थैलीमें जाता है। यह मूत्रकी थैली गेंदकी तरह गोल है और वहाँ "ख" लिखा है। इस मूत्रकी थैलीके पीछेही मलाशय यानी मलकी थैली हैं।

इस चित्रके (इस नं० ३ चित्रको इस पुस्तकके २१२ और २१३ पृष्ठोंके बीचमें देखिये) दाहिने हाथ या अपने बाये' हाथके सामनेके हाथकी धमनी नाड़ियोंको देखिये। इन नाड़ियोंका सम्बन्ध हृदयके पासवाली वृहत् धमनी या प्रधान धमनी से है। खूनके आवागमनके कारण हृदय फैलता और सिकुड़ता है। हृदयसे खून बड़ी धमनी में जाता है। बड़ी धमनीसे और धमनियोंमें जाता है। खूनके कारणसे वह धमनियाँ फैलती और सिकुड़ती हैं। उनमें तरङ्गसी उठती हैं; इससे नाड़ियोंमें फड़कन या स्पन्दन होता है। इस फड़कनको ही नाड़ी चलना कहते हैं। समझ लीजिये, इन नाड़ियोंके फड़कनेका कारण हृदयका फड़कना या स्पन्दन है।

ऐसा होता है, कि नाड़ीका फड़कना बन्द हो जाता है, नाड़ी कोहनी पर भी नहीं मिलती; किन्तु हृदय फड़कता रहता है। हैज़ेमें बहुधा ऐसा होता है कि,नाड़ी गतिहीन हो जाती है; हाथ पाँव शीतल हो जाते हैं। उस समय उपाय करनेसे नाड़ी फिर भी आ जाती है। रोगी बच जाता है। विषगर्भ तैलमें तारपीनका तैल मिलाकर मालिश
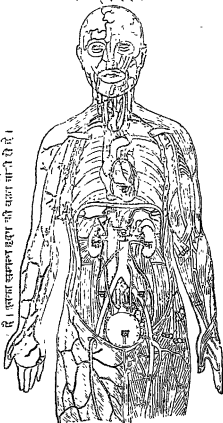
द—यह दिल या हृदय है

क—क—ये दोनों गुर्दे या मूत्रयन्त्र हैं। इन दोनों से दो नालियां मूत्र की थैली तक गई हैं। इन्हीं में होकर मूत्र मूत्र की थैली में जमा होता है। इन दोनों नसों के पास च—च लिखे हैं।

ख—यह मूत्रकी थैली है। इसके पीछे मलाशय है।

नं० ४ चित्र।
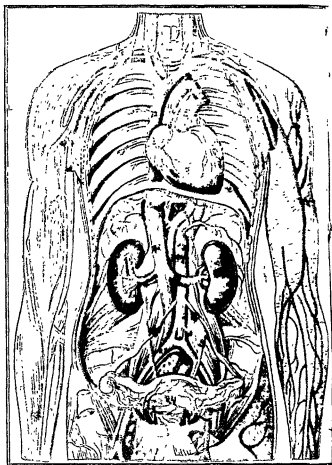
नं० २।३—हृदय या दिल।
नं० ६—खराब या मैले खून की शिरा।
नं० ५—साफ खून की बड़ी धमनी।
नं० २०—दोनों गुर्दे या वृक्क।
नं० २५—गर्भाशय।

नं० ५ चित्र।
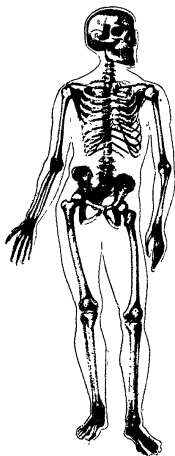
नरकङ्काल या अस्थिपञ्जर।

शरीरका दारमदार इस अस्थिपंजर पर ही है। वैद्यक मत से शरीर में ३०० हड्डियाँ हैं ; किन्तु डाक्टर कोई २४६ बताते हैं।

करने तथा और भी कई उपाय करनेसे हम नाड़ी को चलानेमें कामयाब हुए हैं, रोगी बच गये हैं : किन्तु हृदयका फड़कना बन्द हो जानेपर कोई उपाय काम नहीं देता।

सूचना।

न० ४ और नं० ५ चित्रोंके सम्बन्धमें हम विस्तारपूर्व्वक नहीं लिख सके। फिर भी इनके देखने मात्रसे बुद्धिमान बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। हम इनके सम्बन्धमें किसी अगले भागमें लिखेंगे।

चित्रोंके सम्बन्धमें जो कुछ हमने लिखा है, उसके लिखनेमें हमें हमारे एक मित्र, भूतपूर्व्व सिविल सर्जन निज़ाम हैदराबाद एवं डिमान्स्ट्रेटर आव् एनाटोमी कलकत्ता नेशनल कालेज, श्रीमान् डाक्टर कार्त्तिकचन्द्र दत्त एल० एम० एस० महोदयसे तथा अमेरिकाके डाक्टर फुट (*Foote*) की *Cyclopedia of Popular Medical Social and Sexual Science.* नाम्नी पुस्तकसे बहुत कुछ सहायता मिली है ; अतएव हम अपने मित्र डाक्टर साहब मज़कूरके और उपरोक्त पुस्तक के लेखक डाक्टर फुट महोदय के अतीव आभारी हैं।

लेखक—

मनुष्य-शरीर का वर्णन।

शरीर के मसाले।

मनुष्य-शरीर निम्नलिखित चीज़ों के योग से बना हुआ है:—

१ सात कला

२ सात आशय

३ सात धातु

४ सात धातु-मल

५ सात उपधातु

६ सात त्वचा

७ तीन दोष

८ नौ सौ स्नायु (नाड़ी)

६ दो सौ दस नाड़ी-सन्धि

१० दो सौ हड्डियाँ

११ एक सौ सात मर्म स्थान

१२ सात सौ शिरायें

१३ चौबीस रसवाहिनी धमनी-नाड़ियाँ

१४ पाँच सौ मांशपेशी (स्त्रियों के ५२० हैं)

१५ सोलह कण्डरा [बड़े स्नायु]

१६ दश छेद [स्त्री की देह में १२ छिद्र हैं]

सात कला

१ मांसधरा—

२ रक्तधरा

३ मेदधरा

४ कफधरा

५ पुरीषधरा

६ पित्तधरा

७ रेतोधरा

पहली कला मांसको धारण करती है, इसलिये उसे "मांसधरा कला" कहते हैं।

दूसरी कला रक्त को धारण करती है, इसलिए उसे "रक्तधरा" कहते हैं।

तीसरी कला मेद को धारण करती है, इसलिए उसे "मेदधरा" कहते हैं।

चौथी कला यकृत और प्लीहा के बीच में रहती है, और वह इन्हीं दोनों की कला है; इसलिये उसे "कफधरा" कहते हैं।

पाँचवीं कला आँतोंको धारण करती हैं; यानी आँतड़ियों के आधार से पेट के मल के विभाग करती है, इसीलिए उसे "पुरीषधरा" कला कहते हैं।

छठी कला—अग्नि को धारण करती है; यानी खाद्य पेय प्रभृति चार प्रकार के आमाशय से गिरे हुए पदार्थों को पक्वाशय में ले जाकर धारण करती है, इसलिए उसे "पित्तधरा" कहते हैं।

सातवीं कला—शुक्र यानी वीर्यको धारण करती है, इसलिए उसे "शुक्रधरा कला" कहते हैं।

स्नायुसे ढका हुआ, जरायु से विस्तृत और कफ से विस्तृत जो होता है, उसे "कलाका भाग" कहते हैं। धात्वाशय के बीच में जो धातु का भीगा हुआ भाग शरीर की गरमी से पका हुआ होता है, उसे "कला" कहते हैं।

सात आशय ।

१ कफाशय

२ आमाशय

३ अग्न्याशय (पित्ताशय)

४ पवनाशय (वाताशय)

५ मलाशय (पक्वाशय)

६ मूत्राशय (वस्ति)

७ रक्ताशय

नोट—स्त्रियों के तीन आशय ज़ियादा हैं — (१) गर्भाशय, (२) दो स्तन्याशय।

वक्षस्थल यानी छाती में "कफाशय" है। उसके ज़रा नीचे आमाशय है। नाभि के ऊपर, बाईं तरफ़, "अग्न्याशय,, है। अग्नि-आशय के ऊपर तिल या "क्लोम" है, यह प्यास का स्थान है। इस तिल के नीचे "पवनाशय" है। पवनाशय के नीचे "मलाशय" है और मलाशय के नीचे "मूत्राशय" है। जीव-तुल्य रक्तका स्थान—रक्ताशय, उर यानी छाती में है; इसे प्लीहा या तिल्ली कहते हैं। यह हृदय के बायें भाग में है। स्त्रियों के दोनों स्तन्याशयों के स्थान सभी जानते हैं; इनमें दूध रहता है। गर्भाशय, पित्ताशय और पक्वाशय के बीच में है।

कफाशय—जिस स्थान पर 'कफ' रहता है, उसे "कफाशय" या कफ की थैली कहते हैं।

आमाशय—जिस स्थान पर 'आम, यानी कच्चा अन्न-रस रहता है, उसे "आमाशय" या कच्चे अन्न-रस की थैली कहते हैं। 'चरक' में लिखा है,—नाभि से स्तनों तक जो अन्तर या दूरी है, उसको ही विद्वान् "आमाशय" कहते हैं।

पाचकाशय—आमाशय के नीचे और पक्वाशय के ऊपर जो ग्रहणी नाम्नी कला है, उसे ही "पाचकाशय" कहते हैं।

अग्न्याशय—इसको ही ग्रहणी-स्थान कहते हैं। अग्न्याशयमें 'पाचक अग्नि" रहती है; यह पाचक अग्नि ही आहार को पचाती है। इस अग्नि

के ऊपर तिल यानी प्यास का स्थान है, यहीं से प्यास लगती है। कोई-कोई विद्वान् "तिल" न कहकर, अग्नि-स्थान के ऊपर जलका स्थान कहते हैं और ऐसा अर्थ लगाते हैं कि, नीचे अग्नि है, उसके ऊपर जल है, जल के ऊपर अन्न है और अग्नि के नीचे पवन है। यही पवन अग्नि को तेज़ करती है, अग्नि जल को गरम करती है, गरम जल अपने ऊपर के अन्न को पचाता या पकाता है। नीचे का चित्र देखिये :—
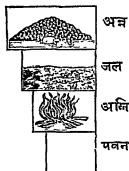
पवनाशय या वाताशय—पवनाशय पवनके रहनेके स्थान या हवाकी थैली को कहते हैं।

मलाशय—मल के रहनेके स्थान को "मलाशय" या "पक्वाशय" कहते हैं।

मूत्राशय—मूत्र या पेशाब के रहने के स्थान या पेशाब की थैली को "मूत्राशय" कहते हैं। इसे "वस्ति" भी कहते हैं।

सात धातु

रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र—ये सात "धातु" कहलाती हैं। ये सातों धातुएँ पित्त के तेज से पक-पककर, क्रम से एक से एक, पैदा होती हैं। आहार से रस, रससे रक्त, रक्त से मांस, मांससे मेद, मेदसे अस्थि, अस्थि से मज्जा और मज्जा से शुक्र बनता है।

अन्नके पचने से रस बनता है और असार भाग जो रह जाता है, वही विष्ठा और मूत्र है।

रस पित्ताग्नि से पकता है। पकने से स्थूल भाग रस, सूक्ष्म भाग रक्त और मैल में "कफ"—ये तीन तैयार होते हैं।

रक्त पकता है। पकने पर स्थूल भाग रक्त, सूक्ष्म भाग मांस और मैल में "पित्त"—ये तीन तैयार होते हैं।

मांस पकता है। पकने पर-स्थूल भाग मांस, सूक्ष्म भाग मेद और मैल में "नाक कान का मैल",—ये तीन तैयार होते हैं।

मेद पकता है। पकने पर स्थूल भाग मेद, सूक्ष्म भाग अस्थि और मैल में "पसीना"—ये तीन तैयार होते हैं।

अस्थि पकती है। पकने पर स्थूल भाग अस्थि, सूक्ष्म भाग मज्जा और मैल में "केश रोम" प्रभृति—ये तीन तैयार होते हैं।

मज्जा पकती है। पकने पर स्थूल भाग मज्जा, सूक्ष्म भाग वीर्य्य और मैलमें "नेत्रों का मैल और मुखकी चिकनाई"—ये तीन तैयार होते हैं।

शुक्र पकता है; किन्तु जिस तरह हज़ार बार गलाने पर भी सोना मैल नहीं छोड़ता, उसी तरह वीर्य्य भी मैल नहीं छोड़ता। स्थूल भाग शुक्र और सूक्ष्म भाग "ओज" है।

इस तरह एक दूसरेसे ये सातों धातुएं तयार होती जाती हैं, और इनके मैल छँटते जाते हैं।

सात धातुओं के मल।

धातु	मैल
रस	... जीभ और नेत्रोंका जल प्रभृति।
रक्त	... ... रंजक पित्त।
मांस	... .. कानका मैल।
मेद	... ... जीभ, दाँत, बगल और लिङ्गका मैल।
अस्थि	... ... नाखून, बाल, रोम प्रभृति।

मज्जा	. ...	आँखोंकी कीचड़, मुखकी चिकनाई।
शुक्र	... ...	मुँहासे, डाढ़ी, मूँछ।

नोट—ऊपर कफको रस धातुका मैल कह आये हैं, यहाँ जीभ और आँखों का जल लिख दिया है, इस से भ्रम होगा। जीभ का मैल कफ से सम्बन्ध रखता है; इससे रस धातु का मैल "कफ" ही समझो।

मेदका मैल ऊपर "पसीना" लिखा है, किन्तु यहां जीभ, दांत और बगल तथा लिङ्गेन्द्रिय के मैल को मेद धातु का मैल लिखा है। इसका कारण यह है कि, शार्ङ्गधर आचार्य "पसीने" को उपधातुओं में मानते हैं; किन्तु अन्य आचार्य ऐसा नहीं करते।

कोई-कोई विद्वान् शुक्र धातु का मैल ही नहीं मानते। मुँहासे और मुख की चिकनाई को तथा नेत्र-मल को मज्जा धातु का मैल कहते हैं। इन्हीं दो तीन बातों में मतभेद है, सो इन नोटों में हमने खोल दिया है।

सात उपधातु

धातु				उपधातु
रस	...	...	...	दूध
रक्त	...	...	...	रज (मासिक खून)
मांस	...	...	...	वसा
मेद	...	...	...	पसीना
अस्थि	...	...	...	दाँत
मज्जा	...	...	...	बाल
शुक्र	...	...	...	ओज

इस तरह रससे दूध पैदा होता है और वह रसकी उपधातु कहलाता है। स्त्रियोंका माहवारी खून, रक्त (खून,) धातु से पैदा होता है और वह रक्तकी उपधातु कहलाता है। दूध और मासिक रक्त, ये दोनों उपधातु तथा रोमराजि (बाल और रोएँ) ये तीनोंही औरतोंके समय पाकर पैदा होते हैं और समय आने पर, पहले दोनों, नाश भी हो जाते हैं। पचास सालसे अधिक उम्र होनेपर, मासिक धर्म नहीं होता, इसलिए गर्भ नहीं रहता; गर्भ न रहनेसे स्तनोंमें दूध नहीं आता।

इसी तरह शुद्ध मांससे वसा पैदा होती है और मांसकी उपधातु कहलाती है। स्वेद या पसीना मेद धातुकी उपधातु ; दाँत अस्थिकी उपधातु ; केश (बाल) मज्जाके उपधातु ; और "ओज" * शुक्र धातु का उपधातु है।

सात त्वचा ।

१ पहली त्वचा अवभासिनी है; यह सिध्मकुष्ठ की जगह हैं।

२ दूसरी लोहिता है; यह तिलकालक या तिलकी जगह है।

३ तीसरी श्वेता है; यह चर्मदल कुष्ठकी जगह है।

४ चौथी ताम्रा है; यह किलासकुष्ठ की जगह है।

५ पाँचवीं वेदनी है; यह सब कोढ़ों की जगह है।

६ छठी रोहिणी है; यह गाँठ, गण्डमाला अपची प्रभृति की जगह है।

७ सातवीं स्थूला है; यह विद्रधि, अर्श, भगन्दर आदि की जगह है।

पहली त्वचा में सिध्मकुष्ठ, परमकण्टक आदि रोग पैदा होते हैं; दूसरी में तिल, तीसरी में चर्मदल कोढ़, चौथी में किलासकुष्ठ (लाल कोढ़); पाँचवीं में कोढ़ ; छठी में गांठ वग़ैरः और सातवींमें बवासीर विद्रधि प्रभृति रोग पैदा होते हैं।

पहली त्वचा जौके अठारहवें भागके बराबर मोटी है, दूसरी जौके सोलहवें, तीसरी जौके बारहवें, चौथी जौके आठवें, पाँचवीं जौके पाँचवें भागके समान और सातवीं एक जौ-भर मोटी है। सातों चमड़ी मिलाकर दो जौ मोटी हैं। यह प्रमाण पुष्ट स्थानों में है; ललाट और छोटी उँगली प्रभृतिमें नहीं है। इन चमड़ियों के सम्बन्धमें ज्ञान रखने से, इन पर होने वाले कोढ़, गाँठ, गण्डमाला, विद्रधि, बवासीर वग़ैरः की चिकित्सा में सुभीता होता है।

* ओज—सारे शरीर में रहता है। यह सोमात्मक, शीतल, चिकना और शरीर की बलपुष्टि करनेवाला है। ओज के सम्बन्ध में धातुओं की क्षय-वृद्धि जहाँ लिखी है, वहाँ कुछ अधिक लिखा है। असल में ओज सर्वप्रधान है, तेज है, सारका सार है।

तीन दोष।

वात, पित्त, और कफ,—ये तीन दोष हैं। इनके सम्बन्धमें हम आगे विस्तार से लिखेंगे।

नौ सौ स्नायु।

स्नायु एक प्रकार की नसें हैं। ये फैलनेवाली, गोल और अन्दर से पोली हैं। गिन्तीमें कुल नौ सौ हैं। इनमें से ६०० बड़ी हैं और हाथ पैर दत्यादि में कमल की डण्डी के तन्तुओं की तरह फैल रही हैं। २३० मोटी और छेद वाली कोठोंमें हैं, ७० गर्दनमें हैं। ये भी पोली हैं। इन्हीं ६०० स्नायुओं से शरीर बँधा हुआ है।

दो सौ दस सन्धि।

शरीर में हाथ, पैर, कन्धे, घोंटू, कोहनी प्रभृति जहाँ मिलते हैं, उन स्थानोंको "सन्धि या जोड़ कहते हैं। उन सन्धि या जोड़ोंमें कफके समान चिकना पदार्थ भरा हुआ है। सारे शरीरमें २१० सन्धि या जोड़ हैं।

दो सौ अस्थियाँ।

शरीर में हड्डियां ही सार और आधार हैं। इनपर ही शरीररूपी ढाँचा ठहरा हुआ है। यह पाँच प्रकारकी होती हैं:—(१) कपाल, (२) रुचक (३) वलय, (४) तरुण (५) नलक।

एक सौ सात मर्म।

देहमें मर्म प्रायः आत्माके आधारभूत हैं। इनमें चोट लगनेसे प्राणी तत्काल मर जाता है। जीवका वास इनमें समझा जाता है। "भावप्रकाश" में लिखा है,--शिरा, स्नायु, सन्धि, मांस और हड्डियाँ--ये सात जहाँ इकट्ठे होकर एक जगह मिलते हैं, उसी स्थान को "मर्म-स्थल" या "मर्मस्थान" कहते हैं। इन मर्म्मस्थानों में विशेष करके प्राण रहते हैं।

कुल मर्म १०७ हैं। मर्म पाँच प्रकार के हैं:--(१) मांस-मर्म ११ (२) शिरा-मर्म ४१ (३) स्नायु-मर्म २७ (४) अस्थि-मर्म ८ (५) सन्धि-मर्म २० ।

दोनों पाँवोंमें २२, दोनों हाथोंमें २२, छाती और कोखमें १२, पीठमें १४, गर्दन और उसके ऊपर के हिस्से में ३७ कुल-१०७।

इनमें से १६ मर्म तत्काल प्राण हरते हैं; ३३ कालान्तरमें प्राण हरण करते हैं; ४४ विकलता उत्पन्न करते हैं; ८ पीड़ा करते हैं और ३ विशल्य नाशक हैं।

तत्काल प्राणनाशक मर्म ।

शृङ्गाटक, अधिपति, शंख, कण्ठशिरा, गुदा, हृदय, वस्ति और नाभि—यदि इनमें चोट लग जाय, तो तत्काल प्राण नाश हो जायँ।

शृङ्गाटक—नाक, कान, आँख औरजीभ—इन चारों इन्द्रियोंको तृप्त करनेवाली शिराओं—नसों—का जो मस्तकमें संयोग--मेल हुआ है, उसको "शृङ्गाटक" कहते हैं। उसमें चोटलगनेसे तत्काल मृत्यु होती है।

अधिपति—मस्तकके भीतर नसों की जहाँ सन्धि हुई है, उसके ऊपर रोमों का आर्त्तव है। यह भी एक मारक मर्म है।

शंख—कनपटियोंमें दो अस्थि-मर्म हैं, उन्हें "शंख" कहते हैं। ये भी मारक हैं।

कण्ठशिरा—गर्दनके ऊपर दोनों तरफ चार-चार नसें हैं। ये आठों शिरायें अथवा नसें मर्मस्थान हैं। इनमें चोट लगने से भी तत्काल मृत्यु होती है।

गुदा—वायु और विष्ठा को त्यागनेवाली स्थूल आँतों से गुदा बँधी हुई है। यह मांस-मर्म है। इसमें चोट लगने से भी तत्काल मौत होती है।

हृदय--दोनों स्तनों के बीचमें छाती है। वह सत्व, रज और तमका अधिष्ठान है। वहीं हृदय नामक शिरा-मर्म है। उसमें चोट लगने से तत्काल मृत्यु होती है।

वस्ति—पेट, कमर, गुदा, पेड़ू और लिङ्ग इनके बीचमें वस्ति है। यह मूत्र की थैली है। इसका चमड़ा पतला है और इसमें दरवाज़ा है, जिसका मुँह नीचे की ओर है। वस्ति शिरा-मर्म है और चोट लगने से शीघ्र ही प्राण नाश करती है।

नाभि—इसे सभी जानते हैं। यह चार अंगुलका शिरा-मर्म है। यह पक्वाशय और आमाशय के बीचमें है। यह भी चोट लगने से तत्काल प्राण नाश करती है।

कालान्तर में प्राणनाशक मर्म।

वक्षस्थलके मर्म, सीमन्त, तल, क्षिप्र, इन्द्रवस्ति, वृहती, पसलियों की सन्धि, कटीकतरुण और नितम्ब—इन स्थानोंके मर्म कालान्तरमें प्राण हरण करते हैं।

वक्षस्थलके मर्मों में स्तनोंके ऊपर नीचे के चार मर्म, कन्धे की हड्डीके नीचे और पसलियोंके ऊपर के दो मर्म, छाती के दोनों ओर के दो मर्म शामिल हैं। इनमें से कोई कफसे, कोई रुधिर से और कोई वायु से भरे हुए हैं। इस कारण ये कालान्तर में मारते हैं।

सीमन्त--सिरके सन्धि-मर्म को कहते हैं। ये उन्माद, भय, मूर्च्छा प्रभृति उत्पन्न करके मारते हैं।

तल--विचली उँगली, हथेलियो और पाँवके तलवोंके मर्म को कहते हैं। ये जल-मर्म कहलाते हैं। इनमें पीड़ा होने से कालान्तरमें प्राण निकलते हैं।

क्षिप्र—अँगूठा और उङ्गलियों के मर्म हैं। ये आक्षेपक नामका वायु रोग पैदा करके कालान्तर में मारते हैं।

इन्द्रवस्ति—दोनों बाजू और दोनों जाँघों में चार मांस-मर्म हैं। ये रुधिर क्षय होने से कालान्तर में मारते हैं।

वृहती—स्तनों की जड़ के दोनों ओरसे लेकर पीठके बाँसों पर्य्यन्त शिरा-मर्म हैं। रुधिर के बहुत निकलने से ये कालान्तर में मारते हैं।

पार्श्व सन्धि—जाँघों की दोनों पसलियों की सन्धि में शिरा-मर्म हैं। ये कालान्तर में प्राण हरण करते हैं।

कटीकतरुण—त्रिक या रीढ़ के पास की तीन हड्डियों के पास अस्थिमर्म हैं। रुधिर के क्षय से पीलिया प्रभृति करके कालान्तरमें प्राण नाश करते हैं।

नितम्ब—दोनों चूतड़, ये दोनों प्रसिद्ध अस्थिमर्म हैं। शरीर के नीचे का भाग सूखने से तथा दुर्बलता होने से कालान्तर में प्राण नाश करते हैं।

भयानक हानि करने वाले अथवा तत्काल या कालान्तर में प्राण नाश करवेवाले मर्मोका हमने वर्णन कर दिया ; शेष मर्म इतने भयानक नहीं। उन सब के लिखने से ग्रन्थ बढ़ने का भय है और पढ़नेवालों को आफ़त के समान भी दीखेंगे। तत्काल प्राणनाशक मर्म अवश्य जानने चाहिएँ ; शेष के जानने की जिन्हें ज़रूरत हो, वे "भावप्रकाश" प्रभृति ग्रन्थों में उन्हें देख लें।

सात सौ शिरायें।

शिरा एक प्रकार की नसें हैं। ये सन्धि के बन्धनों को बाँधनेवाली और वात आदि दोष और रस आदि धातुओं को बहानेवाली हैं।

चौबीस धमनियाँ।

धमनी नाम की २४ नाड़ियाँ हैं। ये नाभिस्थान से प्रकट होकर दश नीचे की ओर गई हैं ; जो वात, मूत्र, मल, शुक्र, आर्त्तव आदि और अन्न, जल, रस इन को बहाती हैं। दश ऊपर को गई हैं ; जो शब्द रूप, रस, गन्ध, श्वासोच्छ्वास, जम्भाई, भूख, हँसना, बोलना, रोना प्रभृति को बहाकर देह को धारण करती हैं। उन के सिवा तिरछी जानेवाली चार धमनियाँ और हैं। उन चारों से अनगिन्ती धमनियाँ पैदा हुई हैं। उन से यह शरीर जाल की तरह ढका हुआ है। उन के मुँह रोमकूपों या शरीर के अनन्त छेदों से बँधे हुए है। उबटन, स्नान, तेल प्रभृति का

वीर्य उन्हींके द्वारा भीतर पहुँचता है। यही २४ रसवाहिनी नाड़ी कहलाती हैं।

पाँच सौ मांसपेशियाँ।

मांसपेशियों से देहमें बल होता है और उन्हींके बलसे शरीर सीधा खड़ा रहता है।

सोलह कण्डरा।

कण्डरा बड़ी स्नायुओं को कहते हैं। ये गिन्ती में सोलह हैं। इन से ही हाथ पैर आदि अङ्गों के फैलाने और सुकेड़ने में सहायता मिलती है।

दश छिद्र।

नाक में दो, कानों में दो, लिङ्ग में एक, मुख में एक, गुदा में एक, तथा मस्तक में एक छिद्र है, जिसे "ब्रह्मरन्ध्र" कहते हैं। इस तरह दश छिद्र हैं। पुरुषों के नौ छेद खुले हुए हैं, मस्तक का छेद ढका हुआ है। स्त्रियों के गर्भ-मार्ग में एक छेद और दोनों स्तनों में दो छेद,—ये तीन ज़ियादा हैं।

प्लीहा।

हृदय के बाये' भाग में प्लीहा या तिल्ली अथवा स्प्लीन (Spleen) है। यह रक्त-वाहिनी शिराओं की जड़ है और रक्त से पैदा हुई है।

फेंफड़े।

फेंफड़ों को फुस्फुस भी कहते हैं। अङ्गरेज़ी में इन्हें "लङ्ग ज़" (Lungs) और अरबी में "रिया" कहते हैं। ये रुधिरके भागोंसे प्रकट होकर हृदय-नाड़ी से लगे हुए हैं। इन्हीं से श्वास का काम होता है। श्वास से ही देह की चेष्टा होती है।

यकृत।

हृदय के दाहिने भाग में यकृत या कलेजा है। इसे ही "लिवर" (Liver) कहते हैं। यकृत रञ्जक पित्त और रुधिर का स्थान है।

तिल या क्लोम ।

दाहिनी तरफ़, यकृतके पास, तिल या क्लोम नामकी एक जगह है। यह तिल खून के कीट से पैदा हुआ है। यह जल बहानेवाली नाड़ियोंका मूल है। यहीं से प्यास लगती है।

वृक्क ।

वृक्कों को कुक्षिगोलक भी कहते हैं। अङ्गरेज़ीमें "किडनी" (Kidney) और हिकमत में "गुर्दे" कहते हैं। ये दोनों मूत्रपिण्ड कमर के दोनों ओर रहते हैं। ये मूत्र को अलग करके मूत्राशय या बस्ति में पहुँचाते हैं।

वृषण ।

वृषण आँड या फोतों को कहते हैं। ये मांस, कफ और मेदके सारांश से पैदा होते हैं, और वीर्य-वाहिनी नाड़ियोंके आधार हैं; अतएव पुरुषार्थ-दाता हैं।

हृदय ।

कमलकी कली के समान, किसी क़दर खिला हुआ, नीचेकी तरफ़ मुँह किये हुए "हृदय" है। यह चैतन्यताका स्थान और ओज यानी सब धातुओं का सार है। यों तो सारा शरीर ही चेतना का स्थान है, पर हृदय या दिल अथवा "हार्ट" (Heart) विशेष करके चेतना का मुख्य स्थान है।

शिरा और धमनियोंका काम ।

नाभिस्थान में रहनेवाली शिरा और धमनी, सारे शरीर में व्याप्त होकर, रात-दिन, वायु के संयोग से, रसादि धातुओं को शरीर में ले जाकर, शरीरका पोषण करती हैं। ये तरुणोंको पुष्ट करतीं और वृद्धों का पालन करती हैं।

तीन दोष।

वात, पित्त और कफ—इन तीनों को "दोष" कहते हैं और "धातु" भी कहते हैं। धातु और मल इन तीनों से दूषित होते हैं, इसलिये इनको "दोष" कहते हैं और ये देह को धारण करते हैं, इसलिये इनको "धातु" कहते हैं।

वायु।

वायु अन्य दोषों और रस, रक्त मांस, मेद आदि धातुओं को दूसरी जगह पहुँचानेवाला, जल्दी चलनेवाला, रजोगुणयुक्त, सूक्ष्म, हलका, रूखा और चञ्चल है। श्वास का लेना और छोड़ना, इसीसे होता है। वायु—धातु और इन्द्रियों की चतुराई से रक्षा करता है; हृदय, इन्द्रियों और चित्तको धारण करता है। शीतल है, नर्म और योगवाही है; यानी जिसके साथ मिलता है, उसीकेसे गुण प्रकाश करता है; सूरज के साथ मिलता है, तो दाह पैदा करता है; और चन्द्रमा के साथ मिलता है, तो शीतलता करता है; पित्त के साथ मिलकर पित्त के से काम करता है और कफके साथ मिल कर कफकेसे काम करता है।

सब दोषों में वायुही प्रधान है। बिना वायु के प्राणी क्षण-भर भी जीवित नहीं रह सकते। देह-धारियों के लिये बाहरी और भीतरी दोनों वायुओं की ज़रूरत हैं। बाहरी वायु प्राणियों को जीवित और चैतन्य रखता है। भीतरी वायु शरीर के भीतर काम करता रहता है। कहीं रस को, कहीं रक्तको, कहीं वीर्य को और कहीं भोजन को पहुँचाता है।

यही शरीर में सफ़ाई करता और मल मूत्र को निकाल कर बाहर फैंकता है। इसके अनेक काम हैं। जितने दोष और धातु हैं, सब लँगड़े हैं; वायु उन्हें जहाँ ले जाता है, वहीं चले जाते हैं। जिस तरह वायु बादलों को इधरसे उधर और उधरसे इधर ले जाता और लाता है; उसी तरह शरीर के भीतर भी वायु करता है। कहा है:—

> पित्त पगु कफःपंगु, पंगवो मलधातवः।
> वायुना यत्र नीयन्तं, तत्रगच्छन्ति मेघवत्॥

पित्त लँगड़ा है, कफ लँगड़ा है और सब मल तथा धातु लँगड़े हैं। वायु इन्हें जहाँ ले जाता है, वहीं ये बादलोंकी तरह चले जाते हैं। "हारीत-संहिता" में लिखा है:—

> रक्षणीयं गजे पित्तं, श्लेष्मा वाजिषु सर्वदा।
> पवनोऽथ मनुष्याणां, प्रायो रक्षेत् सर्वदा॥

वैद्य को सदा हाथी में पित्त की, घोड़े में कफ की और मनुष्यों में सदा "वायु" की रक्षा करनी चाहिये।

वायु के रहने के स्थान।

कण्ठ, हृदय, कोठे की आग, मलाशय और सारा शरीर—ये पाँच स्थान वायु के रहने के हैं। कण्ठ में उदानवायु, हृदय में प्राण वायु, कोठे की अग्नि के नीचे नाभि में समानवायु, मलाशयमें अपानवायु और सारे शरीर में व्यानवायु रहता है।

पाँचों वायुओं के काम।

उदानवायु—यह गलेमें घूमती है, इसीकी शक्तिसे यह प्राणी बोलता और गीत आदि गाता है। जब यह वायु कुपित होती है, तब कण्ठ के रोग करती है।

प्राणवायु—यह वायु प्राणों को धारण करती और सदैव मुँह में चलती है। यह भोजन के अन्नको भीतर प्रवेश करती और प्राणों की रक्षक है। यह कुपित होकर हिचकी और श्वास आदि रोग पैदा करती है।

समानवायु—यह वायु आमाशय और पक्वाशय में विचरती और जठराग्नि से मिलकर अन्न को पचाती और अन्न से उत्पन्न हुए मलमूत्र आदि को अलग-अलग करती है। यह कुपित होकर मन्दाग्नि, अतिसार और वायुगोला प्रभृति रोगों को पैदा करती है।

अपानवायु—यह वायु पक्वाशय में रहती है। मल, मूत्र, शुक्र, गर्भ और आर्त्तव इनको निकाल कर बाहर फेंकती है। यह वायु कुपित हो कर, मूत्राशय और गुदा के रोग करती एवं शुक्रदोष, प्रमेह तथा व्यान और अपान के कोप से होने वाले रोग पैदा करती है।

व्यानवायु—यह वायु सारे शरीर में विचरती है। यह रस, पसीना और खून को बहाती है। जाना, नीचे को डालना, ऊपर को फेंकना, आँख मींचना और आँख खोलना—ये क्रियाएँ इसी के अधीन हैं। यह जब कुपित होती है, सब शरीर के रोगों को प्रकट करती है।

जब ये पाँचों वायु एक साथ कुपित हो जाती हैं, तब निस्सन्देह शरीर का नाश कर देती हैं; यानी प्राणी को मार डालती हैं।

वायु कोप के लक्षण।

अङ्ग-भेद, अनिवार्य्य तृषा, मर्दनकीसी पीड़ा, कम्प, सूई चुभाने की सी पीड़ा, रस्सी से बाँधने की सी पीड़ा, मल की कठोरता, लाल रङ्ग हो जाना, कसैला स्वाद, साँस न आना, शरीर सूखना, शूल, शरीर का सो जाना, शरीर का सिकुड़ना, शरीर का रह जाना प्रभृति लक्षण "चरकके सूत्रस्थान"में वायु-कोपके लिखे हैं। मामूली तौर पर वायुका कोप होने से शरीरमें थकानसी मालूम होने लगती है, दिशा पेशाब कम होते हैं, आँखों में नशा सा जान पड़ता है, नींद नहीं आती, पेट फूल जाता है, जोड़ों में दर्द होता है, पीठका बाँसा दुखने लगता है, सिर में दर्द होता है; कमर, छाती और कनपटी में वेदना होती है।

वायु कोप के कारण।

"चरक" में लिखा है—रूखे, हलके और शीतल पदार्थों के सेवन, ज़ियादा मिहनत, ज़ियादा वमन होना, ज़ियादा जुलाब होना, आस्था-

पन का अतियोग; मल, मूत्र, छींक, जँभाई आदि वेगों का रोकना; उपवास, चोट लगना, अति स्त्री-सम्भोग करना, घबराहट, चिन्ता-फ़िक्र की अधिकता, खून का निकलना, रातमें जागना, शरीर को बेक़ायदे टेढ़ा-तिर्छा करना—ये सब कारण वायु-कोप के हैं।

"हारीत संहिता"में लिखा है—कसैले और शीतल पदार्थोंका सेवन, बहुत खाना, बहुत चलना, अधिक बोलना, अति भय करना; रूखी, कड़वी और चरपरी चीज़ों को ज़ियादा सेवन करना; ऊँट, घोड़ा, हाथी, रथ पालकी प्रभृतिकी अधिक सवारी करना; शीतल दिनमें, बादलों से घिरे दिनमें और दोपहरके बाद स्नान करना; मसूर, मटर, मोंठ, चौला, ज्वार, जौ, मोटे चाँवल, काला अन्न, शीतल अन्न, कांगनी, लाल अन्न, गुड़ियानी का पकाया भात, बथुआ, प्याज़, गाजर प्रभृति अन्न और शाकों का अधिक खाना—ये सब यदि अधिकता से सेवन किये जायँ, तो वायु को कुपित करते हैं। मनुष्य को वायु के कोप से सदा बचना परमावश्यक है; अतः इन सब कारणों से बचना चाहिए; यानी इनको अधिकता से भूल कर भी न करना चाहिए। विशेष कर, वात प्रकृति वालोंको रूखे, कड़वे, कसैले, चरपरे पदार्थों, बासी भोजन, शीतल, भात, व्रत-उपवास, अति स्त्री प्रसङ्ग, अति तैरना आदि से बचना भला है। मौसम बरसात और जब किसी भी मौसम में बादल हो रहे हों, वायु का कोप होता है; क्योंकि ये वायु-कोप के समय हैं। इसलिए ऐसे समय में कम नहाना, गर्म कपड़े पहनना और गर्म खाना अच्छा है।

वायु की शान्ति के उपाय।

वैद्य को मीठे, खट्टे, खारी, चिकने और गर्म द्रव्यों द्वारा वायु-रोग की चिकित्सा करनी चाहिए। पसीना दिलाना, तेल की मालिश कराना, कम हवा आती हो ऐसे स्थान में सोना, भारी भोजन करना, ग़ोता मार के नहाना, शिरमें तेल लगाना, गुनगुना जल, गेहूँ, मूँग, घी, नवीन उर्द, लहसन, मुनक़ा, मीठा अनार, पके आम, आँवले, कैथ,

गोखरू, हरड़, पका ताड़फल, मिश्री, चीनी, गाय का दूध और सेंधा नोन प्रभृति वायु-कोप को शान्त करनेवाले हैं।

वायु-क्षय के लक्षण।

मन्द चेष्टा, शरीर में शिथिलता, उदासी, थोड़ा बोलना, थोड़ी प्रसन्नता, स्मरण-शक्ति का कम हो जाना,—ये लक्षण उस समय होते हैं, जब मनुष्य के शरीर में वायु कम हो जाता है। यह "सुश्रुत" की बात है। "चरक के सूत्रस्थान" में लिखा है—वायु के क्षीण होने से कुपित पित्त यदि कफकी चाल को रोक दे; तो तन्द्रा, भारीपन और ज्वर होता है। एक जगह लिखा है:—

> प्रलापो गुरुता तन्द्रा, निद्रा स्यात् मरुत्क्षये।
> ष्ठीवनं पित्तकफयोनखादीनां च पातनम्॥

वायु के क्षीण होने पर प्रलाप, भारीपन, तन्द्रा, निद्रा, थूक में कफ और पित्त का आना और नाखून गिरना ये लक्षण होते हैं।

वायु की वृद्धि के लक्षण।

जिस तरह वायु की कमी होती है; उसी तरह वृद्धि भी होती है। चमड़े की कठोरता, दुबलापन, शरीर का फड़कना, गर्मी की इच्छा, नींद का न आना, कमज़ोरी, मलका सूख जाना और मल का कम होना,—ये लक्षण वायु-वृद्धि के हैं।

वायुका समय।

वृद्धावस्था में वायुका ज़ोर होता है; इसलिए इस अवस्था में प्रायः वायु का कोप होता है। जो सावधान रहते हैं, वायु कोपकारी आहार-विहारों से बचते हैं और वायु-शमनकारी आहार विहारों का सेवन करते हैं, वे सुखी रहते हैं।

दिन का अन्त और रात का अन्त; यानी, दिन के २ बजे बाद और रात के २ बजे बाद वायु का समय होता है। इसी तरह भोजन पच चुकने के बाद भी वायु का समय होता है।

बरसात वायुकोप का प्रधान समय है। हेमन्त और शिशिर ऋतु में भी वायु का कोप होता है और साथ ही शरीर में रूखापन होता है।

हारीतने लिखा है,—कातिक, अगहन, माघ, आषाढ़ तथा हेमन्त-ऋतु और छहों ऋतुओं की सन्धि* के समय वायु सविष यानी ज़हरीला होता है ।

पित्त का स्वरूप ।

पित्त एक तरह का पतला द्रव्य है । यह गरम है । आम से मिले हुए पित्तका रङ्ग नीला और आम से अलग पित्तका रङ्ग पीला होता है । यह दस्तावर, चरपरा, हलका, चिकना और तीक्ष्ण होता है । पाक के समय इसका स्वाद खट्टा हो जाता है ।

पित्त के पाँच प्रकार ।

वायु की तरह पित्त भी नाम, स्थान और क्रियाओं के भेद से पाँच तरह का होता है । (१) पाचक, (२) रञ्जक, (३) साधक, (४) आलोचक, और (५) भ्राजक ।

पित्त के रहने के स्थान ।

अग्न्याशय, यकृत, प्लीहा, हृदय, दोनों नेत्र, सम्पूर्ण देह और त्वचा (चमड़ा) में पित्त निवास करता है । अग्न्याशय में पाचक पित्त, यकृत और तिल्ली में रञ्जक पित्त, हृदय में साधक पित्त, दोनों नेत्रों में आलोचक पित्त, सारे शरीर और चमड़े में भ्राजक पित्त रहता है ।

पाँचों पित्तों के काम ।

पाचक पित्त—यह आमाशय और पक्वाशय में रहकर, छै प्रकार के आहारों को पचाता और शेषाग्नि के बल को बढ़ाता है तथा रस, मूत्र, मल प्रभृति को रोज़ अलग-अलग करता है । मुख्यता से वहीं स्थित हुआ अर्थात् आमाशय और पक्वाशय में रह कर ही, अपनी शक्ति से, शरीर के शेष यकृत, त्वचा, नेत्र आदि स्थानों और समस्त देह का पोषण करता है । इसी पित्त को "जठराग्नि" अथवा "पाचक अग्नि" कहते हैं । यह अग्नि काँचके पात्रमें दीपकके समान है । यही अनेक प्रकार के व्यञ्जनों को पचाती है । बड़े शरीरवाले जीवों में यह अग्नि जौके प्रमाण

* एक ऋतु का अन्त हो और दूसरी का आरम्भ हो, उसको "ऋतु सन्धि" कहते हैं ।

छोटे शरीर वालोंमें तिल के प्रमाण और छोटे-छोटे कीट पतङ्गों में बाल के बराबर होती है।

रञ्जक पित्त—इसका काम रस का रक्त यानी खून बनाना है।

साधकपित्त—बुद्धि, धृति यानी मेधा और स्मरण-शक्तिको बढ़ाता है। "सुश्रुत" में लिखा है, इसकी साधक नाम अग्नि संज्ञा है। यह वाञ्छित मनोरथ का साधन करनेवाला है।

आलोचक पित्त—इसका काम रूप ग्रहण करना है। इसी के कारण से प्राणियों को दीखता है।

भ्राजक पित्त—यह पित्त कान्ति करता है और लेप, तेल की मालिश और स्नान आदि को पचाता यानी सुखाता है।

पित्तक्षय के लक्षण।

जिस तरह वायुकी घटती-बढ़ती होती है; उसी तरह पित्त की भी घटती-बढ़ती होती है। जब पित्त कम हो जाता है, तब अग्निमन्द, शरीर की गरमी कम और शरीर की रौनक़ मारी जाती है।

पित्त वृद्धि के लक्षण।

जब पित्त बढ़ जाता है,तब शरीर पीला हो जाता है, सन्ताप होता है, शीतल चीज़ोंकी इच्छा होती है; यानी सर्दी की चाहना होती है; नींद कम आती है, बेहोशी होती है, बलकी हानि होती है, इन्द्रियाँ दुर्बल हो जाती हैं, पेशाब ज़र्द होता है; और आँखें पीली हो जाती हैं।

पित्त कोप के लक्षण।

आग से जलेके समान जलनसी हो, ऐसा मालूम हो मानो धक-धक आग जल रही है, धूआँसा निकलता मालूम हो, खट्टी डकारें आवें, अन्तर्दाह हो, गरमी बहुत लगे, अत्यन्त पसीने आवें, शरीरमें बदबू आवे, अंग और अवयव फटें, चमड़ा जले, लाल-लाल चकत्ते हों, लाल-लाल फोड़े हों, बगलमें कखलाई हो, मुँहमें कड़वापन, अधिक प्यास, आँखोंके सामने अँधेरा, हरे या हल्दी के रङ्ग का चमड़ा हो

जाना, मल मूत्र और नेत्र हरे या पीले हो जायँ, दस्तका पतला होना, आनतान बकना इत्यादि लक्षण पित्तके कुपित होनेसे होते हैं।

पित्त कोप के कारण।

"सुश्रुत" में लिखा है—क्रोध, शोक, भय, परिश्रम, उपवास, जले हुए पदार्थ, मैथुन, दौड़ना, चरपरे, खट्टे और नमकीन पदार्थ, गरम, हलके और दाह करनेवाले पदार्थ, तिल, तेल, कुलथी, सरसों, अलसी, हरी तरकारी, गोह, मछली, बकरी और भेड़ का मांस, खट्टा दही, खट्टी छाछ, दही का तोड़, काँजी, हर तरह की शराब, खट्टे फल और धूप आदि से पित्त का कोप होता है।

"हारीतसंहिता" में लिखा है—बहुत गर्म तथा रूखे चरपरे और खट्टे पदार्थों का सेवन, दाह में सीधू तथा मदिरा का सेवन, गरमी में क्रोध या पसीनोंमें सम्भोग करना—ये पित्त-प्रकोपके कारण हैं। कुलथी, अरहर का यूष, मूली, सहँजना, कचूर, सरसों, राई का शाक खाना, वर्षाऋतु में रातके समय जागना, युद्ध करना, परिश्रम करना,—इन कारणों से शरद् ऋतुमें पित्त कुपित होता है।

पित्त कोप का समय

गरमीका समय, शरद्ऋतु, मध्याह्नकाल, आधीरात और भोजन पचते समय पित्त विशेषकर कुपित होता है। जवानीमें पित्तका ज़ोर रहता है।

पित्तकी शान्ति के उपाय।

वैद्यको पित्तकी मधुर, कड़वे, कसैले और शीतल द्रव्यों, पित्त-नाशक स्नेह (घी तेल), जुलाब, प्रलेपन, अभ्यंग और अवगाहनसे, मात्रा और काल का विचार करके, चिकित्सा करनी चाहिये। पित्तकी जितनी चिकित्सा हैं, उनमें विरेचन यानी जुलाब सर्वोपरि माना जाता है; क्योंकि विरेचन-औषधि आमाशयमें घुसकर विकारकर्त्ता पित्त के मूलको पूर्णरूपसे छेदन कर देती है। (चरक)

उपरोक्त चिकित्सा-विधिके सिवा, नीचे लिखे आहार-विहार भी पित्तकी शान्तिमें अच्छे हैं—मुनक्का, केला, आँवला, अनार, परवल,

छुहारा, ककड़ी, खीरा, करेला, कुम्हड़ा, ताड़केफल, पुराने चाँवल, गेहूँ, मिश्री, चीनी, घी, दूध, मक्खन, अरहर, जौ, चना, मूँग, धानकी खील, मसूर तथा कुटकी, निशोथ, पित्तपापड़ा, त्रिफला, शतावरी, चन्दन एवं सुन्दर बाग, केले और कमलके पत्तों की सेज, सफेद चन्दनका लेप, मित्र-मिलन, मीठी बातें, मनोहर गाना, नाच, शीतल मन्द पवन, फव्वारे, चाँदनी, छिड़काव प्रभृति शीतल आहार-विहार पित्त-विकारवालों के लिए पथ्य हैं।

कफका स्वरूप।

सफेद, भारी, चिकना, घिलमिलासा, शीतल, तमोगुण-युक्त और स्वादु (मधुर) है; विदग्ध होनेसे खारी हो जाता है। कफ भी नाम, स्थान और कर्म-भेदोंसे पाँच प्रकार का होता है।

कफके पाँच प्रकार।

कफ पाँच तरह का होता है:— (१) क्लेदन, (२) अवलम्बन, (३) रसन, (४) स्नेहन और (५) श्लेष्मण।

कफके रहने के स्थान।

आमाशय, हृदय, कण्ठ, शिर, और सन्धि (शरीरके जोड़)— इन में पाँचों प्रकारके कफ रहते हैं। आमाशयमें क्लेदन, हृदयमें अवलम्बन, कण्ठमें रसन, शिरमें स्नेहन और सन्धियोंमें श्लेष्मण कफ रहता है।

कफके काम।

क्लेदन कफ—अन्नको गीला करता है और अपनी शक्तिसे कफ के दूसरे स्थानों को भी जल-कर्म द्वारा सहायता देता है। मतलब यह है—क्लेदन कफ अन्न को भिगोता है, इसलिये इकट्ठा हुआ अन्न अलग-अलग हो जाता है। कफ हृदय आदि अन्य स्थानोंमें जाकर, उन-उन स्थानों में हृदय का अवलम्बन करना, त्रिक-संधारण, रस ग्रहण करना, सम्पूर्ण इन्द्रियों का तृप्त करना और सन्धियोंको जोड़ना इत्यादि में जल कर्मों से सहायता करता है।

अवलम्बन कफ—रस युक्त वीर्य से हृदय के भाग का अवलम्बन, और त्रिक* नामक हड्डी को संधारण करता है।

* त्रिकहड्डी—मस्तक और दोनों भुजाओं की सन्धि को "त्रिक" कहते हैं।

रसन-कफ---रसना और रसन-कफ--ये दोनों सौम्यगुण-युक्त हैं। दोनों पास रहते हैं। इस कारण रसना--जीभ और रसन* कफ-- ये दोनों रस को जानते हैं।

स्नेहन कफ--यह चिकनाई देकर सारी इन्द्रियोंको तृप्त करता है।

श्लेष्मण कफ---सब सन्धियों यानी जोड़ों को अच्छी तरह जोड़ता है।

कफ कोप के लक्षण।

बिना खाये ही पेट भरासा जान पड़े, ऊँघ और नींद अधिक आवे, देह भारी रहे, आलस्य मालूम हो, मुँह का स्वाद मीठा रहे, मुँह में से पानी गिरे, बारम्बार कफ थूके, डकार आवें, पाख़ाना अधिक हो, गला कफ से छ्लिसासा मालूम हो, मन्दाग्नि हो, शरीर सफ़ेद हो, मल-मूत्र और नेत्र सफ़ेद रंग के हों, जाड़ा सा लगे तथा दस्त गाढ़ा हो और ढेर हो—ये लक्षण कफ-कोप के हैं।

कफ क्षय के लक्षण।

शरीर में कफ की कमी होने पर शरीरमें रूखापन हो, भीतर जलन हो, सिर सूना हो,शरीर की सन्धियाँ ढीली हो जायँ, प्यास लगे, शरीर दुर्बल हों, नींद न आवे--ऐसे लक्षण होते हैं।

कफ वृद्धि के लक्षण।

शरीर में कफ बढ़ने पर मल, मूत्र, नेत्र और सारे शरीर का सफ़ेद होना, जाड़ा लगना, भारीपन, अवसाद, तन्द्रा, निद्रा, सन्धियों का ढीलापन प्रभृति लक्षण होते हैं।

कफ के कोप का समय।

कफ शीतल पदार्थों से शीतकाल में--ख़ासकर वसन्त में, दिनके पहले भाग और रात के पहले भाग यानी सवेरे और रात के आरम्भ में तथा भोजन करते ही कुपित हो जाता है। बालकपन भी कफ का समय है ; यानी बचपन में कफ का ज़ोर रहता है।

---

* रसन कफ—कण्ठ में रहता है।

कफ कोप के कारण।

दिन में सोना, बिना मिहनत किये हर समय बैठे रहना, आलस्य करना, मीठा, खट्टा और नमकीन रस अधिक सेवन करना, शीतल, चिकने, भारी और अभिष्यन्दी* पदार्थों का सेवन, चाँवल, उड़द, गेहूँ तिल, मिट्टी के पदार्थ, दही, दूध, तिल और चाँवलों की खिचड़ी, खीर, ईख के पदार्थ, जलजीवों का मांस, चरबी, कमल की डण्डी, कसेरू, सिंघाड़े, अमरूद आदि मीठे फल, ककड़ी प्रभृति लताओं से पैदा होने वाले फल खाना, एक भोजन पचे बिना दूसरा भोजन करना, इत्यादि कफ-कोप के कारण हैं। (सुश्रुत)।

"हारीत संहिता" में लिखा है—रातको जागना, दिनमें अधिक सोना, शीतल जल का सेवन, शीतल देश का निवास, दूध, नई व्याई गायका दूध, ईख, तिल, गाजर, कन्दों के साग, मछलियों का सदा खाना, दही खाना, उड़द खाना, कफकारी और भारी पदार्थों का सेवन, घी तेल आदि चिकने पदार्थों का सेवन—वसन्त ऋतु में दुष्ट कफ को कुपित करता है। दिन के अन्तमें, प्रभात समय, रात के अन्त में, खाये हुए अन्न के पचने के पहले, कफ का कोप होता है। अगर ऐसे समय में कफ का कोप हो, तो उसे कष्टसाध्य समझो। शीतल देश में, शीतल समय में, रात के अन्त और भोजन के जीर्ण न होने में कफ का कोप होता है, यह बुद्धिमानों ने कहा है।

कफकी शान्ति के उपाय

"चरक" में लिखा है—"वैद्य को चरपरे, कसैले, तीक्ष्ण, गरम और रूखे पदार्थों से कफ की चिकित्सा करनी चाहिये। कफनाशक पसीना, वमन, शिरोविरेचन (सिर का जुलाब) कसरत, मिहनत प्रभृति क्रिया द्वारा, काल और मात्रा का विचार करके, कफका इलाज करना चाहिये। कफनाशक जितनी चिकित्सा हैं, उनमें "वमन" यानी

* जो पदार्थ अपने गाढ़ेपन और भारीपनके कारण रसके बहानेवाली नाड़ियों को रोक दे।

क़य कराना सबसे अच्छा समझा गया है; क्योंकि वमनकारक औषधि पहले ही आमाशय में घुस कर, विकार करने वाले कफकी जड़ को खींच लाती है। जब कफकी जड़ ही नष्ट हो जायगी, तब कफ के विकार भी शान्त हो जायँगे।" और स्थानोंमें लिखा है—अधिक परिश्रम, गरम दूध, स्त्री-प्रसङ्ग, गरम कपड़े पहनना, गरम पदार्थों का अधिक खाना, हाथी घोड़े की सवारी, कम जलपीना, आँखों में अञ्जन लगाना, नस्य सूँघना, वमन करना, शरीर में तेल और उबटन लगाना, ज़ियादा देर तक दाँतुन और कुल्ले करना, जल मिला कर शहद पीना, गरम जल पीना, गरम घरमें रहना, त्रिफले का सेवन करना, साँठी चाँवल, चना, मूँग, लहसुन, प्याज़, बैंगन, नीम, निशोथ और कुटकी प्रभृति आहार-विहार कफके कुपित होने पर पथ्य हैं।

दोष और धातुओं से लाभ और उनकी क्षय-वृद्धि।

शरीर के मूल।

वात, पित्त और कफ—ये तीन दोष, रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र—ये सात धातु और ग्यारहवाँ मल, ये सब शरीर के मूल हैं।

दोषों से लाभ।

वात, पित्त और कफ,—ये तीनों, पाँच प्रकारों में विभक्त होकर, शरीर का धारण करना, भोजन पचाना, सन्धियों को जोड़ना प्रभृति कर्म करते हैं। दोषों के सम्बन्ध में हम पीछे विस्तार-पूर्वक लिख आये हैं, वहीं से जानकारी हासिल करनी चाहिये।

धातुओं से लाभ।

रस तृप्ति और रुधिर की पुष्टि करता है। रुधिर वर्ण को श्रेष्ठ करता और मांस की पुष्टि करता तथा जिलाता है। मांस शरीर को पुष्ट करता और मेद का पोषण करता है। मेद यानी चरबी चिकनाहट करती, पसीना लाती, दृढ़ता करती और हड्डियों का पोषण करती है। हड्डियाँ देह को धारण करतीं और मज्जा को पुष्ट करती हैं। मज्जा प्रसन्नता, चिकनाहट, बल और वीर्य पैदा करती तथा वीर्य की पुष्टि और अस्थियों को पूरण करती है। वीर्य—शुक्र धीरता करता, स्खलित होता, आनन्द देता, शरीर में बल करता और सन्तान पैदा करने के लिये मैथुन में हर्ष उत्पन्न करता है।

मल मूत्रादि से लाभ।

मल—रुकावट करता, अपानवायु और पक्काशय की अग्नि को धारण करता है। मूत्र—बस्ति यानी पेशाव की थैली को भरता और गीली करता तथा पसीने लाता और चमड़े को गीला तथा नर्म करता है। स्त्रियों का आर्त्तव—खून के जैसा होता है और गर्भ रखता है। दूध—कुचों को मोटी करता और सन्तान की जीवन-रक्षा करता है। इन सब की अच्छी तरह रक्षा करनी चाहिये। ठीक-ठीक रक्षा न करने से, ये सब क्षीणता अथवा वृद्धि को प्राप्त होते हैं; अर्थात् घट-बढ़ जाते हैं। उस वक्त मनुष्य को अनेक उपद्रव कष्ट देते हैं।

दोष और धातुओंके क्षय होनेके कारण।

अत्यन्त संशोधन—वमन विरेचन आदि करने, मूत्र मल आदि वेगों को रोकने, संयोग-विरुद्ध भोजन करने, मन को सन्ताप होने, सख़्त मिहनत या बहुत ही कसरत-कुश्ती करने, बहुत लंघन और अति मैथुन करने प्रभृति कारणों से वातादिक दोष और रस रक्त आदि धातुओं तथा मल समूह और ओज धातु का क्षय होता है।

वायु क्षयके लक्षण।

वायु के क्षय होने से चेष्टा मन्द हो जाती है, शरीर ढीलासा हो जाता है, चित्त उदास रहता है, कामको जी नहीं चाहता, बहुत बोलना और बहुत हँसना अच्छा नहीं लगता। प्राणी थोड़ा बोलता है, थोड़ा हर्ष करता है, मूढ़-संज्ञा हो जाती है, कोई बात याद नहीं रहती।

पित क्षयके लक्षण।

पित्तका क्षय होने पर स्वल्प गरमी और मन्दाग्नि होती और कान्ति घट जाती है।

कफ क्षयके लक्षण।

कफका क्षय होने पर रुखापन, अन्तर्दाह, आमाशय तथा दूसरे आशयों और शिरमें सूनापन, जोड़ों में ढीलापन, प्यास, निर्बलता, और निद्रा-नाश यानी नींद न आना,—ये लक्षण होते हैं।

रस क्षयके लक्षण।

रसका क्षय होने पर हृदय में पीड़ा, कम्प, शून्यता और प्यास ये लक्षण होते हैं। "चरक" में लिखा है—हृदय विलोया सा हो जाता है, ज़ोर की आवाज़ अच्छी नहीं लगती, कलेजा धक-धक करता है और सूना सा मालूम होता है, ज़रा भी मिहनत करने से आँखों के आगे अंधेरा आ जाता है।

रुधिर क्षयके लक्षण।

रुधिर का क्षय होने पर चमड़ा खुरदरासा हो जाता है, खटाई खाने को मन चलता है, ठण्ड की इच्छा होती है, और नसों में ढीलापन होता है।

मांसक्षय के लक्षण।

मांसका क्षय होनेपर कमर, गाल, होठ, लिङ्ग, जाँघ, छाती, काँख, पिण्डली, पेट और गलेमें खुश्की, रूखापन और दर्द होता है; अङ्ग-प्रत्यङ्ग में थकान और धमनी नाड़ियों में शिथिलता होती है।

मेद क्षयके लक्षण।

मेद का क्षय होने पर तिल्ली का बढ़ना, जोड़ों में सूनापन और रूखापन होता है। "चरक" में लिखा है—सन्धियों का फटना, दोनों नेत्रों में ग्लानि, थकान और पेट की कृशता होती है। वाग्भट्टने—कमर का सोना, तिल्ली का बढ़ना और अङ्गोंकी कृशता लिखी है।

अस्थिक्षय के लक्षण।

हड्डियों का क्षय होने पर हड्डियों में दर्द, नाखून और दाँतों का टूटना और रूखापन होता है। वाग्भट्टने लिखा है—हड्डियों में चबके चलते हैं, दाँत, बाल और नाखून आदि गिरते हैं। चरकने लिखा है—बिना अवस्थाके केश, लोम, नाखुन, मूँछ, हड्डी और दाँत गिरते हैं; भ्रम और जोड़ों में ढीलापन होता है।

मज्जाक्षय के लक्षण।

मज्जा का क्षय होने पर वीर्य की कमी, जोड़ों में दर्द और हाड़ों में

पीड़ा तथा सूनापन होता है। "चरक" में लिखा है—हड्डियाँ गिरने लगती हैं और दुर्बल तथा हलकी हो जाती हैं। मज्जा क्षय वाले को सदा वायुका रोग बना रहता है। वाग्भट्टने भ्रम और अँधेरे का होना अधिक लिखा है।

शुक्रक्षय के लक्षण ।

शुक्र यानी वीर्य के क्षय होने से लिङ्ग और फोतों में दर्दसा, स्त्री-प्रसंग की सामर्थ्य का न होना, कभी देर से वीर्य निकलना, सुर्खीमाइल थोड़े वीर्य का निकलना,—ये लक्षण होते हैं। "चरक" में लिखा है—शुक्र क्षीण होने से कमज़ोरी, मुँह सूखना, पीलियासा, अवसाद, ग्लानि नपुंसकता और मैथुन के अन्त में वीर्य का न निकलना,—ये लक्षण होते हैं।

विष्ठा या मल क्षय के लक्षण ।

मलकी क्षीणता होने से हृदय और पसवाड़ों में दर्द होता है; आवाज़ करता हुआ वायु ऊपर को जाता है, कोखों में घूमता है। "चरक" में लिखा है—वायु आँतों को पीड़ित करता है, रोगी रूखा हो जाता है, वायु कोखको ऊँची करके तिरछेपन से ऊपर-नीचे घूमता है।

मूत्र क्षय के लक्षण ।

मूत्र-क्षय होने पर वस्तिस्थान यानी पेड़ू या पेशाब की थैली में दर्द या जलन होती है और पेशाब थोड़ा होता है। चरक ने लिखा है—मूत्रकृच्छ्र यानी पेशाब का जलकर थोड़ा-थोड़ा उतरना, मूत्र का रंग ख़राब होना, प्यास का लगना, मुँह सूखना—ये लक्षण होते हैं तथा मलमार्ग मल-हीन होने के कारण सूने हलके और सूखे से मालूम होते हैं।

स्वेदक्षयके लक्षण ।

स्वेद की क्षीणता यानी पसीनों की कमी होने पर रोमों की जड़ कड़ी हो जाती है, चमड़े में खुश्की आ जाती है, छूने से मालूम नहीं होता कि, कोई छूता है और पसीने नहीं आते।

आर्त्तवक्षय के लक्षण ।

स्त्रियों का आर्त्तव (मासिक ख़ून) क्षीण होने से, समय पर रजो-

दर्शन नहीं होता, अथवा देर-अबेर से होता है; खून कम गिरता और योनिमें पीड़ा होती है।

दुग्धक्षय के लक्षण।

दूध के क्षय होने से स्तन मुर्झा जाते हैं और उनमें दूध नहीं आता।

गर्भक्षीणके लक्षण।

गर्भ के क्षीण होने पर गर्भ नहीं फिरता या कम फिरता है और कुख ऊँची नहीं होती।

ओज।

"सुश्रुत" में लिखा है—रस,रक्त, मांस,मेद,अस्थि,मज्जा और शुक्र—ये सात धातु हैं—इन सातोंके सार यानी तेजको "ओज" कहते हैं,उसेही शास्त्रके सिद्धान्तसे "बल"कहते हैं। "ओज" सोमात्मक,चिकना, सफेद, शीतल,स्थिर और सर यानी फैलनेवाला,रसादि धातुओंसे अलग,कोमल, प्रशस्त और प्राणोंका उत्तम आधार है। "चरक" में लिखा है—हृदय में जो किसी क़दर पीले रङ्गका शुद्ध रुधिर—खून दिखाता है,उसीको "ओज" कहते हैं। उसके नाश होनेसे शरीरका भी नाश हो जाता है।

"सुश्रुतमें" लिखा है—ओज रूपी बल से ही मांस का सञ्चय और स्थिरता होती है। उसीसे सब चेष्टाओंमें स्वच्छन्दता, स्वर, वर्ण, प्रसन्नता तथा बाहरी और भीतरी इन्द्रियोंमें और मनमें अपने-अपने काम की उत्कण्ठा होती है; यानी ओज-बलकी शक्तिसे ही आँख देखनेका, कान सुनने का, जीभ चखने का, गुदा मल त्याग करने का काम करती है; इसी तरह शेष और इन्द्रियाँ भी अपने-अपने काम करती हैं। शरीर के प्रत्येक अवयव में यह "ओज" व्याप्त है। इसके व्याप्त न होनेसे, मनुष्योंके अङ्ग-प्रत्यङ्ग जर्ज्जरीभूत हो जाते हैं।

ओजक्षयके कारण।

चोट लगने से, क्षीणता से, क्रोध से, शोक से, ध्यान से, परिश्रम और क्षुधा से ओजका क्षय होता है। क्षीण हुआ ओज मनुष्यों की धातु प्रभृति को नष्ट करता है।

ओजक्षयके लक्षण ।

"चरक" में लिखा है—ओजका क्षय होनेसे प्राणी सदैव भयभीत रहता है, शरीर कमज़ोर हो जाता है, हर समय चिन्ता बनी रहती है, सारी इन्द्रियाँ व्यथित हो जाती हैं; शरीर कान्तिहीन, रूखा और क्षीण हो जाता है।

"सुश्रुत" में लिखा है—ओज की विकृति के तीन रूप होते हैं:—(१) पतन, (२) विगड़ जाना और (३) क्षय हो जाना।

जब ओज का पतन होता है, तब जोड़ोंमें विश्लेष, अङ्गोंका थक जाना, दोषों का च्यवन और क्रियाओं का अवरोध,—ये लक्षण होते हैं। जब ओज विगड़ जाता है,—तब शरीर का रुकना, भारी होना, वायु को सूजन, वर्ण यानी रङ्ग का बदल जाना, ग्लानि, तन्द्रा और निद्रा,—ये लक्षण होते हैं। जब ओज का क्षय होता है,—तब मूर्च्छा, मांसक्षय, मोह, प्रलाप और मृत्यु,—ये लक्षण होते हैं।

वायु की वृद्धिके लक्षण ।

चमड़ेमें सख़्ती, दुबलापन, कालापन, अङ्गोंका फड़कना, गरम आहार-विहार की इच्छा, निद्रा का नाश, बलकी कमी और मल का कड़ापन—ये लक्षण वायु-वृद्धिके हैं।

पित्त की वृद्धि के लक्षण ।

प्रत्येक चीज़ का पीला दिखाई देना, सन्ताप, शीतल आहार-विहार की इच्छा, थोड़ी नींद, मूर्च्छा, बलकी हानि, हड्डियों की कमज़ोरी, मल, मूत्र और आँखों का पीला होना—ये लक्षण पित्त-वृद्धि के हैं।

कफवृद्धि के लक्षण ।

सब चीज़ों का सफेद दीखना, शीतलता, स्थिरता, भारीपन, आलस्य, आँखोंका झिपना और नींद आना—ये लक्षण कफ-वृद्धि के हैं।

रसवृद्धि के लक्षण ।

रस की वृद्धि होनेसे जी मिचलाता और मुँह से ढेर पानी गिरता एवं राल बहती है।

रक्त वृद्धि के लक्षण।

रक्त यानी खून की वृद्धि होनेसे शरीर और आँखों में सुर्खी छा जाती है और खून से नसें भर जाती हैं।

मांस वृद्धि के लक्षण।

मांस की वृद्धि होने से कमर, कन्धे, गाल, होठ, लिङ्ग, जानु, भुजा और जाँघ—ये अङ्ग मोटे हो जाते हैं और शरीर भारी हो जाता है।

मेद वृद्धि के लक्षण।

मेद या चरबी की वृद्धि से शरीर चिकना हो जाता है, पेट और पसवाड़े बढ़ जाते हैं, श्वास और खाँसी के रोग हो जाते हैं एवं शरीरसे बदबू निकलती है।

अस्थि वृद्धि के लक्षण।

अस्थि या हड्डियोंके बढ़ने से अधिक हाड़ और दाँत पैदा होते हैं।

मज्जा वृद्धि के लक्षण।

मज्जा के बढ़नेसे सारे शरीर और आँखोंमें भारीपन होता है।

शुक्र वृद्धि के लक्षण।

शुक्र या वीर्य के बढ़ने से वीर्य्य की पथरी हो जाती है तथा मैथुनके बाद अधिक वीर्य्य गिरता है।

विष्ठा वृद्धि के लक्षण।

विष्ठा या मलके बढ़नेसे पेटमें अफारा, भारीपन होता है और नलों में शूल चलता है।

मूत्र वृद्धि के लक्षण।

पेशाब के बढ़ने से बार-बार पेशाब होता है, पेड़ू में दर्द और अफारा होता है।

पसीनों की वृद्धि के लक्षण।

पसीनों के बढ़ने से चमड़े में बदबू आती और खूजली होती है।

आर्त्तव की वृद्धि के लक्षण।

स्त्रियों के मासिक खून के बढ़नेसे शरीर टूटता, खून ज़ियादा गिरता और कमज़ोरी होती है।

दुग्ध की वृद्धि के लक्षण।

दूधके बढ़ने से कुचायें मोटी हो जाती हैं, दूध अपने-आप टपकता और तनाव का सा दर्द होता है।

गर्भ की वृद्धि के लक्षण।

गर्भके ज़ियादा बढ़ने से पेट बहुत बढ़ जाता और शरीर पर सूजन चढ़ आती है।

धातुओं की क्षय-वृद्धि जानने का उपाय।

रस कितना घटा है, वीर्य्य कितना बढ़ा है, वायुकी कितनी वृद्धि हुई है, पित्त कितना क्षीण हुआ है, इन सवालों के हल करनेका यानी धात्वादिकों की घटती-बढ़ती का ठीक परिमाण जाननेका कोई सहज उपाय नहीं है। इनकी समता जानने का अरोग्यता के सिवा और कोई उपाय नहीं है; अर्थात् जबकि मनुष्य स्वस्थ हो, शास्त्रानुसार स्वस्थता—आरोग्यताके लक्षण मिलते हों; तब हमें समझ लेना चाहिये कि, वातादि दोष, धातु और मल समान हैं; कोई घटा-बढ़ा नहीं है। और जबकि मनुष्य रोगी हो, तब बुद्धिको तकलीफ़ देकर, अनुमानसे पता लगाना चाहिये कि, क्या घटा और क्या बढ़ा है। "सुश्रुत"में कहा है—

दोषादीनां त्वं समतामनुमानेन लक्षयेत्।
अप्रसन्नेंद्रियं वीक्ष्य, पुरुषं कुशलोभिषक् ॥

अप्रसन्न इन्द्रियोंवाले पुरुषों को देखकर, चतुर वैद्य को, अनुमानसे, दोषों, धातुओं और मल-समूह की समानता का पता लगाना चाहिये। सीधे शब्दों में इस तरह समझिये,—चतुर वैद्यको रोगी को देखकर अनुमान से वातादि दोषों, रस रक्तादि धातुओं और मलों की घटती-बढ़ती का पता लगाना चाहिये। जौनसा दोष या धातु या मल घटा हुआ दीखे, वैद्य उसके बढ़ाने का उपाय करे और जो बढ़ा हुआ दीखे, उसके घटाने की चेष्टा करे। जब तक घटे-बढ़े दोषादि समान न हो जायँ, तब तक उपाय करता रहे। जब दोषादि समान हो जायँगे, तब मनुष्य स्वस्थ हो जायगा।

ज़ब मनुष्य स्वस्थ यानी नीरोग होता है, तब वात, पित्त और कफ

ये तीनों दोष; रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र ये सातों धातु और मल मूत्र आदि समान होते हैं; जठराग्नि भी सम होती है; विषम तीक्ष्ण या मन्द नहीं होती। हाज़मे की शिकायत नहीं रहती, भोजन पच जाता है, पाख़ाना-पेशाब ठीक होता है। दस्तक़ब्ज़ या पतले दस्त वगैरः की शिकायत नहीं रहती। पेशाव जलकर या थोड़ा-थोड़ा अथवा बहुत ज़ियादा नहीं होता। शरीर में आलस्य या अति चञ्चलता नहीं होती। आत्मा, इन्द्रियाँ और मन,—ये सब प्रसन्न रहते हैं।

धात्वादिकों के घटाने-बढ़ाने के लिये इशारे।

(१) अगर आप किसी दोष को घटा हुआ देखें, तो जिसको घटा हुआ देखें, उसी के बढ़ानेवाले आहार-विहार आदि रोगी को बतावें।

(२) अगर आप रस रक्त आदि किसी धातु को घटी हुई देखें, तो जिसको घटी हुई देखें, उसी के बढ़ाने के उपाय रोगी को बतावें।

(३) स्वेद या पसीनों की क्षीणता देखें, तो आप तेल उबटन लगवावें और स्वेद-कर्म की व्यवस्था करें। आर्त्तव की क्षीणता में शोधन करें और गरम पदार्थों को काम में लावें। अगर छातियों में दूध कम हो गया हो, तो कफ बढ़ाने वाले पदार्थ सेवन करावें। अगर गर्भक्षीण हो, तो आप चिकने और स्वादु भोजन बतावें और हो सके तो गर्भाशय में दूध की वस्ति का प्रयोग करें यानी दूध की पिचकारी लगावें।

(४) दोषों और धातुओं तथा मलों की वृद्धि देखें, तो जिसकी वृद्धि देखें, जिसको बढ़ा हुआ देखें उसे आप यथाविधि शोधन करके इस तरकीब से घटावें कि, जितना बढ़ा हो उतना घट जाय; ऐसा न हो कि, बहुत ही घट कर उलटा क्षय हो जाय। बढ़े हुए को घटाना मुनासिब है; क्योंकि पहली-पहली धातु बहुत अधिक बढ़ जाने से अगली-अगली को बढ़ाती है। जैसे; रस बहुत बढ़ जाता है, तो रक्त को बढ़ाता है। रक्त बहुत बढ़ जाता है, तो मांस को बढ़ाता है। इसी तरह मांस मेद को, मेद अस्थि को और अस्थि मज्जा को और मज्जा वीर्य्य को बढ़ाती है।

वीर्य, रुधिर, गर्भिणी का किया हुआ भोजन, उसकी चेष्टा और गर्भाशयके भीतर जो दोष अधिक हो, उस दोषके अनुसार समस्त मनुष्यों की प्रकृतियाँ होती हैं। मनुष्यों की प्रकृतियाँ सात प्रकार की होती हैं।

सात प्रकार की प्रकृतियाँ।

(१) वात-प्रकृति।
(२) पित्त-प्रकृति।
(३) कफ-प्रकृति।
(४) वातपित्त-प्रकृति।
(५) वातकफ-प्रकृति।
(६) पित्तकफ-प्रकृति।
(७) वातपित्तकफ-प्रकृति।

वात प्रकृति के लक्षण।

वात प्रकृतिवाला मनुष्य जागनेवाला, थोड़े बालोंवाला, फटे हुए हाथ-पाँववाला, दुर्बल, जल्दी चलनेवाला, अधिक बोलने वाला, रूखे शरीरवाला और सुपनेमें आकाशमें चलनेवाला होता है; अर्थात् जिसकी प्रकृति वात की होती है, उसमें उपरोक्त चिह्न होते हैं। (भावप्रकाश)

वाग्भट्टने लिखा है—वात प्रकृति वाला पुरुष दुष्ट-स्वभाव होता है। उसके बाल धूसर रङ्ग के होते हैं, शरीर फटा हुआ होता है, उसे शीत अच्छा नहीं लगता, उसकी धृति, स्मृति, बुद्धि और चेष्टा चञ्चल होती

हैं तथा मैत्री, दृष्टि और चाल में भी चञ्चलता होती है। वह बहुत बोलने वाला होता है। इस प्रकृति वाले में पित्त कम होता है। वह कमज़ोर होता है, उम्र कम होती है, नींद कम आती है, हकला कर बोलता है, नास्तिक होता है, अधिक खानेवाला और विलासी होता है; गाने, हँसने, शिकार खेलने और झगड़ा करने में उसकी रुचि अधिक होती है। मीठे, खट्टे, चरपरे और गरम पदार्थ उसके अनुकुल होते हैं। उसका शरीर दुर्बल और लम्बा होता है। उसके पानी वगैर: पीते समय आवाज़ होती है। वह मज़बूत, जितेन्द्रिय, उत्तम, स्त्रियों का प्यारा और अधिक सन्तान वाला नहीं होता। उसकी आँखें रूखी, किसी क़दर धूमली, गोल और असुन्दर अथवा मुर्देकी सी होती हैं, जो सो जाने पर भी खुली रहती हैं। स्वप्न में वह पहाड़, वृक्ष और आकाशमें चलता है। वह भाग्यहीन और दूसरे को देखकर जलने वाला और चोर होता है। इस प्रकृतिवाले का स्वर और रूप कुत्ता, गीदड़, ऊँट, गिज्जे, चूहा, कव्वा और उल्लू के समान होता है।

"चरक" में लिखा है—वायु के रूक्ष गुण के कारण इस प्रकृतिवाले का शरीर रूखा और दुर्बल, स्वर रूखा और क्षीण तथा जर्ज्जर होता है। इसे नींद नहीं आती। वायु के लघुत्व-गुण के कारण इसकी चाल चेष्टा, आहार और व्यवहार हलके और चपल होते हैं। वायु के चलत्व गुणके कारण शरीरके जोड़; हड्डी, भौं, ठोड़ी, होंठ, जीभ, मस्तक, कन्धे और हाथ पैर मज़बूत नहीं होते। वायु के बहुत्व से यह बहुत बोलने वाला होता है। इस के शरीर पर नस ही नस दिखाई देती हैं। वायु के शीघ्रत्व के कारण इसे क्षोभ, उद्योग और विकार तथा त्रास, रोग और वैराग्य जल्दी होता है। ज़रासी देर में ज्ञानवान और ज़रासी देर में ज्ञानको भूल कर मूर्ख हो जाता है। वायुके शीतल होनेके कारण सर्दीको बर्दाश्त नहीं कर सकता। शीत, कफ, स्तम्भ जल्दी ही होते हैं। वायुके कठोर गुणके कारण इसके बाल, मूँछें, रोएँ, नाख़ून, दाँत और मुँह तथा हाथ पैर सारे अङ्ग कड़े होते हैं।

सब अङ्ग फटे से होते हैं। चलते समय जोड़ोंसे आवाज़ निकलती है। इस प्रकृतिवाला बलहीन, कम-उम्र, कम औलादवाला और दरिद्री होता है।

"हारीत-संहिता"में लिखा है—जिसका रङ्ग काला हो, शरीर बहुत दुबला हो, चपल हो, बाल थोड़े हों, बलवान और समर्थ हो, दाँत बहुत ही छोटे-छोटे हों, बहुत बोलनेवाला हो, चलने-फिरनेमें समर्थ हो, बहुत कूदनेवाला हो, लोभी हो, सत्वगुण-रहित हो, खट्टे रसको पसन्द करता हो, पसीनों और मालिशसे जिसे सुख होता हो,—वह वात प्रकृतिवाला होता है।

पित्त प्रकृति के लक्षण।

जिसके बाल बेसमय सफेद होगये हों, शरीर का रङ्ग गोरा हो, स्वभाव क्रोधी हो, पसीने ज़ियादा आते हों, खूब चतुर हो, बहुत खाता हो, आँखें लाल रहती हों, स्वप्नमें आग, बिजली, सूर्य प्रभृति पदार्थों को देखता हो—ऐसे लक्षणवाला मनुष्य पित्त-प्रकृति होता है। (भावप्रकाश)

जिसको भूख-प्यास बहुत लगती हो, जिसका अङ्ग गोरा और गर्म हो, हाथ पाँव मुँह का रङ्ग लाल हो, बाल पीले और रोएँ थोड़े हों, शूर और अत्यन्त मानी हो, फूल और चन्दनादिके लेपको चाहता हो, पवित्र और अच्छे चालचलन वाला हो, अपने अधीन रहनेवालों पर दया करता हो ; वैभव, साहस और बुद्धिबल-युक्त हो ; डरे हुए दुश्मनकी भी रक्षा करनेवाला हो ; स्मरण-शक्ति पूरी हो ; स्त्री-गमन न करता हो ; अल्प वीर्य और कामदेव वाला ; पानी की चलती हुई लहर के समान कान्तिवाला; मीठे, कड़वे, कसैले और शीतल अन्नमें रुचि रखनेवाला ; धर्मसे द्वेष रखनेवाला ; बहुत पसीने वाला ; शरीरमें बदबू आती हो; अधिक क्रोधी; अधिक ईर्षावाला; अधिक खाने वाला ; अधिक मल त्यागनेवाला ; स्वप्नमें कनेर ढाक प्रभृति के फूल ; जलती हुई दिशा ; उल्कापात ; बिजली, सूर्य और अग्नि को देखनेवाला मनुष्य पित्त-प्रकृति होता है। इसकी आँखों की पुतलियाँ पीली होती हैं। इसे सर्दी

पसन्द होती है। सूर्यकी चमक, शराब, और क्रोध से इसकी आँखें लाल हो जाती हैं। इस प्रकृतिवाला पुरुष विद्वान्, मध्यम आयु-वाला, बलवान और क्लेश से डरनेवाला होता है। पित्त प्रकृतिवा-लोंका स्वभाव बाघ, रीछ, बन्दर, बिलाव और भेड़िया—इन जानवरोंसे मिलता है।

"चरकमें" लिखा है—पित्त प्रकृतिवालोंको गरमी बर्दाश्त नहीं होती। इनका शरीर कोमल और साफ होता है। शरीरमें झाँई, तिल और खुजलीकी अधिकता होती है। डाढ़ी, मूँछ, रोम और बाल प्रायः नर्म, छोटे और भूरे होते हैं, इनकी छाती, बग़ल, मुँह, और मस्तक तथा सारे शरीर में सड़ी-सड़ी दुर्गन्ध आती है। ऐसे पुरुष मध्यबली, मध्यायु और ज्ञानवान तथा धनवान होते हैं।

"हारीतसंहिता"में लिखा है—जिसका रङ्ग गोरा हो या पीला रङ्ग सफ़ेदी से मिला हो, नाज़ुक हो, प्रीति रखनेवाला हो, शीतल पदार्थों पर जिसका मन चलता हो, जिसके नेत्र पीले-पीले से हों, स्वभाव तेज़ हो, मगर तेज़ी थोड़ी देर रहती हो, शरीर पर बाल थोड़े हों, चञ्चलता अच्छी लगती हो, कड़वे रसको खानेवाला हो, अपनी तारीफ़ चाहनेवाला हो इत्यादि लक्षण जिसमें हों उसे पित्तप्रकृतिवाला समझो।

कफ प्रकृतिके लक्षण।

कफ का स्वरूप चन्द्रमाके समान है, इसलिये कफ-प्रकृतिवाला मनुष्य सौम्य होता है। इसकी सन्धि, हड्डी और मांस आपसमें मिले हुए, चिकने और गूढ़ होते हैं। यह भूख प्यास दुःख और क्लेश से घबराता नहीं तथा बुद्धिमान, सतोगुणी और वचन पालनेवाला होता है। इसके शरीरका रङ्ग प्रियंगू, दूब, मूँज डाभ, गोलोचन, कमल और सोनेके समान होता है। इसकी भुजाएँ लम्बी, छाती चौड़ी और पुष्ट तथा कपाल बड़ा होता है। बाल घने और काले होते हैं; अङ्ग कोमल, शरीर समान और सुन्दर होता है। इसमें ओज यानी सामर्थ्य अधिक होती है। यह शृङ्गार रसमें मग्न रहता है। इसके पुत्र

और नौकर बहुत होते हैं। यह धर्मात्मा, कठोर वचन न बोलनेवाला, चुपचाप शत्रुके साथ बहुत दिनों तक वैर रखनेवाला होता है। यह मदोन्मत्त हाथीके समान होता है। इसकी आवाज़ बादल, समुद्र, मृदङ्ग और शङ्ख के समान होती है। इसकी याद्दाश्त अच्छी होती है। यह नम्र और उद्योगी होता है तथा बाल्यावस्थामें बहुत कम रोनेवाला और चपलताहीन होता है। कड़वे, कसैले, तीक्ष्ण, गरम, रूखे और अल्प भोजन करनेवाला होता है; तिसपर भी बलवान होता है। आँखोंके कोनोंमें ललाई होती है। आँखें चिकनी, बड़ी, लम्बी और स्पष्ट होती हैं। इसके पलक अधिक और सफ़ेद तथा काले-काले होते हैं। इसको क्रोध और क्षुधा कम होती है। यह बुद्धिमान, काम करने में देर करने वाला, मनोहर बोलनेवाला, क्षमावान, निद्रालु, लोभहीन और पराया ऐहसान माननेवाला होता है। इसका हृदय गम्भीर और छाती चौड़ी होती है, स्वभाव सरल होता है। यह विद्वान्, लजीला, गुरुभक्त और प्रेम को स्थिर रखनेवाला होता है। यह स्वप्न में कमल, चकवा-चकई पक्षियों के पंक्तियुक्त जलाशयों को देखता है। कफ-प्रकृतिवाला विष्णु, इन्द्र, रुद्र, वरुण, गरुड़, अग्नि, हंस, हाथी, सिंह, घोड़ा, गाय और बैल के से स्वभाववाला होता है।

"चरक" में लिखा है—कफ-प्रकृतिवालों का शरीर चिकना, दीखने में सुखदाई, नाज़ुक और साफ होता है। इसके वीर्य बहुत होता है और यह अधिक मैथुन करता है। इसके सन्तान बहुत होती है। इस का शरीर परिपुष्ट होता है, किन्तु आहार और चेष्टा मन्द होते हैं इत्यादि। यह मनुष्य बलवान, धनवान, विद्वान्, ओजवाला और आयुवाला होता है।

"हारीत संहिता" में लिखा है—जिसका रङ्ग सुन्दर चिकना और श्याम हो, नेत्र सफेद हों, बाल सुन्दर हों, रोम और नख लम्बे हों, गम्भीर बोलनेवाला हो, ऊँघना सोना और पढ़ना-लिखना जिसे अच्छे लगने हों, कड़वा और चरपरा रस खानेवाला हो, शरीरमें मोटा हो,

चिकने रसको चाहता हो, गाना-बजाना पसन्द करनेवाला हो, सहन-शील, कसरती और भोगी हो--ऐसा मनुष्य कफ प्रकृतिवाला होता है।

अन्यान्य प्रकृतियोंके लक्षण।

जिसमें वात और पित्त-प्रकृति दोनोंके लक्षण हों, वह वात-पित्त प्रकृति और जिसमें वात और कफके लक्षण हों, वह वात-कफप्रकृति; इसी तरह जिसमें पित्त और कफके लक्षण हों, वह पित्त-कफ-प्रकृति होता है। इसी तरह जिसमें तीनों दोषोंके यानी तीनों प्रकृतियों के लक्षण हों, वह त्रिदोषज-प्रकृति होता है।

बहुत से आचार्य्य कहते हैं, मनुष्योंकी प्रकृति पवन, अग्नि, जल पृथ्वी और आकाश--इन पञ्च महाभूतों से बनी है। पवन वायु है, अग्नि पित्त है, जल कफ है। इस हिसाब से पवन, जल और अग्नि,—इन तीन प्रकृतियों का बयान ऊपर कर दिया गया है। पृथ्वी और आकाश-प्रकृति वाले मनुष्यों के लक्षण सुनिये—

जिनका स्वभाव स्थिर है, जिनका शरीर मजबूत है, जो क्षमाशील हैं, उनको "पृथ्वी-प्रकृति" कहते हैं।

जो शुद्ध हैं और जो बहुत दिन जीते हैं, वे "आकाश-प्रकृति" हैं।

"चरक" और "हारीत" में समप्रकृति चौथो लिखी है—जिसमें कई तरह के मिले हुए रङ्ग हों, जो खूबसूरत हो, धीर गम्भीर हो, स्त्री को चाहनेवाला हो, बोझ को सह सकनेवाला और भोगी हो; जिसमें ये सब लक्षण मिलते हों, उसे समप्रकृति वाला कहते हैं।

शुद्ध वात प्रकृति, शुद्धपित्त प्रकृति, शुद्धकफ प्रकृतिवाले आदमी बहुत ही कम मिलते हैं। मिले-जुले लक्षणोंवाले लोग बहुत देखने में आते हैं। लक्षणों के मिलाने से प्रकृति का ज्ञान हो जाता है। जैसे; किसी में कुछ वात के और कुछ पित्त के लक्षण मिलें, उसे "वातपित्त प्रकृति" समझ लो।

एक वैद्यराज ने अपने रचे हुए ग्रन्थ में लिखा है कि, शरीर का रङ्ग प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से पूर्व्वाचार्य्यों के लिखने के अनुसार नहीं मिलता,

उनकी यह बात ठीक है। चमड़े की रङ्गत पृथ्वी पर निर्भर है। यूरोप-वाले, काश्मीरवाले, शीतदेशों के रहनेवाले गोरे होते हैं। मदरासी और ऐबीसीनियावाले सभी काले होते हैं। चीनी और जापानी पीले होते हैं। जहाँ सभी गोरे और सभी काले होते हैं, वहाँ प्रकृति-परीक्षा के समय शरीर के रङ्ग का विचार करना ही वृथा है। जहाँ सब-मेलके आदमी पैदा होते हैं, वहीं रङ्ग पर ध्यान देना चाहिये।

प्रकृति की परीक्षा करना सहज काम नहीं है, इसी से आजकल हम तो किसी बड़े-से-बड़े वैद्य को रोगी की प्रकृति की जाँच करते नहीं देखते। इतनी फुरसत ही नहीं, जो इतनी पूछताछ करें। हमने ऊपर तीन-तीन ग्रन्थों से प्रकृति-लक्षण उद्धृत करके लिखे हैं। किन्तु पूरे लक्षण हमने वाग्भट्ट से ही लिखे हैं। "चरक" और "हारीत" के हमने वेही लक्षण लिखे हैं, जिनपर हमें अपने पाठकों का डबल ध्यान दिलाना है अथवा जहाँ कुछ मत-भेद है या जो कम-ज़ियादा हैं। इन लक्षणों को हृदयस्थ कर लेने और बारबार पहचानने का अभ्यास करने से प्रकृति-परीक्षा आ जायगी। चिकित्सा में इसकी बड़ी ज़रूरत है। "चरक" में लिखा है:—

> तथाबलवतिबलवद्व्याधिपरिगते स्वल्प
> बलमौषधमपरीक्षकप्रयुक्तमसाधकं भवति
> तस्मादातुरं परीक्षेत, प्रकृतितश्च विकृतितश्च
> सारतश्च संहननतश्च सात्म्यतश्च सत्त्वतश्चाहार
> शक्तिश्च व्यायाम शक्तितश्चे वयस्तश्चेति

जिस तरह हलके रोग वाले को अति बलवान दवा देना अच्छा नहीं; उसी तरह बलवान रोगवाले को कमज़ोर दवा देना अनिष्टकारक है; इसलिये रोगी की प्रकृति, विकृति, सार, शरीर, सात्म्य, सत्व, आहार-शक्ति, परिश्रम-शक्ति और अवस्था की परीक्षा करनी उचित है।

एक शंका रह गई है; वह यह कि वात, पित्त, और कफ प्रकृति के कारण हैं। ऐसी दशा में इनमें से जो दोष प्रकृत रूप से अधिक हों, वह अपने द्वारा होने वाले रोगों को उत्पन्न क्यों नहीं करते?

इसका जवाब या समाधान यह है कि, जिस तरह विष से पैदा हुआ कीड़ा विष से पीड़ित नहीं होता; उसी तरह प्रकृतिगत दोष उसी प्रकृतिवाले मनुष्यों को पीड़ित नहीं करते। इसका मतलब यह है कि, जिस तरह विष से कीड़ा मरता नहीं, परन्तु उसे दाह आदि पीड़ा किसी क़दर होती है; उसी तरह उस-उस प्रकृति वाले मनुष्यों को उस-उस प्रकृति के कारण रूपदोषों से ज्वर वगैरः ज़ोरदार बीमारी नहीं सतातीं; किन्तु हाथ पैर फूटना, बहुत पसीने आना, बहुत नींद आना प्रभृति हलकी-हलकी तक़लीफें होती रहती है। प्रकृतिगत दोष का न कोप होता है न शान्ति होती है और न वह बदलता है। वह तो मृत्युकाल तक प्रकृति के स्वभाव के अनुसारही बना रहता है।

बल-विचार

चिकित्सा बल और देश के प्रमाण की अपेक्षा करती है। अगर चिकित्सक बलकी परीक्षा किये बिना, दुर्बल रोगी को अति बलवान यानी बहुत तेज़ दवा दे दे, तो रोगी मर जाय; क्योंकि कमज़ोर रोगी बहुत तेज़, ज़ोरदार, बहुत गर्म या बहुत ठण्डी दवाको तथा अग्नि-कर्म और क्षार-कर्म को नहीं सह सकता। बहुत तेज़ दवा कमज़ोर रोगी को मार डालती है। इसलिये वैद्यको, दुर्बल रोगी हो तो मुलायम और हलकी दवा देनी चाहिये, ऐसी दवा न देनी चाहिये, जिससे दुःख हो। अगर तेज़ दवा ही देने की ज़रूरत हो, तो थोड़ी-थोड़ी देनी चाहिये, जिससे कोई उपद्रव न हो।

जिस तरह दुर्बल को बलवान दवा देना अच्छा नहीं; उसी तरह बलवान रोगीको कमज़ोर दवा देना भी ठीक नहीं है। इससे अनिष्टही होता है; रोग बढ़ जाता है। इसलिये रोगीकी बल-परीक्षा करनी ज़रूरी है। बिना बलकी परीक्षा किये कैसे जान सक्ते हैं, कि रोगी बलवान है या निर्बल, ज़ोरदार दवा सह सकेगा या कमज़ोर दवा, अग्निकर्म या क्षार-कर्म अथवा अस्त्रचिकित्सा यानी चीरफाड़ को बर्दाश्त कर सकेगा या नहीं।

"सुश्रुत"में लिखा है—बल, ओज और दुर्बलताकी परीक्षा करनी चाहिये; यानी यह देखना चाहिये कि, यह दुर्बलता रोगीके स्वभावसे है या किसी रोगसे हो गई है अथवा बुढ़ापेसे हो गई है, अथवा चिन्ता और फिक्रसे हुई है। क्योंकि बलवानको ही दवा और आहार आदि पचते और लाभ पहुँचाते है, इसलिए सब आधारोंमें बलही प्रधान है।

बहुतसे दुबले बलवान होते हैं और बहुतसे मोटे निर्बल होते हैं। इसलिए वैद्योंको, चित्त स्थिर करके, मिहनतके साथ बलकी परीक्षा करनी चाहिये।

"चरक"में लिखा है,"चिकित्सक रोगीका शरीर देखकर धोखा न खावे। रोगीको हृष्ट-पुष्ट समझकर बलवान न समझ ले, दुबला-पतला देखकर दुर्बल न समझ ले; अनेक मोटे निकम्मे और दुबले बलवान देखनेमें आते हैं। चींटी दुबली पतली और छोटी होती है, मगर अपने शरीरसे दूना बोझा ढो ले जाती है। इससे साबित होता है कि असल चीज़ सार है: इसलिए सारकी परीक्षा करनी चाहिये।

सार परीक्षा।

बल-परीक्षा करनेके लिए चरकमें आठ प्रकार के सारों की व्याख्या की है। उन सारों की परीक्षा करनेसे बलकी यथार्थ परीक्षा होती है। आठ प्रकार के सार ये हैं:—

(१) त्वचा (चमड़ा), (२) रुधिर (ख़ून), (३) मांस, (४) मेद, (५) अस्थि (हड्डी), (६) मज्जा, (७) शुक्र (वीर्य्य), और (८) सत्व।

त्वकसार।

पुरुष का चमड़ा चिकना, पतला, नर्म, प्रसन्न, सूक्ष्म, नाज़ुक, रोमाञ्च और कान्तियुक्त होता है। त्वकसार एक गुण होने के कारण, यह प्राणी सुखी, सौभाग्यशाली, ऐश्वर्य्यवान, भोगी, बुद्धिमान, विद्वान्, निरोग, मज़बूत और दीर्घायु यानी बड़ी उम्रवाला होता है।

रक्तसार।

पुरुषके कान, नेत्र, मुँह, जीभ, नाक, होठ, हाथ पैरके नाख़ून, ललाट और लिङ्ग—ये लाल, शोभायुक्त और दीप्तिवान होते हैं। ऐसा पुरुष सुखी और उन्नतिशील होता है, तथा मेधावी (चतुर, समझदार, विद्वान्), मनस्वी (दाना, पण्डित) सुकुमार (नाज़ुक), मध्य बल-वाला और तकलीफ़ बर्दाश्त करने की सामर्थ्य वाला होता है।

मांससार

पुरुषकी कनपटी, ललाट, गर्दनका पिछला हिस्सा, नेत्र, गाल,

ठोड़ी, गर्दन, कन्धे, बग़ल, छाती, हाथ, पैर और शरीर के जोड़—ये सब मांसल और मज़बूत होते हैं। यह पुरुष क्षमावान्, धीरजवान्, निर्लोभी, धनी, विद्वान्, सुखी, नम्र, निरोगी, बली और दीर्घायु होता है।

मेदसार

पुरुषके वर्ण (रंग), आवाज़, नेत्र, बाल, रोम, नाख़ून, दाँत, होठ, मल और मूत्र ये विशेष करके चिकनाहट लिए हुए होते हैं। यह पुरुष धनी, ऐश्वर्य्यशाली, सुख-भोगी, दाता, सरल-स्वभाव और सुशील होता है।

अस्थिसार

पुरुषकी एड़ी, टख़ने, घोंटू, कलाई, हँसली, मस्तक, सारे जोड़, नाख़ून और दाँत,—ये सब स्थूल होते हैं। यह पुरुष महा उद्योगी, तरह-तरहके काम करनेवाला, क्लेश सहनेवाला, मज़बूत शरीरवाला और आयुवाला होता है।

मज्जासार

पुरुषका शरीर पतला और बलवान् होता है। इसका स्वर और वर्ण ये चिकने होते हैं। इसकी सारी सन्धियाँ स्थूल, लम्बी और गोल होती हैं। यह दीर्घायु होता है।

शुक्रसार

पुरुष ज्ञानी, धनी और पुत्रवान होते हैं; सम्मान-योग्य, सौम्य, सुन्दर और ख़ूबसूरत होते हैं। नेत्रोंमें दूधसा भरा हुआ दीखता है और उनके अन्दरसे प्रसन्नता की आभा झलकती है, समान और सुडौल शरीर तथा दन्त-पंक्ति पर्वत-शिखर की पंक्तिके समान होती है; वर्ण, और स्वर प्रसन्न और स्निग्ध होते हैं; चेहरे पर दीप्ति होती है; चूतड़ भरे हुए होते हैं; ऐसे पुरुष स्त्रियोंके प्यारे, कमनीय और बलवान होते हैं।

सत्वसार

पुरुष ऐश्वर्य्य-सम्पन्न, आरोग्य, सम्मान-योग्य, सन्तानवाले, स्मरण-शक्ति-सम्पन्न, भक्ति रखनेवाले, कृतज्ञ यानी पराया ऐहसान मानने वाले, विद्वान्, पवित्र, उत्साही, चतुर, धीर, समय पर पराक्रम के साथ युद्ध करनेवाले, विषाद-रहित यानी प्रसन्न-चित, गम्भीर-बुद्धि और कल्याण चाहने वाले होते हैं।

सकलसार

युक्त पुरुष अति बलवान, अति गौरव-युक्त, कष्ट सहनेवाला, सभी कामोंको आप कर डालनेकी आशा करनेवाला, कल्याणकारी विषयोंमें मन लगानेवाला, मज़बूत शरीरवाला और स्थिर गतिवाला होता है। इसका स्वर स्निग्ध—चिकना, गम्भीर, बड़ा और गूँजनेवाला होता है। यह पुरुष सुखी, ऐश्वर्य्यवान्, धनका भोगनेवाला और सम्मान का पात्र होता है। सकलसार वालेको बुढ़ापा देरसे आता है और रोग भी जल्दी-जल्दी नहीं होते ; अगर होते भी हैं, तो थोड़े होते हैं। इसकी सन्तान इसीके समान गुणवाली होती है।

जो इन लक्षणोंके विपरीत लक्षणवाला होता है, उसे "असार" कहते हैं। जिसमें मध्य लक्षण हों, उसे "मध्यसार" कहते हैं। इस तरह पुरुषोंके बलका प्रमाण जाननेके लिए आठ सार कहे हैं।

शरीरका सुघाट

या गठन देखकर भी बल जाना जा सकता है। जिसकी हड्डियाँ समान हों, जोड़ सब सुबद्ध हों, मांस और खून भरा हुआ हो, उसे सुसंहत शरीरवाला कहते हैं। ऐसा पुरुष बलवान होता है। इसके विपरीत लक्षणवाला दुर्बल और बीचके लक्षणवाला मध्यबली होता है।

सत्वविचार

बहुतसे मनुष्य डील-डौल और गठन-वग़ैर से बलवान दीखते हैं, मगर वह कष्ट ज़रा भी नहीं सह सकते। ज़रासी चीरफाड़ करने या

मामूली फोड़ेमें नश्तर लगाते समय हाय तोबा करके ज़मीन-आस्मान को एक कर देते हैं। इसका क्या कारण है? ऐसे लोगों का शरीर तो मज़बूत दीखता है, मगर इनका मन कमज़ोर होता है। जिनका शरीर दुबला-पतला होता है, किन्तु मन बलवान होता है; वह बड़े-बड़े कष्टोंको सह लेते हैं और उफ़ नहीं करते। इसलिये रोगीके सत्व या मनकी भी वैद्यको परीक्षा करनी चाहिये।

"चरक"में लिखा है—सत्व "मन" को कहते हैं। आत्माके साथ मन का संयोग होनेसे "मन" शरीरका पालन-पोषण करता है। सत्व या मन बलभेदके कारणसे तीन प्रकार का होता है:—(१) उत्तम, (२) मध्यम, और (३) अधम।

प्रवर-सत्ववाला प्राणी निज और आगन्तु कारणोंसे हुई घोर पीड़ाओंमें भी नहीं घबराता; क्योंकि उसमें सत्व गुण होता है। "सुश्रुत" में लिखा है,—सत्ववान मनुष्य, जिसमें सतोगुणकी अधिकता होती है, अपने मनको कड़ा करके सब सह लेता है।

मध्यम-सत्ववाला (रजोगुण-प्रधान मनुष्य) दूसरोंकी देखा-देखी, या दूसरोंके साहस दिलाने या सहायता करने से पीड़ा को सह लेता है।

अधम-सत्व या हीन-सत्ववाला (तमोगुण-प्रधान मनुष्य) न तो आप धीरज धरता है और न दूसरोंकी सहायतासे धैर्य्य धरता है। ऐसा मनुष्य किसी तरह भी दुःखको चुपचाप नहीं सहता। ऐसे आदमीका डील-डौल देखनेका ही होता है। भय, शोक, अभिमान, लोभ और मोह ऐसे मनुष्यके साथी होते हैं। हीन-सत्व मनुष्य युद्ध की बात सुनने मात्रसे, किसीके शरीरसे खून गिरते देखकर अथवा सिंह, व्याघ्र वनमानुष प्रभृतिको देखकर बेहोश हो जाते हैं; अथवा उनके चेहरेका रङ्ग उतर जाता है।

सात्म्य विचार।

चिकित्सामें जिस तरह और परीक्षाओंकी ज़रूरत है, उसी तरह

सात्म्य-परीक्षा की भी ज़रूरत है। सात्म्य-परीक्षासे हमें रोगीका बलाबल, उसकी प्रकृति तथा और भी अनेक बातें मालूम हो सकती हैं।

"सुश्रुत" में लिखा है—देश, काल, ऋतु, रोग, मिहनत, जल, दिनमें सोना और रस प्रभृति जो रोगीकी प्रकृतिके विरुद्ध न हों, रोगीको नुक़सान पहुँचाने वाले न हों, रोगीके मिज़ाजके मुआफ़िक़ हों—उन्हें "सात्म्य" कहते हैं। जिन पदार्थोंके सेवनसे रोगीको सुख हो, वही उसके लिए सात्म्य या मुआफ़िक़ हैं।

"चरक" में लिखा है, जिसके निरन्तर सेवन करनेसे उपकार मालूम हो, उसको 'सात्म्य' कहते हैं।

जिन प्राणियोंको घी, दूध, तेल, मांस-रस और छहों प्रकारके रस सात्म्य यानी सुखकारी होते हैं, वे लोग बलवान्, कष्ट सहनेवाले और दीर्घायु होते हैं।

जो लोग सदा रूखे पदार्थ सेवन करते हैं, जिन्हें एकही रस सात्म्य या मुआफ़िक़ होता है, वह प्रायः अल्पबली—कमज़ोर और तकलीफ को न सह सकनेवाले और अल्पायु होते हैं।

जिन लोगोंको अलग-अलग रस सात्म्य न हों; यानी जिन्हें अलग-अलग रसोंके सेवन करनेसे सुख न होता हो, कुछ तकलीफ होती हो, किन्तु मिले हुए रस सात्म्य यानी मुआफ़िक़ हों, वह मध्यबली होते हैं।

देह विचार।

देह की परीक्षा में वैद्य को यह देखना चाहिये कि, शरीर मोटा है या दुबला, यथा-योग्य है या विकृत। जो वैद्य इन बातोंका विचार नहीं करते, वे धोखा खाते हैं। मोटे और दुबले दोनों ही सदा रोगग्रस्त रहते हैं; किन्तु दुबलेसे तो कहीं-कहीं पार पड़ जाते हैं, मगर मोटे के इलाज में बड़ी हैरानी होती है; विशूचिका जैसे रोगोंमें तो सफलता कोसों दूर भागती है। दुबले में बल, पुरुषार्थ और कष्ट सहने की क्षमता नहीं होती; उसी तरह मोटे देखने केही मोटे होते हैं। मोटे के प्रायः सभी रोग बलवान होते हैं। "चरक"

में लिखा है—आठ तरह के पुरुष बुरे समझे जाते हैं (१) बहुत लम्बा, (२) बहुत ठिंगना, (३) बहुत बाल वाला, (४) बिल्कुल केश-रहित, (५) बहुत काला, (६) बहुत ही गोरा, (७) बहुत मोटा और (८) बहुत दुबला।

मोटा आदमी।

"सुश्रुत" में लिखा है—शरीर का मोटापन और दुबलापन "रस" के कारण से होता है। जो लोग कफकारक और क्षार-रहित पदार्थ सेवन करते हैं, एक भोजन के बिना पचे दूसरा भोजन कर लेते हैं, दिन-रात सोकर या बैठकर गुज़ारते हैं, मिहनत नहीं करते; और दिनमें सोया करते हैं—ऐसे लोग मोटे हो जाते हैं।

बहुत ही मोटापन अति तर्पण, भारी, मीठे, शीतल और चिकने पदार्थोंके सेवन, मिहनत न करने, स्त्री-प्रसंग न करने, दिनमें सोने, चिन्ता न करने और पैतृक स्वभाव प्रभृति कारणोंसे होता है।

आयुर्वेद के मत से बहुत मोटा और बहुत दुबला बुरा समझा जाता है। बहुत मोटे आदमी की आयु थोड़ी होती है। उसे बे-समय में बुढ़ापा घेर लेता है। शरीर के छोटे-छोटे छेद रुक जाते हैं। स्त्री-सङ्ग में तकलीफ़ होती है। कमज़ोरी, बदबू, पसीने, बहुत भूख और प्यास—ये लक्षण होते हैं। मेद सहसा बढ़कर वात, पित्त और कफके अनेक रोग पैदा करके प्राण नाश करती है। मेद और मांसके बहुत बढ़नेसे चूतड़, पेट और स्तन ये हलर-हलर हिलते हैं।

मेदस्वी या मोटे आदमीकी खाली मेद ही बढ़ती है और धातुयें नहीं बढ़तीं; इसीसे मोटा आदमी जल्दी मर जाता है। शरीर की शिथिलता, सुकुमारता, भारीपन आदिसे मोटेको बुढ़ापा घेर लेता है और रोमछिद्र रुक जाते हैं। वीर्य की कमी और चरबी द्वारा मार्ग ढक जानेसे स्त्री-सङ्ग में अत्यन्त कष्ट होता है। धातुओंकी समानता न होनेसे कमज़ोरी; मेदेके दोष और स्वभाव से बदबू; कफके संसर्ग से स्थूलता और परिश्रम न सह सकने के कारण पसीने बहुत आते हैं। अग्नि की तीक्ष्णता और कोठों की वायु की अधिकता से भूख और प्यास बहुत लगती है। मेद यानी

चर्वीसे राहोंके बन्द होजानेके कारण, वायु ज़ियादातर कोठेमें ही घूमता है और अग्नि को तेज़ करकेआहार कोसुखा देता है। इसीसे मेदस्वी या मोटे का जल्दी खाना पच जाता है और वह बारम्बार खाना चाहता है। अगर खाना मिलनेमें ज़रा भी देर होती है, तो घोर रोगोंमें फँस जाता है। मोटे आदमी के पेटमें आग और हवा उसी तरह ऊधम मचाते हैं; जैसे दावानल वनमें ऊधम मचाकर वनको भस्म कर देता है।

क्योंकि खाये हुए भोजन-पान का रस, बिना पके ही, अत्यन्त मीठा होकर शरीरमें चरबी या मेद पैदा करता है। उस मेद या चरबी के कारण से ही मनुष्य मोटा या स्थूल हो जाता है।

स्थूल-शरीर या मोटे आदमी को क्षुद्र श्वास, प्यास, क्षुधा, निद्रा, शरीर में बदबू, कण्ठसे घर-घर शब्द निकलना, अङ्गों में थकान आना प्रभृति उपाधियाँ घेर लेती हैं। मेदकी कोमलताके कारण मोटा आदमी सब कामोंमें अशक्त रहता है। कफ और मेदसे शुक्र-मार्ग रुक जाते हैं; इसलिये मोटा आदमी बहुत ही थोड़ा मैथुन कर सकता है। कफ और मेद से दूसरे रास्ते भी ढक जाते हैं; इसलिये अस्थि, मज्जा और शुक्र ये धातु भी नहीं बढ़ने पाते; इसीलिये मोटे आदमी में बल नही होता।

बहुत मोटा आदमी प्रमेह, पिड़िका, ज्वर, भगन्दर, विद्रधि अथवा किसी वायु-रोग में गिरफ्तार होकर यमसदन का राही होता है। मोटे आदमी के स्रोत या धातु बहने के रास्ते मेद से ढके रहते हैं; इस कारण से मोटे आदमी के प्रायः सभी रोग बलवान हो जाते हैं।

प्रत्येक मनुष्य को ऐसा उपाय करते रहना चाहिये, जिससे शरीर बीच की अवस्था का बना रहे; बहुत मोटा या दुर्बल न हो जाय। वैद्य को चाहिये कि मोटे शरीर को "कर्षण* चिकित्सा" द्वारा दुर्बल करे और दुर्बल शरीर को "बृहण* चिकित्सा" द्वारा मोटा करे। "चरक"में लिखा है, वैद्य लङ्घन और बृहण से चिकित्सा करे।

---

* स्नान, उबटन, नींद, घी, चीनी प्रभृति बृहण करने वाले हैं। कड़वे, कसैले, चरपरे रस का सेवन, अति स्त्री-प्रसङ्ग, माठा और मधु,—कर्षण करने वाले हैं।

मोटे आदमियों की मुटाई कम करने के लिये शिलाजीत, गूगल, गोमूत्र, त्रिफला, लोहचूर्ण यानी भस्मसार, रसौत, शहद, जौ, मूँग, कोदों एवं कूटू प्रभृति रूखे और दुबले करने वाले पदार्थ यथा-विधि सेवन कराने चाहियें। मोटे से दुबले करने वाले जितने उपाय हैं, उन में कसरत या मिहनत सर्व्वश्रेष्ठ है। "चरक" में लिखा है :—वातनाशक, कफमेद-हारक अन्नपान, रूखे उबटन, गिलोय और भद्रमोथे का काढ़ा, त्रिफले का काढ़ा, छाछ, वायविडङ्ग, सोंठ, जवाखार, मधु, जौ, आमलों का चूर्ण प्रभृति मुटाई नाश करने में हितकारी हैं। जिसे मुटाई नाश करनी हो, वह जागरण, स्त्री प्रसङ्ग, चिन्ता और परिश्रम आरम्भ करे और धीरे-धीरे बढ़ावे।

दुबला आदमी।

"चरक" में लिखा है—रूखा अन्नपान, लङ्घन, अल्प भोजन, अति परिश्रम या अति संशोधन (जुलाब वगैरः), शोक, मलमूत्र आदि का रोकना, जागना, रूखे पदार्थों का उबटन, स्नानका अभ्यास न होना, बुढ़ापा, क्रोध और सदा रोग का बना रहना—ये सब कारण कृशता या दुबलेपन के हैं।

मिहनत, बहुत ही पेट भर भोजन, भूख, प्यास, ज़ियादा दवा पीना, अत्यन्त गरमी-सरदी, अत्यन्त मैथुन—इनको दुबला आदमी बर्दाश्त नहीं कर सकता। दुबले आदमी को तिल्ली, श्वास, खाँसी, क्षय, गोला, बवासीर और उदर रोग घेर लेते हैं। दुबले को संग्रहणी का रोग भी होता है।

"सुश्रुत" में लिखा है—जो मनुष्य बादी बढ़ाने वाले आहारोंका अधिक सेवन करता है, बहुत ज़ियादा मिहनत या कसरत करता है, अत्यन्त मैथुन करता है, पढ़ने-लिखने में ज़ियादा परिश्रम करता है, बहुत डरता या शोच-फ़िक्र करता है, बहुत ही ध्यान करता या रात को जागता है, भूखा रहता या थोड़ा खाता है अथवा कसैले पदार्थ अधिक खाता है—उसका रस-धातु, कम होने के कारण से, धातुओं को तृप्त नहीं

[illegible] वायु उनके बढ़ने में सहायता नहीं देता : इससे शरीर अत्यन्त दुबला या कृश हो जाता है।

बहुत दुबला मनुष्य भूख, प्यास, सरदी-गरमी, हवा और बरसात इनको बर्दाश्त नहीं कर सकता तथा बोझा भी नहीं उठा सकता। ऐसा आदमी सभी कामों में निकम्मा और वात रोगों से पीड़ित रहता है। दुर्बल मनुष्य श्वास, खाँसी, राजयक्ष्मा, प्लीहा, उदर रोग, (वातोदर प्रभृति), जठराग्नि की निर्बलता (विषमाग्नि या मन्दाग्नि), गुल्म और रक्त-पित्त—इनमें से किसी-न-किसी रोग में गिरफ़्तार होकर मर जाता है। दुर्बलता के कारण दुर्बल के भी प्रायः सभी रोग बलवान हो जाते हैं।

नींद, हर्ष, बढ़िया पलँग, सन्तोष, शान्ति, बेफ़िक्री, फ़िक्र से विरक्ति यानी अलग रहना, मिहनत न करना, प्यारों से मिलना, नया अन्न, नयी शराब, दही, घी, दूध, ईख, शालि चाँवल, उड़द, गेहूँ, गुड़ के पदार्थ, सदैव तेल लगाना, चिकने उबटन, स्नान, चन्दन लगाना, फूल-माला पहनना, सफ़ेद कपड़े पहनना, यथासमय देह का शोधन, रसायन और वृष्य योगों का सेवन—ये सब अत्यन्त दुबले को भी परम पुष्ट करते हैं। सबसे बड़ी बात "बेफ़िक्री" है। बेफ़िक्री से मनुष्य ख़ूब मोटा होता है। कहा है :—

अचिन्तनाच्च कार्याणां ध्रुवं सन्तर्पणेन च।
स्वप्नप्रसंगाच्चनरो वराह इव पुष्यति॥

किसी बात का फ़िक्र न करने; सदैव सन्तर्पण करने और सोने से आदमी सूअर की तरह मोटा हो जाता है।

जो मनुष्य रस को बढ़ानेवाले और रस को कम करनेवाले दोनों तरह के पदार्थ सेवन करता है, अथवा यों समझिये कि, न मोटे करने वाले और न पतले करने वाले साधारण आहार-विहारों को सेवन करता है अथवा बढ़िया-बढ़िया माल खाता और मिहनत (कसरत)

करता है, उसका शरीर न मोटा होता है और न दुबला होता है; मध्य शरीर बना रहता है। मध्य-शरीरवाला मनुष्य भूख, प्यास, सर्दी-गरमी, धूप-हवा, वर्षा आदि सबको सह सकता है और सभी काम कर सकता है तथा मज़बूत रहता है। मनुष्य को सदा ऐसी ही कोशिश करनी चाहिये, जिस से शरीर न तो बहुत मोटा हो और न दुबला हो। बहुत मोटा और बहुत दुबला दोनों तरह के मनुष्य ख़राब होते हैं। कहा है :—

> अत्यन्त गर्हितावेत्तौ, सदा स्थूलकृशौ नरौ।
> श्रेष्ठौ मध्यशरीरस्तु, कृशः स्थूलात्तु पूजितः ॥

बहुत [illegible] बहुत दुबला दोनों तरह के आदमी निन्दित हैं। मध्य शरीरवाला मनुष्य श्रेष्ठ है। बहुत मोटे आदमी से तो दुबला ही अच्छा होता है।

"चरक"में लिखा है :—

> स्थौल्यकार्श्ये वरं कार्श्यं, समोपकरणौ हितौ।
> यद्युभौ व्याधिरागच्छेत, स्थूलमेवाति पीडयेत् ॥

मोटापन और दुबलापन इन दोनों में दुबलापन अच्छा है। दोनों के उपकरण समान होने पर भी, अगर दोनों को रोग होता है, तो मोटे को ज़ियादा तकलीफ होती है। अरुणदत्त नामक विद्वान्ने लिखा है कि, विशूचिका प्रभृति स्वेदसाध्य रोग यदि दुबले आदमी के हों, तो साध्य हैं; अगर मोटे को हों तो असाध्य हैं; क्योंकि मोटे को स्वेदन करना मना है। इसी से अगर मोटे आदमी के स्वेदसाध्य रोग हैज़ा वगैरः हों, तो इलाज में बड़ी कठिनाई होती है।

अग्निविचार।

सुश्रुत में लिखा है, पाचक नाम की जठराग्नि चार तरह की होती हैं। एक इनमें से निर्दोष और तीन सदोष या विकारवाली होती है। जैसे :--

(१) सम, (२) विषम, (३) तीक्ष्ण, और (४) मन्द।

समाग्नि—वात, पित्त और कफ की समानता से होती है। विषमाग्नि वायु से, तीक्ष्णाग्नि पित्त से और मन्दाग्नि कफ से होती है। "हारीत-संहिता" में लिखा है—वात, पित्त और कफ के समान होने से समाग्नि होती है ; वात, पित्त और कफ के विषम (असमान) होने से विषमाग्नि होती है ; पित्त की अधिकता से तीक्ष्णाग्नि होती है और वात-कफ की अधिकता से मन्दाग्नि होती है।

समाग्नि

यह अग्नि स्वभावानुसार समय पर खाये हुए भोजन को पचा देती है। यह सब धातुओं को बढ़ाती और दोष-रहित है। समाग्नि-वाला सदा प्रसन्न, हृष्ट-पुष्ट और सचेष्ट रहता है। इसके शरीर में धातु, बल और इन्द्रियाँ समान रहती हैं। इस अग्नि की सदा रक्षा करनी चाहिये ; जिससे यह मन्द, विषम, अथवा तीक्ष्ण न हो जाय।

विषमाग्नि

यह अग्नि कभी तो भोजन को पचा देती है और कभी नहीं पचाती है। वात से विषम होकर हैज़ा यानी विशूचिका, वातादि रोग, ग्रहणी, अतिसार, प्लीहा, गुल्म, शूल, अफारा, और उदावर्त्त पैदा

करती है। यह हारीत की बात है। धन्वन्तरि जी कहते हैं, जो जठराग्नि कभी तो अन्न को पचा दे और कभी पेट में दर्द, उदावर्त्त अतिसार, पेटका भारीपन, आँतोंमें गुड़गुड़ाहट, प्रवाहिका आदि पैदा करे और फिर अन्नको पचा दे, उसे "विषमाग्नि" कहते हैं।

इस अग्नि का चिकने, खट्टे, तथा नमकवाले आहारों और औषधियों से प्रतिकार करना चाहिये। भोजन पर भोजन, असमय के भोजन, भारी पदार्थों के भोजन, विषम भोजन और मलमूत्र आदि वेगों के रोकने से बचना चाहिये। अग्निदीपक हलके आहार करने चाहिएँ।

तीक्ष्णाग्नि

"सुश्रुत"में लिखा है—जो अधिक खाये-पीये को शीघ्र पचा दे, वह जठराग्नि तीक्ष्ण कहलाती है। और जब यह अग्नि बहुत ही बढ़ जाती है, तब बारम्बार खाये हुए भोजन को चट से पचा देती है और खाने की इच्छा बनी ही रहती है। पच जाने के अन्त में गले, तालू और होठ सूखते हैं; दाह और सन्ताप होता है—इस अवस्था को "भस्मक" रोग कहते हैं।

हारीत कहते हैं—जब प्रकृतिसे अधिक खा लेनेपर भी तृप्ति नहीं होती, नेत्र सदा पीले बने रहते हैं, दाह होता और बल घट जाता है, तब तीक्ष्ण अग्नि कहते हैं। जब वात और कफ क्षीण हो जाते हैं और पित्त तीक्ष्ण हो जाता है, भोजन की इच्छा बनी ही रहती है, खाया हुआ पच जाता है; तब "भस्माग्नि" या "भस्मक" कहते हैं।

भस्मक रोग से पीलिया, पित्तज अतिसार, राजयक्ष्मा, हलीमक, भ्रम, ग्लानि, यकृत रोग, प्रमेह, शूल, मूर्च्छा, रक्तपित्त, अम्लपित्त और मूत्रकृच्छ्र,—ये उपद्रव होते हैं। शरीर क्षीण हो जाता है। अन्नमें मन लगा रहता है। भस्मक-रोगी यदि काठ और पत्थर भी खा जाय, तो वह भी पच जाते हैं।

तीक्ष्णाग्निवालों को मीठे, चिकने, शीतल आहार-पान देने चाहियें अथवा जुलाब देकर प्रतिकार करना चाहिये। भस्माग्नि या अत्याग्नि का भैंस के दूध, दही और घी प्रभृति से प्रतिकार करना चाहिये।

मन्दाग्नि

इस अग्निवाले को थोड़ा सा खाया-पीया भी यथार्थ रूप से नहीं पचता। धन्वन्तरिजी कहते हैं, जो अग्नि बहुत थोड़े से खाने को भी बड़ी देर में पचाती हैं और पचाने से पहले पेट में भारीपन, सिर में भारीपन, श्वास, खाँसी, राल बहना, ओकी, शरीर में थकान आदि उपद्रवों को पैदा करती है, उसे "मन्दाग्नि" कहते हैं। हारीत कहते हैं, मन्दाग्निवाले के कफ अधिक होता है और गुल्मोदर रोग पैदा करता है।

अवस्था-विचार।

अवस्था तीन प्रकार की होती हैं :—

(१) बाल अवस्था (२) मध्यावस्था (३) वृद्धावस्था। सोलह वर्ष से नीचे बालावस्था, सोलह से सत्तर वर्ष तक मध्यावस्था, और सत्तर साल से ऊपर की अवस्थाको वृद्धावस्था कहते हैं।

बालक तीन प्रकार के होते हैं:— (१) दूध पीने वाले, (२) दूध और अन्न दोनों खानेवाले, (३) अन्न खानेवाले। एक वर्ष के बालक दूध पीनेवाले, दो वर्ष के बालक दूध और अन्न दोनों खानेवाले; और दो साल से ऊपर के अन्न खानेवाले होते हैं।

मध्यावस्था के भी चार भेद हैं:— (१) बढ़ाव की अवस्था, (२) यौवनावस्था, (३) परिपूर्णता की अवस्था, (४) घटाव की अवस्था।

बीस वर्ष तक बढ़ाव की अवस्था होती है; यानी बीस वर्ष तक मनुष्य बढ़ता है। तीस वर्ष तक यौवनावस्था यानी जवानी रहती है। चालीस वर्षतक सब धातु-उपधातुओं, सब इन्द्रियों और बल की पूर्णता होती है। इसके बाद, इकतालीसवें वर्ष से सत्तर वर्ष तक कुछ न कुछ घटता रहता है। कोई-कोई कहते हैं, बीस से साठ वर्ष तक शरीर की वृद्धि होती है; तीस से साठ वर्ष तक जवानी रहती है और चालीस से साठ वर्ष तक सब धातुओं, इन्द्रियों और बल-वीर्य्य की सम्पूर्णता होती है। इसके बाद घटाव आरम्भ होता है। सत्तर वर्ष के बाद सब धातुओं, इन्द्रियों, बल-वीर्य्य और उत्साह में कमी होने लगती है; शरीरमें सलवटें और झुर्रियाँ पड़ने लगती हैं। सारे बाल सफेद—सफेद ही नहीं, पीले हो जाते और उड़ जाते हैं। श्वास और

खाँसी प्रभृति रोग घेर लेते हैं। इन रोगोंके मारे मनुष्य बिलकुल असमर्थ हो जाता है। ऐसी हालत हो जाती है, जैसे मेह से पुराने मकान की हो जाती है। ऐसी अवस्था होने पर, मनुष्य को "वृद्ध" कहते हैं। इस अवस्था में बादी का बहुत ही ज़ोर हो जाता है।

"चरक" में लिखा है—स्थूल-भेद से अवस्था तीन होती हैं :—(१) बाल्य, (२) मध्यम (३) वृद्ध। बाल्यकाल में सभी धातुएँ कच्ची रहती हैं; मूँछ दाढ़ी आदि नहीं निकलती हैं। इस अवस्था वाले का बल, क्लेश सहने-योग्य नहीं होता और अधूरा रहता है। बाल्यावस्था में कफ प्रधान होता है; यानी इस उम्र में कफ का ज़ोर रहता है। सोलह वर्ष तक बाल्यावस्था रहती है। तीस वर्ष तक सब धातुएँ बढ़ती हैं और चित्त चञ्चल या डाँवाडोल रहता है। इस मध्यमावस्था में बल वीर्य्य, पुरुषार्थ, पराक्रम, स्मरण, वचन, विज्ञान आदि और सब धातुएँ उत्तम रहती हैं। साठ वर्ष तक मध्यमावस्था कहलाती है—इसके बाद मनुष्यकी धातु, इन्द्रियें, बल, पौरुष, पराक्रम, ग्रहण, स्मरण, वचन और विज्ञान, ये घटने लगते हैं; धातुएँ ख़राब हो जाती हैं। इस अवस्था में वायु बढ़ जाती है। इस तरह इकसठसे सौ वर्ष तक वृद्धावस्था कहलाती है। अनेक लोग सौ वर्ष से भी अधिक जीते हुए देखने में आते हैं।

कौनसी अवस्था किस दोष का समय है?

बाल्यावस्था—कफ का समय है।

मध्यावस्था—पित्त का समय है।

वृद्धावस्था—वायु का समय है।

बाल्यादि दश पदार्थों का ह्रास।

शार्ङ्गधर महोदय ने लिखा है—जन्म होने के दस वर्ष बाद बालकपन नहीं रहता; बीस वर्ष के बाद शरीर का बढ़ना बन्द हो जाता है। तीस वर्ष के बाद शरीर मोटा नहीं होता अथवा रौनक़ मारी जाती है। चालीस साल बाद स्मरण रखने यानी याद रखने की सामर्थ्य नहीं

रहती। पचास साल बाद शरीर ढीलासा हो जाता है। साठ साल बाद नज़र कम हो जाती है। सत्तर साल बाद वीर्य्य नहीं रहता। अस्सी वर्ष के बाद पराक्रम नहीं रहता। नब्बे वर्षके बाद अक्ल मारी जाती है। सौ वर्षके बाद कर्मेन्द्रियाँ बेकाम हो जाती हैं। एक सौ बीस वर्ष बाद प्राणी चोलेको छोड देता है। इस तरह हर दस साल में एक-एक चीज़ घटती जाती है।

बाल्यावस्था में कफ का सञ्चय होता है; जवानी में पित्त बढ़ा हुआ रहता है और बुढ़ापे में वायु बढ़ा हुआ रहता है। वैद्य को इस बात का विचार करके दवा तजवीज करनी चाहिये। बालक और वृद्ध को अग्नि-कर्म (दागना वगैरः) क्षार-कर्म, विरेचन—जुलाब और स्वेदादि (पसीने निकालना प्रभृति) से बचाना चाहिये; अर्थात् बूढ़े और बालक को जुलाब वगैरः न देना चाहिये। यदि ऐसी ही ज़रूरत हो, जुलाब देने और दागने वगैरः बिना काम होता न दीखे, तो बहुत ही आहिस्ता-आहिस्ता क़दम-क़दम पर सोच-समझकर जुलाब वगैरः हलके देने चाहियें। अवस्था-विचार से ये तो वैद्य का एक काम हुआ।

दूसरा काम अवस्था के विचार से मात्रा तजवीज करना है। अवस्था के बढ़ने पर उत्तरोत्तर दवा की मात्रा जवानी तक बढ़ती है। उसी तरह बुढ़ापे में पहले की अपेक्षा यथाक्रम मात्रा घटाघटा कर दी जाती है। मान लो, एक मास के बालक को एक रत्ती दवा, दो मास के को दो रत्ती, तीन मास के को तीन रत्ती; एक वर्ष के बालक को एक माशे, दो वर्ष के को दो माशे, इसी तरह सोलह वर्ष तक माशे-माशे बढ़ा कर १६×१ = १६ माशे तक ले जावें। सोलह वर्ष के बाद बढ़ाने की ज़रूरत नहीं है। सोलह वर्ष से सत्तर वर्ष तक सोलह माशे का ही प्रमाण रहेगा। सत्तर वर्षके बाद जैसे बालक की मात्रा बढ़ाई थी, घटाते चले जाओ। बालक और बूढ़े की चिकित्सा समान है। कल्क, चूर्ण और काढ़े की मात्रा बूढ़े को बालक से चौगुनी देनी चाहिये।

नोट—हमने ऊपर जो १ रत्ती, २ रत्ती या १६ माशे की मात्रा लिखी है, उसे सब दवाओं की मात्रा न समझ लेना। कितनी ही दवाएँ १, २ चाँवल जवानोंको

दी जाती हैं। बालकों को तो वही बाजरे-बराबर दी जाती हैं। हमने एक रत्ती, दो रत्ती की मात्रा लिख कर दवा की मात्रा तजवीज करने का रास्ता समझाया है। हाँ, अनेक दवाएँ इन्ही परिमाण में बालकों और जवानों तथा बूढ़ों को दी जा सकती हैं।

हाँ, अवस्था का विचार करते समय सुश्रुत-चरक के लेखनानुसार आप साठ वर्षके मनुष्यको जवान समझकर चिकित्सा न कीजियेगा; यदि ऐसा कीजियेगा, तो धोखा खाइयेगा। आजकल पचास सालके बाद वृद्धावस्था का आरम्भ हो जाता है। अच्छा हो, यदि आप अवस्था के लक्षण देख कर, आयु का परिमाण ग्रहण करें। यही सफलता की कुञ्जी है।

बालक और वृद्धकी चिकित्सा के सम्बन्धमें कुछ उपयोगी नियम।

१ बालक की आँखोंमें काजल प्रभृति लगाना, उवटन लगाना, लोई करना, तेल लगाना, स्नान कराना, वमन कराना, निरुहण वस्तिका प्रयोग करना (गुदामें पिचकारी लगाना) प्रभृति कर्म—बालक के हक़में जन्मसे ही हितकारी हैं; अर्थात् बालक के पैदा होते ही, यदि उपरोक्त काम किये जायँ, तो बालक सदा सुखी और आरोग्य रहेगा।

२ वैद्यको चाहिए कि, पाँच वर्षकी उम्र होनेके बाद बालकको कवल या गण्डूष आदि धारण करावे; यानी मुखमें कुछ दवा डालकर कुल्ले करावे; आठ वर्षके बाद बालकको सूँघने या नाकमें चढ़ाने की दवा देवे; सोलह वर्षकी अवस्था हो जानेके बाद जुलाब देवे और बीस वर्ष की उम्र के बाद स्त्री-सम्भोग की सलाह दे।

३ दूध पीते बालकको दवाकी मात्रा खूब कम देनी चाहिए। ऐसी दवा देनी उचित है, जो मौतादमें थोडी ही खूब लाभदायक हो। अच्छा हो, यदि बालकके बजाय माता या दूध पिलानेवाली धाय को दवा दी जाय।

४ बालक और वृद्धको वमन विरेचन न कराना चाहिये। यदि सख़्त ज़रूरत हो, तो हलकी दवा देनी चाहिए।

५ छोटे बालकों को पहले महीनेमें मा के दूध, शहद, चीनी या गायके घी में दवा देनी चाहिये।

देश-विचार।

चिकित्सकको चिकित्सा-कर्म करते समय देशकी परीक्षा करनी पड़ती है। रोगीका जन्म किस देशमें हुआ है; रोगी किस देशमें बड़ा हुआ है; रोग किस देशमें हुआ है; उस देश या इस देश की आब-हवा कैसी है; इस देशमें किस दोषका कोप रहता है; यह देश कफ-प्रधान है या वात-प्रधान अथवा पित्त-प्रधान; इस देशके प्राणियोंके आहार-विहार कैसे हैं; अथवा बल, सत्व, सात्म्य, दोष प्रभृति कैसे हैं इत्यादि बातोंके जानने की वैद्यको ज़रूरत होती है और इनके जाननेके लिये ही देश-परीक्षा की जाती है।

देश तीन तरहके होते हैं;—

(१) आनूप, (२) जांगल, (३) साधारण।

आनूप देश।

जहाँ बहुतसे तालाब, झरने, झील प्रभृति जलाशय हों ; जहाँ ऊँचे-नीचे नदी नाले हों; बहुत ही वर्षा होती हो; कोमल शीतल पवन चलती हो, अनेक पर्वत और बड़े-बड़े वृक्ष हों; कोमल सुन्दर स्वरूप वाले पुरुष जहाँ अधिक हों और जहाँ कफ और वात के रोग अधिकतासे होते हों, उसे "आनूपदेश" कहते हैं। वाग्भट्टने लिखा है, आनूपदेश कफ-प्रधान देश है। इस देशके जीव, औषधियाँ और अन्नजल प्रभृति सभी कफ-प्रधान होते हैं।

"हारीत-संहितामें" लिखा है—जहाँ की पृथ्वी हरी-हरी घाससे शोभायमान हो, चाँवलोंके खेतोंसे पृथ्वी रमणीक हो रही हो, जहाँ भारी और मधुर रसवाली ईख बारहों महीने होती हो, अनेक तरह के

चाँवल और गेहूँ पैदा होते हों, मधुर रसके खानेसे वात और कफ का कोप होता हो, उसे "आनूप देश" कहते हैं। इन लक्षणोंवाला देश "बंगाल प्रान्त" है। बंगालमें जलाशय बहुत हैं, वर्षा भी बहुत होती है, चाँवल भी बहुत पैदा होते हैं, वृक्ष भी बहुत हैं; जहाँ देखो हरियाली ही हरियाली है। ईख बारहों मास होती है।

जांगल देश।

"सुश्रुत"में लिखा है,—जो आकाशकी तरह ऊँचाई-निचाई रहित हो यानी एकसा हो, जहाँ दूर-दूर पर और कहीं-कहीं पास-पास काँटे-दार वृक्ष हों, वर्षा थोड़ी होती हो, जलाशय कम हों, गरम और तेज़ हवा चलती हो, कहीं-कहीं छोटे-छोटे पहाड़ हों, गठीले और पतले शरीर वाले पुरुष अधिक हों, जहाँ वात और पित्तके रोग अधिकतासे होते हों, "उसे जांगल देश" कहते हैं। हारीतमें लिखा है—जहाँ काँटों-दार वृक्ष हों, मृग-तृष्णा हो; यानी जल तो न हो मगर हिरनोंको जल मालूम हो, जहाँ पत्र-हीन वृक्ष हों, जहाँ की ज़मीन रेतीली हो और सूरजकी किरणोंसे तप रही हो, जहाँ कूओंका जल घटता जाय, जहाँ चाँवल और ईख पैदा न होते हों, जहाँ रक्त और पित्त जल्दी कुपित होते हों—उस देशको "जांगल देश" कहते हैं। वाग्भटने जांगल देशके जीव-जन्तु और अन्न आदिको वायु-प्रधान कहा है। ऐसा देश राजपूताना प्रान्तमें "मारवाड़" है। मारवाड़की ज़मीन रेतीली है। वर्षा वहाँ कम होती है। जलाशय कम हैं। चाँवल और ईख की खेती वहाँ नहीं होती। वहाँ गरम हवा चलती है और काँटेदार वृक्ष भी वहाँ बहुत होते हैं।

साधारण देश।

जिस देशमें आनूप और जांगल दोनोंके लक्षण अधिकता से हों, जहाँ न बहुत रूखापन हो और न चिकनापन हो, जहाँ न बहुत जाड़ा हो न बहुत गरमी हो, साधारण जल हो, न बहुत वर्षा होती हो न मार-

वाड़ की तरह सूखा ही रहता हो, हरियाली हो मगर बंगाल की तरह न हो,—ऐसे देश को 'साधारण' देश कहते हैं। ऐसा देश 'युक्तप्रान्त' मालूम होता है, क्योंकि वहाँ बङ्गदेश की तरह थोड़ी बहुत हरियाली है और कहीं-कहीं मारवाड़ की तरह सूखे मैदान भी हैं। वहाँ वर्षा बङ्गाल से कम और मारवाड़ से अधिक होती है। चाँवल और ईख की खेती होती है। मारवाड़ में पैदा होनेवाले बाजरा, टेंटी और ग्वारकी फली प्रभृति पदार्थ भी पैदा होते हैं; गरमी में गरम हवा या लूएँ भी चलती हैं; कुए, बावडी, तालाब और नदियों की कमी नहीं हैं, मगर बङ्गाल की तरह अधिकता भी नहीं है। साधारण देश वाग्भट्ट के मत से समदोष-युक्त होता है। इसके जीव-जन्तु और औषधियाँ भी समदोष-युक्त होती हैं।

छै ऋतुएँ।

एक वर्ष में बारह महीने होते हैं। बारह महीनोंमें, दो-दो महीनों की छै ऋतुएँ होती हैं। जैसेः—

१ शिशिर=माघ, फागुन

२ वसन्त=चैत्र, वैशाख

३ ग्रीष्म=ज्येष्ठ, आषाढ़

४ वर्षा=श्रावण, भाद्रपद

५ शरद्=आश्विन, कार्त्तिक

६ हेमन्त=मार्गशिर, पौष

दक्षिणायन और उत्तरायण।

चन्द्रमा और सूर्य को काल-विभाजक मानकर वर्ष को दो भागों में बाँटते हैं:—(१) दक्षिणायन, (२) उत्तरायण। इन छै ऋतुओं में से वर्षा, शरद् और हेमन्त का दक्षिणायन, और शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म का उत्तरायण होता है।

वर्षा, शरद्, हेमन्त=दक्षिणायन

शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म=उत्तरायण

प्राणियों के बलके घटने-बढ़ने के कारण ।

दक्षिणायन की तीन ऋतुओंमें चन्द्रमा बलवान होता है और उत्तरायणकी तीन ऋतुओं में सूर्य बलवान होता है। चन्द्रमा के समय में खट्टे, नमकीन और मीठे रस क्रम से बलवान होते हैं तथा उत्तरोत्तर प्राणियों का बल बढ़ता है। सूर्य के बलिष्ट होने पर, कड़वा कसैला और चरपरा ये रस क्रम से बलवान होते हैं और उत्तरोत्तर प्राणियोंका बल घटता जाता है। चन्द्रमा पृथ्वी को तर करता है, सूर्य सुखाता है और वायु प्रजा का पालन करता है।

दोषोंके सञ्चय कोप प्रभृतिके अनुसार ऋतु-विभाग ।

दोषों के सञ्चय, कोप और शान्ति के कारण से, विद्वान् वैद्योंने छह ऋतुओं का विभाग इस तरह किया है :—

१ ग्रीष्म=वैशाख, ज्येष्ठ

२ प्रावृट्=आषाढ़, श्रावण

३ वर्षा=भाद्रपद, आश्विन

४ शरद्=कार्त्तिक, मार्गशिर

५ हेमन्त=पौष, माघ

६ वसन्त=फागुन, चैत

दोषों का सञ्चय, कोप और शान्ति ।

वात—ग्रीष्म ऋतुमें सञ्चय होता, प्रावृट् में कोप करता और शरद् ऋतुमें शान्त हो जाता है।

पित्त—वर्षा ऋतुमें सञ्चय होता, शरद् ऋतुमें कुपित होता और वसन्त ऋतु में शान्त हो जाता है।

कफ—हेमन्त में सञ्चय होता, वसन्त में कुपित होता और प्रावृट् ऋतुमें शान्त हो जाता है। यह माधवनिदान-कर्ता ने लिखा है।

"सुश्रुत"में लिखा है, पित्त-कोप-जनित यानी पित्तके कुपित होनेसे होने वाले रोगों की शान्ति हेमन्त ऋतु में स्वयं हो जाती है; कफके रोगों

की शान्ति स्वयं ग्रीष्म ऋतुमें होजाती है, और वादीके रोगों की शान्ति स्वयं शरद् ऋतुमें हो जाती है।

वङ्गसेन महोदय ने लिखा है—वर्षा ऋतु में वायु कुपित होता है, शरद् ऋतु में पित्त कुपित होता है औरवसन्त में कफ कुपित होता है—और फिर हेमन्त में वायु कुपित होता है, रूक्षता बढ़ती है तथा शिशिर में वायु कुपित होता है, और ग्रीष्म में पित्त कुपित होता है। नीचे औरभी अच्छी तरह समझियेः—

वायु—वर्षा, हेमन्त और शिशिर में कुपित होता है।

पित्त—शरद् और ग्रीष्म ऋतुमें कुपित होता है।

कफ—वसन्त ऋतुमें कुपित होता है।

दिन-रातमें ऋतु-विभाग।

दिनका पहला पहर...वसन्त...कफ कोपका समय है।

" दूसरा ".. ग्रीष्म

" तीसरा "...प्रावृट् ...वायु-कोप का समय है।

" चौथा "...वर्षा

आधी रात ...शरद्... पित्त-कोप का समय है।

पिछली रात .. हेमन्त

वर्षकी छहों ऋतुओं और दिन-रात में दोषोंका संचय, कोप और शान्ति बतानेवाला नक़शा ।

	वात	पित्त	कफ
संचय	ग्रीष्म दिन का दूसरा पहर वैशाख—ज्येष्ठ	वर्षा दिनका चौथा पहर भादों—क्वार	हेमन्त पिछली रात पौष—माघ
कोप	प्रावृट् दिन का तीसरा पहर आषाढ़—श्रावण	शरत् आधीरात कातिक—अगहन	वसन्त दिन का पहला पहर फाल्गुन—चैत्र
शान्ति	शरद् आधी रात कार्त्तिक—अगहन	वसन्त दिन का पहला पहर फाल्गुन—चैत्र	प्रावृट् दिन का तीसरा पहर आषाढ़—श्रावण

बंगसेन के मत से दिन-रात में दोषों का समय।

दिन का प्रथम भाग ..कफ का समय।
" " मध्य "...पित्त का समय।
" " अन्तिम " ..वायु का समय।
रात का प्रथम "...कफ का समय।
" " मध्य "...पित्त का समय।
" " अन्तिम "...वायु का समय।

अथवा।

यों समझिये कि, सवेरे ६ बजेसे १० बजे तक सदा वसन्त ऋतु रहती है, इसलिये वह कफके कुपित होनेका समय है। दिनके दस बजे से २ बजे तक सदा गरमी की सी ऋतु रहती है, इसलिये वह पित्त के कुपित होने का समय है। दिनके २ बजे से सन्ध्या के ६ बजे तक वर्षाकाल सा मालूम होता है, इस लिये वह वायुके कुपित होने का समय है। इसी तरह रात के तीनों भागों को कफ, पित्त और वायु का समय समझ लीजिये। हमारी समझ में यह विभाग सीधा और बहुत काम का है।

ऋतुओंमें मनुष्योंकी अग्नि और बलाबल।

वर्षा और ग्रीष्म ऋतुमें मनुष्य आदिकोंमें दुर्बलता होती है; शरद् और वसन्त में मनुष्यों की देहमें मध्यम बल होता है; हेमन्त और शिशिर ऋतुमें पूर्ण बल रहता है।

शीतकाल यानी जाड़ेमें शीतल वायु के संस्पर्शसे शरीरके भीतर रुक कर बलिष्ठ प्राणियों की अग्नि बलवान होती है; इससे शीत-कालमें मनुष्य की अग्नि गुरु मात्रा और गुरु द्रव्यको पचा सकती है। मतलब यह है, कि जाड़ेमें अग्नि तेज़ रहती है, इसलिये इस मौस-ममें अधिक और देरमें पचनेवाली भारी चीज़ भी आसानी से पच

जाती है। यदि जाड़ेमें बलवान अग्निको यथेष्ट आहार या ईंधन नहीं मिलता है; तो वह प्राणीकी देहके रसको सुखाती है। रसके सूख जानेसे शरीर रूखा हो जाता है; तब शरीर का वायु कुपित हो जाता है। इसलिये जाड़ेमें मनुष्यों को चिकने, खट्टे और नमकीन रस, शराब, मांस और मधु प्रभृति विधिपूर्वक सेवन करने चाहियें।

वसन्तमें हेमन्तकालका सञ्चित कफ सूर्य की गरमी से इधर-उधर चलकर शरीर की अग्नि को नष्ट कर देता है; इसी से इस ऋतु में अनेक प्रकार के रोग होते हैं।

ग्रीष्म ऋतुमें सूर्यकी तेज़ी और भयानक गरमीके कारण मनुष्यों की देह दुर्बल और जठराग्नि कमज़ोर हो जाती है।

वर्षाकालमें, गरमीके मौसम की कमज़ोर हुई अग्नि, बरसात की ख़राब हवा वग़ैरः से औरभी दुर्बल हो जाती है। बरसातमें पानी बरसता है, ज़मीनसे भाफ़ निकलती है और जल का पाक खट्टा होता है, इससे अग्नि-बल के कम होनेसे त्रिदोष कुपित होता है।

शरद् ऋतुमें, बरसात की सर्दी खानेके पीछे, सूर्य की गरमी से सञ्चित हुआ पित्त कुपित होता है।

ऋतुओंमें पथ्यापथ्य।

हेमन्त।

हेमन्त ऋतुमें बादी नाश करनेवाले सुगन्धित तेलोंकी मालिश कराना, उबटन लगाना, सिरमें तेल डालना, गरम जलसे नहाना, गरम मकानमें रहना, ढकी सवारीमें सैर करना, कसरत-कुश्ती करना, रेशमी और ऊनी तथा रुई के वस्त्रों को पहनना-ओढ़ना और बिछाना; अगर चन्दन का लेप करना, रातको ऊँचे-ऊँचे और पुष्ट स्तनों वाली स्त्रियों, जिनके अगर का लेप हो रहा है, जो कामदेवके मनको भी मथने वाली हैं, उनके साथ सुन्दर गुदगुदे पलँग पर सोना और मदोन्मत्त होकर इच्छानुसार मैथुन करना, ये सब पथ्य हैं। इस शीत ऋतुमें, ऊपर

कह आये हैं, शीतल हवाके लगने से मनुष्य की गरमी बाहर नहीं निकलती, इसलिये बलवान मनुष्यों की "पाचक अग्नि" अत्यन्त प्रबल होकर बहुत से भोजन और भारी पदार्थों को भी पचाने की सामर्थ्य रखती है; इस कारण इस मौसम में शराब पीने वाले शराब पीवें, मधु पान करें; दूध पीवें, गरम जल पोवें, चाँवलों का भात खायँ तथा अन्यान्य चिकने और पुष्टिकारक पदार्थ खायँ, हुक्का-तमाखू पीवें, अच्छी-अच्छी रसालाओंका सेवन करें, मांस खाने वाले उत्तम प्रकार के मांस खायँ। इस मौसम में वर्फ़, सत्तू, अत्यन्त थोड़ा भोजन, बहुत हवा, और कड़वे, कसैले, चरपरे रूखे और बादी करने वाले आहार-विहारों से बचें। हेमन्त और शिशिर में कोई बड़ा भेद नहीं; इसलिये हेमन्त में लिखे हुए आहार-विहार ही शिशिर में पथ्य और अपथ्य समझने चाहिएँ। शिशिर ऋतुमें रूखापन और सरदी,—हवा और बादलोंके कारण से अधिक हो जाती है; इसलिये इस ऋतुमें कड़वे, कसैले, चरपरे, हलके और शीतल आहार-विहारोंसे और भी अधिक बचना चाहिये। गरम घरमें रहना, गरम जलसे नहाना और गरम जल पीना, इन बातों पर विशेष ध्यान रखना चाहिये। गरम जल पीने वालेकी आयु नहीं घटती, इस बातको याद रखना चाहिये।

वसन्त।

वसन्त ऋतु में हेमन्त का जमा हुआ कफ सूरज की गरमी से चलायमान होकर कुपित होता और अनेक रोग पैदा करता है; इसलिये इस मौसम में क़य करना, जुलाब लेना, लङ्घन करना, प्रधमन करना, कसरत करना, कुल्ले करना, कवल मुख में रखना, उबटन लगाना, मिहनत करना, हाथी घोड़े की सवारी करना; चन्दन, केसर, अगर और कपूर का लेपन करना, अञ्जन लगाना, अदरख, मूली, पोई, पेठा, पका खीरा, कचनार, चौलाई, ज़मीकन्द, करेला, परवल, बैंगन और अन्यान्य कड़वे साग खाना; जौ साँठी और शाली चाँवल, कोदों तथा लवा प्रभृति का मांस खाना एवं त्रिकुटा, त्रिफला, पीपलामूल,

असगन्ध अडूसे और भाँगका सेवन,—ये सब पथ्य यानी हितकारी हैं। जिस स्त्रीने चन्दन और अगर से अपने शरीर को सुवासित कर रक्खा है, जिसने साफ़-सफेद कपड़े पहन रक्खे हैं, जिसकी छातियाँ कड़ी और ऊँची-ऊँची हैं, जिसकी दोनों जाँघें पुष्ट हैं, जिसने अनेक प्रकारके ज़ेवर पहन रखे हैं, जो रूप और यौवन के नशे से मतवाली हो रही है, ऐसी स्त्री को बाग़-बग़ीचोंमें लेजाकर, उसके साथ आनन्द करना यह भी हितकारी है।

ग्रीष्म ।

ग्रीष्म ऋतु में सूर्य अपनी तेज़ी से जगत् के सार यानी तरी को सोख लेता है, इसलिये इस ऋतु में पतले और शीतल द्रव्य तथा चिकने अन्न-पानका सेवन करना अच्छा है। इस मौसम में शर्करोदक, चीनी मिला हुआ पतला सत्तू, हिरन प्रभृति जङ्गली जानवरों का मांस, घी और दूधमें मिले शाली चाँवल इनको खानेवाला गरमी से दुःखित नहीं होता। शराब का इस मौसम में न पीना ही अच्छा है; यदि पीये विना न रहा जाय, तो थोड़ी और अधिक पानी मिलाकर पीनी चाहिये। दिनमें शीतल घरमें रहना, रातको चन्द्रमा की चाँदनी में छत पर सोना, चन्दन कपूर आदिका लेप करना, ख़स की टट्टियाँ लगवा कर ख़स के या कपड़े के पंखे की हवा आती हो ऐसे स्थानमें दोपहरी काटना, रात को चन्दन के जल से भीगे पंखे की हवा सेवन करना, शीतल जल पीना, शीतल सुगन्धिवाले फूलों को सूँघना और उनकी माला पहनना, हीरा मोती प्रभृति सुन्दर रत्नों का पहनना, दोपहर के समय नीले, लाल या सफेद कमल के पत्तों की सेज पर सोना, स्त्रियों या मित्रों के साथ जल-विहार करना, कपूर के गहने पहनना, चमेली के फूलों की माला पहनना, मनहरण करनेवाली प्रौढ़ा स्त्रियों के साथ सुन्दर छाया-दार बाग़में घूमना, फव्वारों की बहार देखना, मलमल प्रभृति महीन और बारीक वस्त्रों को पहनना तथा पुराने जौ, गेहूँ, बढ़िया सफेद चाँवल, खूब सफेद चीनी, मूँग, शिखरन, मिश्री मिला हुआ दूध, गाय

या भैंस का मक्खन, घी खटाई, केलेकी गहर, दाख, कटहल और आम—ये सब आहार और विहार गरमी के मौसम में मनुष्यके लिए रोगों से बचानेवाले, सुख देनेवाले और परम पथ्य हैं। इस ऋतु में सन्ध्या-समय बहुत ही थोड़ी एक या दो रत्ती भाँग को सौंफ, कासनी, गुलाब के फूल, इलायची, खीरे-ककड़ी के बीज, गोलमिर्च प्रभृति के साथ घोट कर पीनेसे हैज़े का भय नहीं रहता और खाया-पीया चट पच जाता है; मगर अधिक भाँग पीना हानिकारक है।

इस मौसम में कसरत-कुश्ती, अधिक मिहनत, सूरजकी धूप, राह चलना; कड़वे, खट्टे, चरपरे और नमकीन पदार्थों का सेवन, स्त्री-प्रसंग, गरम और रूखे पदार्थ, चिन्ता-फिक्र प्रभृति तथा गरम और दाह करने-वाले एवं गरमी बढ़ानेवाले आहार-विहारोंसे बचना चाहिये।

वर्षा काल।

इस मौसम में अग्निबलके क्षीण होनेसे त्रिदोष कुपित होते हैं; इसलिये वर्षाकालमें त्रिदोष-नाशक विधियों का अनुष्ठान करना चाहिये। जिस दिन ज़ोर से हवा चल रही हो, पानी बरस रहा हो, सर्दी का ज़ोर हो, उस दिन अत्यन्त खट्टे, नमकीन और हलवा-प्रभृति चिकने पदार्थ खाने चाहिएँ। ऐसा करने से वर्षाकाल की वायु शान्त रहती है। वर्षा का जल, गरम करके शीतल किया जल, कूए या तालाबका पानी पीना चाहिये। जंगली जानवरों का मांस, थोड़ी शराब, अरिष्ट, शहद-मिले भोजन के पदार्थ, पुराना शहद, पुराने गेहूँ, काला नोन, खुशबूदार महीन कपड़े, सुगन्धिवाले फूलों की माला, बौछार न लगती हो ऐसा घर, सूखे कपड़े और जूते पहन कर फिरना,—ये सब आहार-विहार मनुष्य के लिये सुखकारी और हितकारी हैं।

इस मौसम में परिश्रम, धूप, तालाबका जल, नदीका जल, कुहरा, ओस, दिनमें सोना, मैथुन, शीतल पवन, शीतल और रूखे पदार्थ, कसरत, पानी में नंगे पैरों फिरना, गीले वस्त्र पहनना, वर्षा में भीगना

—ये सब मनुष्य को दुःखदायी या अपथ्य हैं ; अतः इनसे बचना परमावश्यक है ।

शरद् ऋतु ।

इस मौसम में पित्त का कोप होता है ; इसलिये इस मौसम में मीठे, हलके, शीतल, किसी क़दर कड़वे, पित्त-नाशक पदार्थ, भूख लगने पर परिमाण के साथ, सेवन करने चाहिएँ । लवा, सफेद तीतर, हिरन, मेढ़ा, बारहसिंगा और ख़रगोश का मांस, शाली चाँवल, जौ, गेहूँ, घृत-पान, नदी का जल, शहद, दूध, आँवले, परवल, चीनी, ईख, कपूर, सरोवर का जल, शीतल जल, हंसोदक, चन्दन, चाँदनी, महीन वस्त्र, सुगन्धित फूलों की माला, मोतियों का हार, गीत सुनना और नाच देखना—ये सब आहार-विहार शरद् ऋतु में पथ्य हैं । इस मौसम में वर्षा-काल के सञ्चित पित्त को जुलाब देकर निकालना ज़रूरी और लाभदायक है । फस्त खुलवाना भी अच्छा है ।

इस मौसम में चरबी, तेल, ओस, जलके और अनूपदेश के जानवरों का मांस, क्षार, दही, दिनमें सोना, पूरब की हवा, तेज़ हवा, अत्यन्त भोजन, धूप, काँजी, मदिरा, कूए का जल, उड़द, तिल, चरपरे और रूखे पदार्थ, इन सब आहार-विहारों से परहेज़ करना चाहिये ।

किस मौसम में किस दिशा की हवा अच्छी होती है ?

१ शिशिर अर्थात् माघ फागुन में पूरब की हवा अच्छी है ।

२ हेमन्त यानी अगहन पौष में आग्नेय दिशा की हवा अच्छी है ।

३ वसन्त यानी चैत वैशाख में दक्खन की हवा अच्छी है ।

४ ग्रीष्म यानी जेठ आषाढ़ में नैऋत की हवा अच्छी है ।

५ शरद् यानी क्वार कार्तिक में वायव्य की हवा अच्छी है ।

६ वर्षा यानी सावन भादों में पच्छम की हवा अच्छी है ।

नोट—शिशिर और वसन्त यानी माघ-फागुन और चैत-वैशाख में उत्तर की भी अच्छी होती है ।

ज़हरीली हवा का समय।

अगहन, पौष, कार्तिक, माघ और आषाढ़ में तथा मौसमों के मेल के समय हवा विषैली यानी ज़हरीली होती है।

जब किसी नगर, गाँव या देश की हवा ज़हरीली हो जाती है ; तब गाँयों को तिलक रोग, मनुष्यों को राज-रोग, हाथियों को पावक रोग और घोड़ों को वेध रोग होता है।

वैद्यको सदा हाथियों के पित्त की, घोड़ों के कफ की और मनुष्यों के वायु की रक्षा करनी चाहिये।

ऋतु-विपर्य्यय।

जब प्रत्येक ऋतु ठीक होती हैं ; यानी गरमी में गरमी, सर्दी में सर्दी और वर्षाकाल में वर्षा ठीक होती है ; तब अन्न, शाक प्रभृति औषधियाँ और जल ठीक रहते हैं। ऐसे अन्न-जलके सेवन करनेसे मनुष्यों की आयु, उनका बल-पराक्रम प्रभृति ठीक रहते हैं। किन्तु यदि हेमन्त ऋतुमें सरदी नहीं पड़ती, ग्रीष्ममें गरमी नहीं पड़ती, वर्षामें पानी नहीं बरसता ; तब अन्न जल आदि बिगड़ जाते हैं। प्राणी उन्हींको खाते पीते हैं, इससे उनको अनेक रोग होते हैं अथवा महामारी (प्लेग) हैज़ा प्रभृति से मृत्युकारक समय उपस्थित हो जाता है। यह बात धन्वन्तरि भगवान ने सुश्रुत से कही है। आजकल ऋतुएँ ठीक नहीं होतीं, इसीसे इस देशमें प्लेग और हैज़ा प्रभृति प्राणनाशक रोग ऊधम मचाये रहते हैं।

ऋतु-सन्धि।

दो-दो ऋतुओं के आदि के और अन्त के सात-दिनों को "ऋतु-सन्धि" कहते हैं। जैसे ; ग्रीष्म ऋतु के ख़तम होने में सात दिन बाक़ी रहें, तब गरमी के सात दिन और आगे आनेवाली वर्षा ऋतु के शुरू के सात दिन—इनको "ऋतु-सन्धि" कहते हैं। इस ऋतु-सन्धिके चौदह दिनोंमें, आगे आनेवाली ऋतु की विधि सेवन करनी चाहिये ; यानी

गरमी की ऋतु के अन्त के सात दिनों को वर्षा ऋतु समझ कर, वर्षा ऋतु में लिखे हुए आहार-विहार सेवन करने अथवा त्यागने चाहिएँ ।

प्राणनाशक समय ।

कार्तिक के अन्तके आठ दिन और अगहन के आरम्भ के आठ दिन; यानी कार्तिक सुदी अष्टमी से अगहन वदी अष्टमी तक के सोलह दिनों को "यमदंष्ट्रा" अथवा यमकी दाढ़ें कहते हैं। इन सोलह दिनोंमें जो लोग थोड़ा खाते हैं, वह आरोग्य रहते हैं। जो बहुत खाते हैं या हेमन्त ऋतु में लिखे हुए पथ्य-अपथ्य का ख़याल नहीं रखते (क्योंकि ऋतु-सन्धि हो जाती है, कातिक की अष्टमी को हेमन्त ऋतु आरम्भ हो जाती है), वे भयानक रोगों में गिरफ़्तार होकर दुःख भोगते और अनेक तो इस जगत् से ही चल बसते हैं।

वमन विरेचन योग्य ऋतुएँ ।

शरद् ऋतु में जुलाब देकर पित्त को निकाल देना चाहिये ; वसन्त में क़य कराना और जुलाब देना ज़रूरी है। शरद् ऋतु फस्त खुलवाने या ख़ून निकालने के लिए अच्छी है।

अर्क ख़ून सफ़ा ।

मनुष्य-शरीर में ख़ून ही राजा है। राजा नहीं—ख़ून ही जीवन है। जिसका ख़ून साफ़ और शुद्ध है, वही सब तरह से सुखी है। अनेक कारणों से मनुष्य का ख़ून ख़राब हो जाता है। ख़ून के ख़राब हो जाने से शरीर का रंग बदरंग हो जाता है। शरीर पर फोड़े फुन्सी, दाफड़, लाल-लाल या काले-काले चकत्ते वग़ैरः अनेक रोग हो जाते हैं। ख़ून के इन सभी रोगों के आराम करने में हमारा "अर्क ख़ून-सफ़ा" सब से उत्तम दवा है।

हमारे "अर्क ख़ून सफ़ा" की ३० वर्ष से परीक्षा हो रही है। इससे ऐसे-ऐसे सड़े हुए रोगी आराम हुए हैं, जिनको अनेक डाक्टरों ने असाध्य कह दिया था। बहुत क्या—अगर कोई भी ख़ून का रोग, उपदंश, आतशक या पारे के दोष हों, आप हमारा "अर्क ख़ून सफ़ा" ५।६ बोतल पीवें। इसके पीने से सुवर्णवत् कान्ति हो जायगी। दाम फी बोतल, जिसमें तीन पाव अर्क है, २॥)। मगर यह अर्क रेल से जा सकता है। अतः मँगाते समय आधी कीमत पहले भेजनी चाहिये और नजदीकी रेलवे स्टेशन का नाम लिखना चाहिये।

निदान पञ्चक।

निदान पञ्चक—निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय और सम्प्राप्ति—इन पाँचों से रोग जाना जाता है अथवा यों कह सकते हैं कि, ये पाँचों रोग जानने के कारण हैं।

निदान।

(१) निदान—जिन आहार-विहारों से रोगों की उत्पत्ति होती है तथा वात, पित्त और कफ इन तीनों दोषोंकी क्षय और वृद्धि होती है, उन्हींको रोगका "निदान" या "कारण" कहते हैं। निमित्त, हेतु, आयतन, प्रत्यय, उत्थान और कारण—ये निदान के पर्य्याय-वाचक शब्द हैं ; यानी ये निदान के दूसरे नाम हैं। इन छहोंमें से शास्त्रमें कोई शब्द आवे, उसे निदान-वाचकही समझना चाहिये। मिट्टी खानेसे पीलिया रोग होता है, इसलिए "मिट्टी" पीलिये का "निदान" यानी "कारण" है।

पूर्वरूप।

(२) पूर्वरूप—जिस लक्षण से उत्पन्न होनेवाले रोगका ज्ञान हो जाय, उसे "पूर्व्वरूप" कहते हैं। जैसे ; ज्वरके पहले थकानसी मालूम हो, मुँहका ज़ायका बिगड़ जाय, आँखोंमें जल भर-भर आवे, कभी हवा अच्छी लगे कभी बुरी लगे इत्यादि लक्षणोंसे ज्वर होगा, ऐसा समझनाही "पूर्वरूप" है। आँखें जलने लगें और हम समझ लें कि पित्त-ज्वर होगा, तो "आँखोंका जलना" पित्त-ज्वरका पूर्वरूप है। आकाशमें बादल घिर आनेसे हम समझते हैं कि, मेह बरसेगा ; इसलिये बादलोंका जमा होना, मेह बरसनेके पूर्वरूप हैं।

रूप।

(३) रूप—जब रोगके सारे लक्षण दीखने लगें, तब उन्हें "रूप"

कहते हैं। पूर्वरूप तो व्याधिके आरम्भ करनेवाले दोषमात्रका सूक्ष्म चिह्न है, किन्तु रूप सारे चिह्नोंका प्रकट हो जाना है। जैसे; नेत्रोंमें दाह होना, यह पित्त-ज्वर होनेका पूर्व रूप है। इस लक्षणसे हम समझ सकते हैं कि, हमें पित्तज्वर होगा, किन्तु जब ज़ोरसे बुख़ार चढ़ आवे, दस्त पतला हो जाय, नींद कम आवे, वमन हो, पसीने आने लगें; कण्ठ, होठ, मुख और नाक ये पक जायँ ; इत्यादि लक्षण नज़र आने लगें तो हमें समझना चाहिये कि, पित्त-ज्वर हो गया और ऊपर कहे हुए लक्षणोंको पित्त-ज्वरके "रूप" समझना चाहिये ।

संस्थान, व्यञ्जन, लिङ्ग, लक्षण, चिह्न और आकृति—ये रूपके नामान्तर हैं ; यानी रूपके पर्य्यायवाचक शब्द या उसके दूसरे नाम हैं ।

उपशय ।

(४) उपशय—औषधि, अन्न और विहार—इन तीनोंका रोगीकी प्रकृत्यानुसार सुखकारी प्रयोग हो, उसीको "उपशय" और उसीको "सात्म्य" कहते हैं। उपशयका अर्थ है,—औषधि, अन्न वा विहार द्वारा रोगका पहचानना। जो औषधि अन्न या विहार रोगीके रोगको घटावे और उसके पक्षमें सुखकारी हो, वही "उपशय" है। उपशय या सात्म्य एकही बात है। इससे रोगकी पहचान इस तरह होती है :—

किसी रोगीको कोई रोग है। वैद्य पूछे, क्योंजी, आपको कौन-कौन चीज़ें माफ़िक़ होती हैं या कौन-कौन चीज़ोंसे सुख होता है। रोगी कहे,—मुझे नारंगी, अनार, ईख, खीरे, ककड़ी खाने और शीतल जलमें स्नान करने, शीतल तैल मर्दन करानेसे लाभ होता है और गर्म चीज़ें खाने और लगानेसे तकलीफ होती है, तो वैद्यको समझ लेना चाहिये कि रोगीको शीतल आहार-विहार सुख देते हैं, शीतल पदार्थ उसको मुआफ़िक़ हैं। इस दशामें उसे रोग गरमी से हुआ समझना चाहिए। क्योंकि गरमी से पैदा हुए रोग ही शीतल आहार-विहारों से शान्त होते हैं।

एक बार एक पत्र-सम्पादकने हमको लिखा कि, मेरी माँकी कमरमें बहुत दिनोंसे दर्द रहता है, मुझे कोई उत्तम दवा भेज दो। हमारे मैनेजरने उस दर्दको वात-कफ या सर्दीसे पैदा हुआ समझ कर "नारायण तैल" भेज दिया। ज्यों-ज्यों तेल लगाया जाने लगा, दर्द बढ़ने लगा। हमारे पास शिकायत आई। हमने समझ लिया कि, जब गर्म "नारायण तैल" रोगीको सुखकारी नहीं है, तो अवश्य रोग गरमीसे है। हमने अपने यहाँ का सुप्रसिद्ध "कृष्णविजय तैल" भेज दिया। तेल लगाते ही रोगिणीको आराम मालूम हुआ। फिर तो चन्द रोज़के लगातार इस्तेमालसे वह रोग समूल नाश हो गया। बस, इसी तरह उपशय और अनुपशयसे रोग पहचाना जाता है।

उपशयकी क़िस्में।

उपशय छै प्रकारके होते हैं :—

(१) हेतु-विपरीत
(२) व्याधि-विपरीत
(३) हेतु-व्याधि-विपरीत
(४) हेतु-विपर्यस्त अर्थकारी
(५) व्याधि-विपर्यस्तार्थकारी
(६) हेतु-व्याधि-विपर्यस्त अर्थकारी

हेतु-विपरीत यानी जिस कारणसे व्याधि उत्पन्न हुई हो, उसके विपरीत औषधि, अन्न और विहारका उपयोग "सुखकारक उपशय" है। जैसे शीत ज्वर में "सौंठ" हेतुविपरीत औषध है। क्योंकि शीत ज्वरका हेतु या कारण सरदी है। सरदीके ख़िलाफ़ या विपरीत दवा "सौंठ" है। रोगका कारण शीत यानी सर्दी है और कारणके ख़िलाफ़ सौंठ गर्म दवा है। इसी तरह हेतु-विपरीत अन्न को समझो। जैसे; किसी को थकाई और बादी से ज्वर हुआ। ज्वरका कारण थकान और बादी है। थकान और बादीके विपरीत अर्थात् थकान

और वादी का नाश करनेवाला पथ्य क्या है ? थकान और वादीके नाशक पथ्य मांसरस और चाँवल हैं। इसलिये मांसरस और भात ये हेतु-विपरीत यानी रोगके कारणको नाश करनेवाले या रोगकी शान्ति करनेवाले हुए। इसी तरह हेतु-विपरीत विहारको समझो। दिनके सोनेसे किसीका कफ कुपित हो गया। उससे सिरमें दर्द और जुकाम हो गया। अब यह सोचना चाहिए कि कफके कुपित होनेका कारण क्या है ? कफ कुपित होनेका कारण है—दिनमें सोना। दिनमें सोनेके विपरीत आचरण क्या है ? रातमें जागना। रातमें जागनेसे कफ शान्त हो गया और रोगीको सुख हुआ। इसलिए "रातमें जागना" हेतु-विपरीत विहार या आचरण हुआ।

<u>व्याधि विपरीत</u>—व्याधि-विपरीत यानी रोगके ख़िलाफ़ औषधि, अन्न और विहारका उपयोग "सुखकारक उपशय" है। किसीको अतिसार या दस्तोंका रोग हुआ। हमने व्याधिके विपरीत दस्त बन्द करनेवाली दवा "बेलगिरि" या पाठा दे दी। रोगीको सुख हुआ, तो "बेलगिरी" व्याधि-विपरीत औषधि हुई। किसीको आमातिसार हो गया। हमने उसे दही भात और मिश्री खानेको बता दिया। रोगीको उस पथ्यसे सुख हुआ, तो "दही भात और मिश्री" व्याधि-विपरीत पथ्य हुआ। किसीको ज्वरमें घोर दाह हुआ। हमने कहा, भाई ! रूपवती षोडशी स्त्रीके सर्वाङ्गमें चन्दन लगवा कर उसे आलिङ्गन करो। इस तरह करनेसे उसका दाह शान्त हो गया, तो यह "स्त्रीका आलिङ्गन करना" व्याधि-विपरीत विहार हुआ।

<u>हेतु-व्याधि विपरीत</u>—बादीकी सूजनमें "दशमूलका काढ़ा" बादी और सूजन दोनोंको नाश करता है ; इसलिए "दशमूलका क्वाथ" हेतु-व्याधि-विपरीत यानी रोग और रोगके कारण दोनोंके विपरीत औषधि हुई।

<u>हेतुविपर्यस्तार्थकारी</u>—पित्त-प्रधान व्रणकी सूजनमें पित्तकारक गर्मागर्म पुलटिश बाँधना। गरमी ही से सूजन है और गर्म ही दवा की गई।

व्याधि विपर्यस्तार्थकारी—किसीको क़य होनेका रोग है। उसको हमने गलेमें उँगली डालकर क़य करनेकी सलाह दी। रोगीने वैसा ही किया। उसे आराम मालूम हुआ, तो यह व्याधिविपर्यस्तार्थकारी "आचरण" हुआ।

हेतुव्याधिविपर्यस्तार्थकारी—कोई आगसे जल गया। हमने कहा, "अगर" प्रभृति द्रव्योंका गर्म-गर्म लेप करो। लेप करनेसे रोगीको सुख हुआ, तो यह हेतुव्याधिविपर्यस्तार्थकारी औषधि हुई।

(६) अनुपशय – उपशयके विपरीत जिस औषधि, अन्न और विहार से रोगीको उलटा दुःख हो, वही "अनुपशय" या "व्याधि असात्म्य" है।

सम्प्राप्ति

सम्प्राप्ति—वातादि दोष दुष्ट होकर, अपने-अपने स्थानको छोड़कर, ऊपर नीचे तथा इधर-उधर शरीरमें विस्तृत होकर विचरण करते हैं और उनके विचरनेसे जो रोगकी उत्पत्ति होती है, उसे "सम्प्राप्ति" कहते हैं। मतलब यह है कि वात, पित्त और कफ ये दोष बढ़कर, जिस तरह रोग प्रकट करते हैं, उसे "सम्प्राप्ति" कहते हैं। जैसे—मिथ्या आहार-विहारके कारणसे वात पित्त और कफ कुपित होकर, आमाशयमें प्रवेश करते हैं और उस स्थानमें इधर-उधर घूमते हुए रस-वाहिनी नसोंके रास्तोंको रोक कर, पक्वाशयमें रहनेवाली अग्निको बाहर निकाल देते हैं। उसी जठराग्निसे सारा शरीर जलने लगता है—यही "ज्वर" है और ऐसा निश्चय करना ही "ज्वरकी सम्प्राप्ति" है।

सम्प्राप्ति पाँच प्रकारकी होती हैं:—

(१) संख्यारूप सम्प्राप्ति।

(२) विकल्परूप सम्प्राप्ति।

(३) प्राधान्यरूप सम्प्राप्ति।

(४) बलरूप सम्प्राप्ति।

(५) कालरूप सम्प्राप्ति।

(१) संख्यारूप सम्प्राप्ति—रोगोंकी गिन्ती की "संख्यारूप" सम्प्राप्ति

कहते हैं। जैसे: ज्वर आठ प्रकारके होते हैं; खाँसी पाँच प्रकार की होती है।

(२) विकल्परूप सम्प्राप्ति—मिले हुए पित्त और कफके अंशांश के अनुमान करने को "विकल्प सम्प्राप्ति" कहते हैं। जैसे ; इसमें इतने अंश वात है, इतने अंश पित्त और इतने कफ।

(३) प्राधान्यरूप सम्प्राप्ति—रोगकी स्वतन्त्रतासे व्याधिकी प्रधानता और अप्रधानता जाननेको "प्राधान्यरूप सम्प्राप्ति" कहते हैं। जैसे; स्वतन्त्र ज्वर प्रधान रोग है और उसके अधीन श्वास खाँसी प्रभृति रोग अप्रधान हैं।

(४) बलरूप सम्प्राप्ति—जिस रोगमें रोगके पूर्व्वरूप, रूप इत्यादि सारे लक्षण मिलते हों, उस रोगको बलवान समझना और जिसमें कम लक्षण मिलते हों, उसे निर्बल समझना।

(५) कालरूप सम्प्राप्ति—रात-दिन, ऋतु और आहार—इनके अंशों से वातादि-जनित रोगों के बढ़ने-घटने का काल या समय जानना।

रोगोंके घटने बढ़ने का समय जाननेके लिये रात-दिन के तीन भाग करते हैं। पहला, दूसरा और तीसरा। रातका और दिनका पहला भाग कफ का समय है। दूसरा भाग पित्त का और तीसरा या अन्त का भाग वात का समय है।

इसी तरह ऋतुओं के भी तीन भाग करने चाहियें। वसन्त, ग्रीष्म और वर्षा। वसन्तमें कफ कुपित होता है, गरमी मे पित्त कुपित होता है और वर्षा में वायु कुपित होता है।

इसी तरह भोजन के समय का भी विभाग करना चाहिये। भोजन करनेके समय कफका काल है ; भोजन पचते समय पित्त का और भोजन पच जाने पर वात का काल है।

इसके जाननेसे बड़ा लाभ है। जिस-जिस दोष (वात, पित्त कफ) का जो-जो समय बताया है, उसके जाननेसे काममें कठिनाई नहीं होती और चिकित्सामें बड़ा सुभीता होता है।

रोग-परीक्षा ।

वैद्य का पहला काम रोग जानना है ।

चिकित्सा-मन्दिर में प्रवेश करते ही पहला काम रोग-परीक्षा या मर्ज़की तशख़ीस करना है। रोगके जान जानेपर चिकित्साकार्य आरम्भ होता है। जो वैद्य रोगको विना समझे दवा दे देते हैं, वे धूलमें लट्ठ मारते हैं। उन्हें कभी-कभी सिद्धि हो जाती है; पर अनेक वार असफलता का ही सामना करना पड़ता है। हम इस मौक़े के पाँच-सात श्लोक इस स्थान पर वैद्यों की जानकारी के लिये लिखे देते हैं—

रोगमादौ परीक्षेत् ततोऽनन्तरमौषधम्।
ततः कर्मभिषक् पश्चात् ज्ञानपूर्वं समाचरेत् ॥
यस्तु रोगमविज्ञाय कर्माण्यारभते भिषक् ।
अप्यौषधिविधानज्ञस्तस्यसिद्धिर्यदृच्छया ॥
यस्तु रोग विशेषज्ञः सर्व भैषज्य कोविदः ।
देशकालप्रमाणज्ञस्तस्य सिद्धिरसंशयम् ॥
अविज्ञाय रुजं सम्यङ्, मोहादारभते क्रियाः ।
विधानज्ञोऽथ शास्त्रज्ञोन तत् सिद्धिः प्रजायते ॥
निदानं रोग विज्ञान भेषजानां गुणागुणम् ।
विज्ञाय कुरुते यस्तु तस्य सिद्धिर्न दूरतः ॥
आदावेव रुजां ज्ञानं साध्यासाध्यं विचक्षणः ।
याप्यं सर्वरुजाञ्चैव ततः कुर्य्यात प्रतिक्रियाम् ॥

पहले वैद्य रोगकी परीक्षा करे ; पीछे औषधि की परीक्षा करे।

जब रोग और औषधि की परीक्षा हो जाय, तब वैद्य ज्ञान-पूर्वक चिकित्सा आरम्भ करे।

जो वैद्य रोगके समझे बिना ही काम शुरू कर देते हैं, उनके औषधि-प्रयोगमें प्रवीण होने पर भी, सिद्धि होती भी है और नहीं भी होती है।

जो रोगों के भेदों को जानता है, जो सब तरह की दवाओंके जानने में कुशल होता है, जो देश, काल और मात्रा के प्रमाण को जानता है, उसकी सिद्धि निश्चय ही होती है।

हारीत मुनि कहते हैं—जो वैद्य रोगको बिना जाने क्रिया—चिकित्सा का आरंभ कर देता; है वह विधान और शास्त्रका जानने वाला होने पर भी, सिद्धि प्राप्त नहीं करता।

निदान और रोग, औषधियों के गुण और दोष—इनको समझ कर, जो वैद्य चिकित्सा करता है, उसकी सिद्धि शीघ्र होती है।

सबसे पहले वैद्य को रोग और रोगके साध्यासाध्यत्व को जानना चाहिए। इनके जान लेनेके बाद चिकित्सा करनी चाहिये।

रोग-परीक्षा किस तरह होती है।

किसी ने रोग-परीक्षा करने की कोई तरकीब लिखी है, किसी ने कोई; पर घूमघाम कर सबका मतलब एकही है। प्रत्येक आचार्य्य का मत जानने से जानकारी ज़ियादा बढ़ती है; कठिनाइयाँ हल हो जाती हैं; इसलिये हम नीचे तीन-चार ऋषियों का मत लिखते हैं:—

"चरक"में लिखा है:—

त्रिविधं खलु रोगविशेष ज्ञानं भवति।
तद्यथा आप्तोपदेशः प्रत्यक्षमनुमानञ्चेति॥

आप्तोपदेश, प्रत्यक्ष और अनुमान,—इन तीन प्रकार के उपायों से अलग-अलग रोगों का ज्ञान होता है।

हारीतने कहा है।

दर्शन स्पर्शन प्रश्नै रोगज्ञानं त्रिधामतम्।
मुखाक्षिदर्शनात् स्पर्शाच्छीतादि प्रश्नतः परम्॥

देखने, छूने और पूछने, इन तीन उपायों से रोग का ज्ञान होता है। मुँह और आँखों के देखने से, गर्म और ठण्डा छूकर जानने से और रोगी से रोग की बातें पूछने से रोग का ज्ञान होता है।

धन्वन्तरि जी सुश्रुत से कहते हैं:—

........आतुर गृहमभिगम्योपविश्यातुरमभि
पश्येत् स्पृशेत् पृच्छेच, त्रिभिरेतैर्वज्ञानोपायै रोगाः

...बहुत से आचार्य्यों का यह मत है कि, रोगी के घर जाकर वैद्य बैठे, रोगी को देखे, हाथ से छुए और रोग का हाल पूछे। इन तीन उपायों से रोग का ज्ञान हो जाता है; परन्तु मेरे मत में यह बात ठीक नहीं है। वह कहते हैं, मेरी राय में—

षड्विधोहि रोगाणां विज्ञानोपायः।
तद्यथा पंचभिः श्रोत्रादिभिः प्रश्नेनचेति॥

रोगों के जानने के छह उपाय हैं। कान, नाक, जीभ, आँख और त्वचा (चमड़ा),—इन पाँच इन्द्रियों तथा पूछने से रोगों का ज्ञान होता है।

वाग्भट्टजी कहते हैं—

दर्शनस्पर्शन प्रश्नैः परीक्षेताथ रोगियाम्।
रोगं निदान प्राग्रूप लक्षणोपशयाप्तिभिः॥

वैद्य देखने, छूने और पूछने से रोगियों की परीक्षा करे तथा निदान पूर्वरूप, रूप, उपशय और सम्प्राप्ति से रोगों की परीक्षा करे।

पाठक! देख लिया सबका मत। निदान-पञ्चकसे रोग जाननेकी विधिको हम विस्तार-पूर्वक अभी पीछे ही लिख आये हैं। यहाँ हम "चरक" और "सुश्रुत" में लिखी हुई तरकीबों से रोग-परीक्षा को अच्छी तरह समझाते हैं। "सुश्रुत" में लिखी हुई छह प्रकार की परीक्षायें, "चरक" में लिखे हुए अनुमान और प्रत्यक्ष के अन्तर्गत हैं और "चरक" के आप्तोपदेश के अन्तर्गत निदान-पञ्चक है:—

"माधव-निदान" में लिखा है:—

> निदानं पूर्वरूपाणि रूपाण्युपशयस्तथा।
> सम्प्राप्तिश्चेति विज्ञानं रोगाणां पञ्चधा स्मृतम्॥

निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय और सम्प्राप्ति—इन पाँचों द्वारा रोगों का ज्ञान होता है।

बस, इस "निदान पञ्चक" को ही आप "आप्तोपदेश" अर्थात् त्रिकालज्ञ महात्माओं का उपदेश समझिये। इन पाँचों से रोगोंका ज्ञान हो सकता है; मगर प्रत्यक्ष और अनुमान की सहायता बिना कुछ भी ज्ञान नहीं हो सकता।

हम शास्त्रोपदेश से जानते हैं कि ज्वर में शरीर तपने लगता है; मगर बिना शरीर को छूए, हमें शरीर के गरम होने का निश्चय कैसे हो सकता है? हम जानते हैं कि पीलिये में रोगी के नेत्र नखादि पीले हो जाते हैं; किन्तु बिना आँखोंसे देखे, हमें कैसे मालूम हो सकता है कि, रोगीके नेत्र, नख, मूत्र प्रभृति पीले हो गये हैं? हम शास्त्रोपदेश से जानते हैं कि, अमुक रोग में आँतें गूँजती है; मगर बिना कानों से सुने हमें पक्का निश्चय कैसे हो सकता है? हम शास्त्र पढ़नेसे जानते हैं कि, चेचक अथवा मोती-ज्वरमें रोगीके शरीरमें एक प्रकार की बदबू आया करती है; पर बिना नाक से सूँघे हमें इस बातका पक्का निश्चय कैसे हो सकता है? हम जानते हैं कि, रक्तपित्तरोग में रोगी का रक्त अशुद्ध हो जाता है। रोगी का खून ख़राब हुआ है या नहीं, इसका निश्चय तभी हो, जब हम जीभ से चखकर देखें। वैद्य ऐसा कर नहीं सकता, इसलिये सन्देह होने पर रोगी का खून कव्वों या कुत्तों के आगे डाला जाता है। अगर कुत्ते या कव्वे उस खून को पी जाते हैं; तो खून शुद्ध समझा जाता है; यदि नहीं पीते हैं, तो अशुद्ध समझा जाता है। यहाँ हमें अपनी नहीं तो कुत्तों और कव्वों की जीभ से काम लेनाही पड़ा। इस तरह कान, आँख, नाक, जीभ और त्वचा, इन पाँचों इन्द्रियोंसे काम लेना पड़ता है।

अब रहा "पूछना" ज्वर में रोगी के मुख का स्वाद कड़वा या फीका हो जाता है। इस बातको हम शास्त्रज्ञान होनेसे जानते तो हैं, मगर अमुक रोगी के मुख का स्वाद कैसा है? उसे भूख लगती है या नहीं? इन बातों का हमें रोगी से पूछे बिना कैसे ज्ञान हो सकता है? मतलब यह है कि, रोगका प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें पाँचों इन्द्रियों से काम लेना होता है और जिस विषय का ज्ञान हमें हमारी पाँचों इन्द्रियों से नहीं हो सकता, उसका ज्ञान पूछने या प्रश्न करने से होता है। "सुश्रुत"में रोग जानने के यही छै उपाय लिखे हैं।

एक तरह से तो हम इन छहोंको ऊपर समझा चुके हैं; किन्तु दूसरे तौर पर फिर समझाते हैं, जिससे मन्दबुद्धि भी आसानीसे इस ज़रूरी विषय को समझ जायँ।

१ कान।

कानों से सुनकर ही हम जान सकते हैं कि, रोगी को डकारें आ रही हैं, आँतोंमें वायु गड़गड़ शब्द कर रहा है, रोगी आन-तान बक रहा है, कण्ठ में घरघर-घरघर कफ बोल रहा है और स्वर भङ्ग हो गया है इत्यादि।

२ नाक।

नाक से ही हमें दुर्गन्ध और सुगन्ध का ज्ञान होता है। नाक से सूँघते हैं, तब मालूम होता है कि, रोगी के शरीर में एक अपूर्व्व सुगन्ध या दुर्गन्ध आ रही है। यह गन्ध अरिष्ट-सूचक है या स्वाभाविक है। इसके जानने के लिये अथवा ज़ख़्मों की बदबू वगैरः जानने के लिये नाक से ही काम लेना होता है।

३ जीभ।

जीभसे रक्त-पित्त के रोगी के रुधिर का हाल तथा प्रमेह-रोगी के पेशाब का हाल मालूम होता है। रक्तपित्तवाले के रक्त को यदि कव्वे या कुत्ते न चाटें, तो निश्चय ही ख़राब है, ऐसा समझते हैं। मधु-मेही के

पेशाब पर चींटियाँ लगें, तो पेशाब मीठा है, ऐसा समझते हैं। ऐसे-ऐसे रोगों में जिह्वा से ही रोग का ज्ञान होता है।

४ आँख ।

आँखों से देखनेपर ही मालूम होता है कि, रोगीका शरीर मोटा है या दुबला है; आकृति अच्छी है या बुरी; सूजन मुख पर है या पैरों पर; आँखें भीतर घुस गई हैं या नहीं; आँखें सफ़ेद हैं या पीली; शरीर का रङ्ग कैसा है; नाक का बाँसा मोटा हो गया है या सूख गया है इत्यादि ।

५ त्वचा ।

त्वचा या चमड़े से छूकर ही हम जानते हैं कि, रोगी का बदन गर्म है या ठण्डा; शरीर चिकना है या खरदरा, कड़ा है या नर्म; सूजन शीतल है या गर्म इत्यादि ।

६ प्रश्न ।

प्रश्न करने या पूछनेसे ही मालूम होता है कि, मुँह का ज़ायका कैसा है? भूख लगती है या नहीं? कहाँ दर्द होता है? पेटमें दर्द भोजन पचने के बाद या पचते समय अथवा खाते ही होता है? चार-पाईसे उठकर पाख़ाने तक जा सकते हो या नहीं? मासिक-धर्म ठीक होता है या नहीं? पाख़ाना साफ़ होता है या नहीं? कितने दिनों से रोग है? इत्यादि।

अनुमान ।

"सुश्रुत"मे कही हुई छहों रोग जानने की तरकीबे ऊपर बता चुके। अब रहा "चरक" का अनुमान, उसे भी समझिये ।

युक्ति सापेक्ष तर्क को "अनुमान" कहते हैं; अथवा तर्क-वितर्क द्वारा अक़्ल के ज़ोर से जो अन्दाज़ लगाया जाता है, उसे "अनुमान" कहते हैं। रोगी के शरीर के रस का स्वाद इन्द्रियों का विषय है; तोभी उसका पता अनुमान से ही लगाया जाता है; क्योंकि रस का ज्ञान प्रत्यक्ष कदापि नहीं हो सकता। शरीर पर जूँएँ चलती देखकर अक़्ल

से समझ लिया जाता है कि, शरीरका रस बिगड़ गया है। स्नान करने या चन्दन लगाने पर भी मक्खियों को शरीर पर बैठते देख कर अनुमान कर लिया जाता है कि, शरीर का रस मीठा हो गया है; इसलिये यह अरिष्टसूचक है; प्राणी मर जायगा। पेशाब पर चींटियों को लगते देखकर मधुमेह होने का अनुमान कर लिया जाता है। आकाश में बादल देखकर वर्षा होने का अनुमान कर लिया जाता है।

ये नीचे लिखे हुए विषय और अन्यान्य विषय, अनुमान द्वारा, परीक्षा करने से जाने जाते हैं—परिपाक-शक्ति से जठराग्निका, परिश्रम से बलका, मूर्खता से मोह का, दूसरे को सताने से क्रोध का, दीनता से शोक का, प्रसन्नता से हर्ष का, सन्तोष से प्रीति का, दुःख से भय का, अविषाद से धीरज का, उत्साह से पराक्रम का, सङ्कोच से लज्जा का, विनय से शीलका, मनके चलायमान न होनेसे विज्ञान का, उपशय और अनुपशय से छिपे लक्षणों वाले रोगों का, अरिष्टचिह्नों से आयुक्षय का, शुभकर्मों में मन लगाने से होनेवाले मङ्गल का अनुमान किया जाता है।

गदाक्रान्तस्य देहस्य स्थानान्यष्टौ परीक्षयेत् ।
नाड़ी मूत्र मलं जिह्वां शब्द स्पर्श दृगाकृतिम् ॥

रोगी के शरीर के आठ स्थानों की परीक्षा करनी चाहियेः—

(१) नाड़ी, (२) मूत्र, (३) मल, (४) जिह्वा, (५) शब्द, (६) स्पर्श (७) नेत्र, और (८) आकृति।

नाड़ी-परीक्षा ।

यद्यपि चरक, सुश्रुत, वाग्भट और हारीत-संहिता प्रभृत ऋषि-मुनी-प्रणीत ग्रन्थों में कहीं भी नाड़ी-परीक्षा का ज़िक्र नहीं है, तोभी आजकल इसकी ऐसी चाल हो गई है कि, जिस रोगी को देखिये वही वैद्य के सामने पहले अपना हाथ कर देता है। यदि वैद्य महाशय नाड़ी-ज्ञान में कुछ समझते हैं, रोगी के रोग का हाल नाड़ी देखकर बता देते हैं; तब तो रोगी की श्रद्धा वैद्य महाशय में हो जाती है और यदि वे नाड़ी छूकर कुछ न बता सकें, तो रोगी उनको वैद्य नहीं समझता। इसलिए प्रत्येक वैद्य को कुछ न कुछ नाड़ी-परीक्षा अवश्य सीखनी चाहिये।

नाड़ी-परीक्षा से वात, पित्त और कफ यानी सर्दी, गर्मी तथा साध्य-असाध्यका ज्ञान होता है; मगर इससे सारेही रोगोंका ज्ञान हो जाय, यह मिथ्या बात है। हाँ, नाड़ी-ज्ञानवाले को रोगी की मृत्यु की अवधि खूब अच्छी तरह मालूम हो जाती है। यूनानी इलाज करने

वाले हकीम लोग भी नाड़ी यानी नब्ज़ देखा करते हैं। नाड़ी-ज्ञान पूर्ण होने पर भी, केवल नाड़ी-परीक्षा पर निर्भर रहना ठीक नहीं है, क्योंकि यदि इस परीक्षा में भूल हो गई, तो रोगी के प्राणनाश की सम्भावना हो जायगी।

इसलिये पहले "निदान पञ्चक" से रोग की परीक्षा करके नाड़ी-परीक्षा करनी चाहिये। आप्तोपदेश, प्रत्यक्ष और अनुमान द्वारा रोग का ज्ञान हो जाने पर, यदि इनमें कोई भूल होगी तो नाड़ी से मालूम हो *जायगी और यदि नाड़ी-परीक्षा में कोई भूल होगी, तो उक्त तीन तरह* की परीक्षाओं से मालूम हो जायगी। इसीलिए "वैद्यविनोद" में कहा है :—

रोगज्ञानाय कर्त्तव्यं नाड़ीमूत्रपरीक्षणम्॥

रोगके जाननेके लिए वैद्य नाड़ी और मूत्रकी परीक्षा करे। "वैद्य विनोद" के कर्त्ताका यह आशय है, कि निदान आदि पाँच प्रकार से रोग का ज्ञान होने पर, वैद्य नाड़ी और मूत्र-परीक्षा करे, क्योंकि उन्होंने "निदान-पञ्चक" लिखकर पीछे इसी ढँग से इसको लिखा है। "योग-चिन्तामणि" के लेखकने लिखा है :—

नाड्यामूत्रस्य जिह्वायां, लक्षणं यो न विंदते।
मारयत्याशु वै जन्तून स वैद्यो न यशो लभेत्॥

जो वैद्य नाड़ी, मूत्र और जीभकी परीक्षा नहीं जानता ; वह मनुष्यों का तत्काल नाश करता है ; ऐसे वैद्य की यश नहीं मिलता।

स्त्रीके बाएँ और पुरुष के दाहिने हाथ की नाड़ी देखी जाती है।

स्त्रियोंकी बायें हाथकी नाड़ी और पुरुषोंके दाहने हाथकी नाड़ी देखनी चाहिये। इसका कारण यह है कि, स्त्रियों की नाभि में कूर्म नाड़ी का मुख ऊपर और पुरुष की का नीचे है। इसीसे स्त्रियों की बायें

हाथ की और पुरुषों की दाहिने हाथ की नाड़ी द्वारा शरीर में दुःख-सुखका ज्ञान होता है।

नाड़ी देखने में नियम।

सोते हुए की, कसरत करके आये हुए की, तेल मर्दन कराकर चुका हो उसकी, भूखेकी, प्यासेकी, आग के सामने से उठा हो उसकी, भोजन पर बैठता हो उसकी, भोजन करके चुका हो उसकी, धूप में से आया हो उसकी, अथवा किसी प्रकार की मिहनत करके चुका हो उसकी, नाड़ी न देखनी चाहिये। यदि इन नियमों के विरुद्ध नाड़ी देखी जाती है, तो रोग का ठीक हाल मालूम नहीं होता।

तीन बार नाड़ी पर हाथ रख-रखकर वैद्य छोड़ दे, यानी तीन बार नाड़ी देखनी चाहिये, तब रोग का पक्का निश्चय करना चाहिये।

नाड़ीसे क्या-क्या मालूम होता है?

वात, पित्त, कफ, द्वन्दज, त्रिदोष, सन्निपात और साध्य-असाध्य ये सब नाड़ीसे मालूम होते हैं।

कहाँ-कहाँ की नाड़ियाँ देखी जाती हैं?

स्त्रीके बायें हाथ की और पुरुष के दाहिने हाथकी नाड़ी देखी जाती है, किन्तु जब रोगी मरणासन्न होता है, हाथ की नाड़ी हाथ नहीं आती या उससे साफ पता नहीं चलता ; तब पैरोंके टखने, नाक, कण्ठ, तथा लिंगेन्द्रिय की नाड़ी भी देखी जाती है।

नाड़ी देखने की रीति।

वैद्य और रोगी को नाड़ी देखते और दिखाते समय किस तरह बैठना उठना प्रभृति काम करने चाहियें; इस विषय में भी "योगचिन्तामणि" में लिखा है:—

स्थिरचित्तः प्रसन्नात्मा मनसा च विशारदः।
स्पृशेदंगुलिभिर्नाड़ीं जानीयाद दक्षिणे करे॥

त्यक्तमूत्रपुरीषस्य सुखासीनस्य रोगिणः।
अन्तजानुकरस्यापि सम्यक् नाड़ीं परीक्षयेत् ॥

वैद्य स्थिरचित्त और प्रसन्न होकर, तीन अँगुलियों से दाहिने हाथ की नाड़ी देखे।

जो रोगी मल मूत्र त्याग कर चुका हो, सुखसे बैठा हो, दोनों जानुओं के बीचमें जिसने अपना हाथ रख रक्खा हो, उसकी नाड़ी को वैद्य अच्छी तरह देखे।

एक और पुस्तक में लिखा है,—वैद्य को चाहिये कि, आप मल मूत्र आदि ज़रूरी कामों से फ़ारिग़ होकर, चित्त को ठिकाने करके, सुख से अपने आसन पर बैठकर रोगीकी नाड़ी देखे। वैद्य यदि शौचादिक से निपटा हुआ न होगा, वैद्य का चित्त और कहीं होगा तथा रोगी पाख़ाने पेशाब को रोके हुए होगा, अथवा भूखा-प्यासा चलकर आया हुआ, कसरत या मिहनत करके उठा होगा, तो हज़ार नाड़ी देखने पर भी कुछ न मालूम होगा ; क्योंकि नाड़ी योग का विषय है। यह चित्तकी एकाग्रता (*Concentration of mind*) चाहती है और भूखे-प्यासे, थकेहुए, आग के पास से उठकर आये हुए रोगी की नाड़ी विकृत हो जाती है; यानी जो चाल होनी चाहिये, उससे विपरीत हो जाती है।

जबकि वैद्य और रोगी दोनों ऊपर लिखे हुए नियमानुसार हों, तब वैद्य अपने बायें हाथ से रोगी का पहुँचा या कलाई दबाकर, दाहिने हाथकी तीन अँगुलियों से, अँगूठे की जड़ में, वायुकी नाड़ीको देखे ; क्योंकि हाथ के अँगूठे के नीचे धमनी नाड़ी जीव की साक्षी देनेवाली है। उसी धमनी की चेष्टा से विद्वान् मनुष्य के सुख दुःखको जान जाते हैं। किसीने यह भी कहा है, दाहिने हाथ की तर्जनी, मध्यमा और अनामिका उँगलियों को पहुँचे पर रख कर, बायें हाथ से रोगी के उसी हाथ की कुहनी की नाड़ी को दबाना चाहिये। याद रखना चाहिये, पहुँचे में तर्जनी के नीचे वायु की नाड़ी, उससे दूसरी पित्तकी और तीसरी कफ की नाड़ी है।

होनहार रोगों के जानने के लिये स्वस्थ मनुष्य की नाड़ी-परीक्षा करनी चाहिए। प्रथम पित्तकी, बीच में कफ की और अन्त में वादी की नाड़ी चलती है। रावणकृत पुस्तक में लिखा है:—

आदौ वातवहा नाड़ी मध्ये वहति पित्तला।
अन्ते श्लेष्मविकारेण नाड़िकेति त्रिधा मता॥

आदि में वात की नाड़ी, बीचमें पित्त की नाड़ी और अन्तमें कफ की नाड़ी—ये तीन प्रकार की नाड़ी मानी गई हैं।

रोगी के वात अधिक हो, तो वैद्य की तर्जनी अँगुलीके नीचे नाड़ी फड़कती है; पित्त अधिक हो, तो मध्यमा अँगुली के नीचे; अगर कफ अधिक हो तो अनामिका के नीचे नाड़ी फड़कती है। अगर वात-पित्त का ज़ोर हो, तो तर्जनी और मध्यमा के बीच में ; वात-कफ का ज़ोर हो, तो मध्यमा और अनामिका के बीच में नाड़ी फड़कती है। अगर सन्निपात हो, तो तीनों अँगुलियों के नीचे नाड़ी मालूम होती है।

नोट—हाथकी नाड़ियों का हाल जानने के लिए, उधर दिये हुए चित्र में हाथकी नाड़ियों को देखो और समझो।

नाड़ी की चाल।

वात का कोप होने से नाड़ी जोंक और सर्प की चालसे चलती है। पित्त का कोप होने से कुलिङ्ग, कव्वा और मैंड़क की चालसे चलती है; कफका कोप होने से नाड़ी हंस और कबूतर की चाल से चलती है। किसीने लिखा है—वायु के कोप से नाड़ी की चाल टेढ़ी होती है ; पित्त-कोप से नाड़ी तेज़ चलती है और कफ के कोप से नाड़ी मन्दी चलती है। किसी ने लिखा है—वायुका ज़ोर होने से टेढ़ी, पित्त का ज़ोर होने से चञ्चल और कफ का ज़ोर होने से स्थिर चाल से नाड़ी चलती है। अच्छी तरह से समझ में आ जाने के लिए हमने एक ही बात तीन तरह लिखी है। तीनों बातों का आशय प्रायः एक ही है।

दो दोषों की अधिकता में और चाल हो जाती है। वात और पित्त का ज़ोर होने से नाड़ी कभी सर्पकी सी चाल से चलती है, कभी मेंडक की चालसे ; वायु और कफ का ज़ोर होने से नाड़ी कभी सर्प की सी और कभी हंस की सी होती है। इसी तरह पित्त और कफ का कोप होने से नाड़ी कभी मेंडक की तरह-फुदक-फुदक कर चलती है और कभी हंस या मोर की तरह धीरे-धीरे क़दम उठाती हुई चलती है।

त्रिदोष की नाड़ी।

तीनों दोषों की अधिकता या ज़ोर होने पर नाड़ी लवा, तीतर और बटेर की सी चाल से चलती है, अथवा यों समझिये कि वायु के कोप के कारण सर्प की सी चाल से, पित्त के कोप से मेंडक की सी चाल से और कफ के कोप से हंसकी सी चाल से चलती है। अगर पहले नाड़ी के छूते ही, नाड़ी की चाल सर्प की सी, उसके बाद मेंडक की सी, उसके बाद कफ की सी चाल मालूम हो, तो रोग को साध्य समझना चाहिये। अगर इसके ख़िलाफ हो ; यानी पहले सर्पकीसी चाल, उसके बाद हंस की सी चाल अथवा हंसकी चाल के बाद मेंडक की सी चाल हो, तो रोगको असाध्य समझना चाहिये।

कठफोड़ा पक्षी ठहर-ठहर कर बड़े ज़ोर से अपना मुँह काठ पर दे दे मारता है ; उसी तरह सन्निपात की नाड़ी ठहर-ठहर कर ठोकर मारती हुई चलती है।

ज्वर के पहले नाड़ी की चाल।

ज्वर चढ़ने के पहले नाड़ी दो तीन बार मेंडक की सी चाल से चलती है। यदि वही चाल बराबर बनी रहे, तो समझना कि "दाह ज्वर" होगा।

सन्निपात ज्वर होने के पहले, नाड़ी पहले तो बटेरकी तरह, पीछे तीतर की तरह और अन्त में बत्तक की तरह चलती है।

ज्वर में नाड़ी की चाल।

ज्वर का वेग होने पर नाड़ी गरम और वेगवान होती है; यानी तेज़ी से चलती है। किन्तु इस बात को भी याद रखना चाहिये कि, मैथुन कर चुकने पर अथवा मैथुनकी रातके सवेरे तक और अत्यन्त भोजन कर लेने पर भी नाड़ी गरम रहती है: लेकिन इसमें ज्वरकी सी तेज़ी नहीं होती।

वातज्वर में नाड़ी।

साधारणतया वात ज्वर में नाड़ी की चाल वैसी ही होती है, जैसी की वातकी अधिकता में होती है, जिसके लक्षण ऊपर लिख आये हैं। हाँ, गरमी में जब वायु संचित होता है, भोजन पचने के समय, दोपहर या आधीरात को यदि वात ज्वर होता है, तो नाड़ी धीमी-धीमी चलती है। वर्षा-कालमें जब वायु का कोप होता है, भोजन पचने के बाद और पिछली रात को जब वायु का समय होता है, वात-ज्वर में नाड़ी जल्दी-जल्दी चलती है।

पित्तज्वर में नाड़ी।

पित्तज्वर में नाड़ी मेंडक की तरह उछल-उछल कर चलती है और बड़ी तेज़ी से चलती है। किन्तु शरद् ऋतु, भोजन पचने के समय, दोपहर और आधी रात को (ये पित्त के समय हैं) नाड़ी इतनी तेज़ी से चलती है कि, बयान नहीं कर सकते। ऐसा मालूम होता है, मानो नाड़ी मांस को चीर कर बाहर निकल आवेगी।

कफज्वर में नाड़ी।

कफज्वर में नाड़ी पहले लिखी गई हंसकी सी चाल से चलती है। कफ का समय होने पर यानी वसन्त, प्रातःकाल, संध्या के बाद तथा भोजन करते-करते कफ की नाड़ी उसी तरह हंस की चाल से चलती है और छूने से ऐसी मालूम होती है, जैसी गरम पानी में भीगी हुई रस्सी ठण्डी जान पड़ती है।

वातकफ ज्वर।

वातकफज्वर में नाड़ी मन्दी-मन्दी चलती है और किसी क़दर गर्म रहती है। अगर इस ज्वर में कफका अँश कम और वायु का अँश ज़ियादा रहता है, तो नाड़ी रूखी और बराबर तेज़ चलती रहती है।

वातपित्त ज्वर।

वातपित्त ज्वर में नाड़ी चञ्चल, स्थूल और कठिन रहती है और झूम-झूम कर चलती सी जान पड़ती है।

पित्तकफ ज्वर।

पित्तकफ ज्वर में नाड़ी नर्म चलती है, कभी अधिक ठण्डी और कभी कम ठण्डी और पतली रहती है।

त्रिदोष ज्वर।

त्रिदोष की अधिकता में नाड़ी की जैसी चाल होती हैं, सन्निपात ज्वर में भी वैसी ही चाल रहती है। त्रिदोष के बुख़ार को सन्निपात ज्वर कहते हैं। इस ज्वर में मनुष्य बहुत जल्दी मरता है। कोई विरला ही भाग्यशाली बचता है।

त्रिदोष के बुख़ार में, अगर तीसरे पहर के समय नाड़ी की असली टेढ़ी चाल, पीछे पित्तकी चञ्चल चाल, इसके पीछे कफ की स्थिर चाल दीखे, तो रोग को साध्य समझो; यदि इसके विरुद्ध दीखे, तो रोग को असाध्य समझो।

अगर नाड़ी की चाल कभी सूक्ष्म और कभी बे-मालूम, कभी इधर कभी उधर घूमती जान पड़े—अथवा अँगूठेके नीचे कभी नाड़ी चलती जान पड़े और कभी चलती ही न जान पड़े, ग़ायब हो जाय, तो आप रोग को असाध्य समझ लो। किन्तु याद रक्खो, बोझा उठाने, डरने और रञ्ज करने या बेहोश होने पर भी नाड़ी की चाल ऐसी ही हो जाती है; मगर उस अवस्था में रोग को असाध्य मत समझना। सवर्

अधिक इस बात का ध्यान रक्खो कि, जब तक नाड़ी अँगूठे की जड़से ग़ायब न हो जाय, तब तक किसी रोग को भी असाध्य मत समझो ।

अन्तर्गत ज्वरमें नाड़ी ।

शरीर के भीतर ज्वर होने से रोगीका शरीर छूने में शीतल मालूम होता है, किन्तु नाड़ी अत्यन्त गर्म मालूम होती है ।

मिश्रित ।

कामातुरता, क्रोध, भारी चिन्ता और भयमें नाड़ी क्षीण चलती है ।

मन्दाग्निवाले और धातुक्षीणवालेकी नाड़ी मन्दी चलती है ।

रक्तकोप में नाड़ी कुछ गरम और भरी सी होती है ।

आमके रोगों में नाड़ी भारी होती है । जिनकी अग्नि दीप्त होती है, उनकी नाड़ी हलकी और ठीक चाल पर जल्दी-जल्दी चलती है ।

सुखी आदमी की नाड़ी स्थिर चाल से चलती और बलवान होती है ।

भूखे आदमी की नाड़ी चपल और अघाये की स्थिर होती है ।

दो दोषों का कोप होने पर, नाड़ी कभी मन्दी चलती और कभी तेज़ी से चलती है । ऐसे मौक़े पर नाड़ी के वेग से, बारीकी से विचार करके, कुपित हुए दोनों दोषोंका पता लगाना चाहिये ।

अँगूठे से ऊपर की नाड़ी यदि समान चाल से चले, तो समझ लो कि नाड़ी में कोई दोष नहीं है ।

ज्वर चढ़ने के समय नाड़ी गर्म और तेज़ चलती है । भय, क्रोध, चिन्ता और घबराहट में भी गर्म और तेज़ चलती है ।

कफ और प्रदर रोग में नाड़ी स्थिर होती है ।

अजीर्ण रोगमें नाड़ी कठिन और भारी हो जाती है ।

भूख लगने पर नाड़ी प्रसन्न, हलकी और जल्दी चलने वाली होती है ।

प्रमेह, बवासीर, मल-वृद्धि और अजीर्ण में नाड़ी जल्दी-जल्दी चलती है ।

गर्भवती होने पर नाड़ी भारी और वादी को लिए हुए होती है ।

वात-ज्वर में नाड़ी टेढ़ी और चपलता-पूर्वक चलती है और छूनेसे शीतल मालूम होती है ; किन्तु पित्त ज्वर में सीधी, लम्बी और जल्दी-जल्दी दौड़ती चलती है ।

अगर नाड़ी देखने के समय पहले मन्दी मालूम हो, पीछे धीरे-धीरे प्रचण्ड वेग से चलने लगे, तो समझ लो कि, जाड़े का बुख़ार या कम्पज्वर होगा । ऐसी नाड़ी से इकतरा, तिजारी या चौथैया ज्वर आता है । भूत प्रेतकी बाधा या इकतरामें नाड़ीका चलना मालूम नहीं होता ।

सोते हुए आदमीकी नाड़ी ज़ोरसे फड़कती है ।

रक्तपित्त रोगमें नाड़ी मन्दी, कठिन और सीधी चलती है ।

कफ खाँसी में नाड़ी स्थिर और मन्दी चलती है ; किन्तु श्वास रोगमें नाड़ी की चाल तेज़ हो जाती है ।

राजयक्ष्मा रोगमें नाड़ी की चाल हाथी की चाल के समान हो जाती है ।

नशेवाले की नाड़ी कठिनताके साथ सूक्ष्म गति से चलती है और चारों ओर से भारी मालूम होती है ।

बवासीर में नाड़ी स्थिर और मन्दी तथा कभी टेढ़ी और कभी सीधी चलती है ।

अतिसार रोग में नाड़ी ऐसी मन्दी हो जाती है, जैसे ठण्ड के मौसम में जोंक हो जाती है ।

मूत्राघात में नाड़ी बारम्बार टूटती हुई फड़कती है ।

पाण्डु या पीलिये में नाड़ी चञ्चल और तीक्ष्ण हो जाती है । कभी जान पड़ती है और कभी नहीं जान पड़ती ।

कोढ़ में नाड़ी कठिन चलती है । उसकी चाल भी एक नहीं रहती ; कभी चलती है, कभी नहीं ।

असाध्य नाड़ी।

रोग असाध्य होनेपर कभी नाड़ी मन्द, कभी तेज़ और कभी चलते-चलते खण्डित होकर यानी टूट कर चलने लगती है; यानी कभी सूक्ष्म, कभी स्थूल, इस तरह घड़ी-घड़ी में चाल बदलकर चलने लगती है।

असाध्य नाड़ी चमड़े के ऊपर से दीखने लगती है। नाड़ी की चाल अत्यन्त चञ्चल हो जाती है और कुछ दबी सी रहती है। हाथ में आती है और बिछल जाती है और अत्यन्त चञ्चल हो जाती है।

जो नाड़ी ठहर-ठहर कर चलती है; यानी चलती है, ठहर जाती है और फिर चलती है, वह प्राणनाशक होती है। अति शीतल और अत्यन्त क्षीण नाड़ी भी प्राण नाश करती है।

जिस रोगीकी नाड़ी बहुत ही सूक्ष्म और बहुत हो शीतल होगी, वह किसी तरह न जीवेगा।

जिस रोगी की नाड़ी कभी कैसी और कभी कैसी चलती है और त्रिदोष-युक्त होती है, वह शीघ्र ही मर जाता है।

जो नाड़ी रुक-रुक कर चलती है, वह प्राणनाश करती है। इसी तरह जो एकदम से तेज़ हो जाती है अथवा एकदम से शीतल हो जाती है, वह निश्चय ही प्राण नाश करती है।

रोगी प्रलाप करता हो, आनतान बकता हो, प्रलाप के शेष में नाड़ी शीघ्रगति से चलती हो, दोपहर को या सन्ध्या-समय आग के समान ज्वर हो जाय, तो वह रोगी दिन-भर ज़ीवे; दूसरे दिन तो अवश्य ही मर जाय।

जिसकी नाड़ी स्थिर हो और मुँह में बिजलीकीसी दमक दीखे, वह एक दिन जीवे, दूसरे दिन मर जावे।

सन्निपात में जिसकी नाड़ी मन्दी-मन्दी, टेढ़ी-मेढ़ी, घबराहट लिये, काँपती हुई चाल से रुक रुक कर चले, कभी नाड़ी का फड़-

कना मालूम ही न हो, नष्ट हो जाय या जो अपने असल मुक़ाम से हट जाय, देखनेवाले की अँगुलियों को न मालूम पड़े और फिर ज़रा देर में ठिकाने पर आ जाय या मालूम पड़ने लगे—ऐसे लक्षण वाली नाड़ी सन्निपात-रोगी को मार डालती है।

कलाई के अगले भाग में नाड़ी तेज़ी से चले, कभी शीतल हो जाय, चिपचिपा पसीना आवे, ऐसी नाड़ी सात दिन में रोगीको मार देती है।

शरीर शीतल हो, मुँह से साँस चले, नाड़ी अत्यन्त गर्म हो और तेज़ी से चले, तो रोगी पन्द्रह दिनमें मरे।

जब नाड़ी रुक-रुक कर चलने लगे,अथवा एकदम से ऐसी हतवेग हो जाय कि, उसका फड़कना मालूम ही न पड़े, तो रोगी को एक दिन में मरा समझो।

अगर नाड़ी कभी मन्दी चले और कभी ज़ोरसे चले, तो उसे दो दोषोंवाली समझो। अगर दो दोषोंवाली नाड़ी भी अपने स्थानसे भ्रष्ट हो जाय, यानी कभी कहीं और कभी कहीं जा चले, तो समझ लो कि रोगी मर जायगा।

यदि किसीकी नाड़ी थोड़ी देर तेज़ चल कर फिर धीमी हो जाय, तथा शरीर में शोथ न हो तो उस रोगी की मृत्यु सातवें या आठवें दिन समझना।

जिसकी नाड़ी अँगूठे की जड़ से या अपने स्थान से आधे जौ भर हट जाय, तो उसकी मृत्यु तीन दिन में हो।

सन्निपात ज्वरमें जिसका शरीर बहुत गर्म हो, पर नाड़ी अत्यन्त शीतल हो, तो उसकी मृत्यु तीन दिन बाद समझनी।

अगर नाड़ी की चाल भौंरे की तरह हो ; यानी दो-तीन बार बहुत तेज़ चल कर, फिर थोड़ी देर को ग़ायब हो जाय, फिर उसी तरह तेज़ चलने लगे। यदि बारबार ऐसा जान पड़े, तो कह दो की रोगी एक दिन में मरेगा।

किसी रोगी के हृदय में जलन हो और उसकी नाड़ी अपने स्थान—अँगूठे के मूल—से खिसक कर थोड़ी-थोड़ी देर में चलती हो, तो जब तक हृदयमें जलन है तभी तक जीवन है। जलन की शान्ति होते-होते ही रोगी मर जायगा।

मरे हुए के चिह्न।

नसों और नाड़ियों का फड़कना बन्द हो जाय, इन्द्रियों का हिलना-जुलना, देखना-भालना, सुनना प्रभृति बन्द हो जाय, सारा बदन शीतल हो जाय, सब रोग शान्त हो जायँ, चिन्ता और मानसिक विकारों के रास्ते सूने हो जायँ, होश बिल्कुल न हो, चन्द्र और सूर्य स्वर अपने गुणों से रहित हो जायँ—दोनों नथनों से हवा का आना-जाना बन्द हो जाय—ऐसी हालत होने से समझ लो, कि, मृत्यु हो चुकी।

नाड़ी देखना सीखनेकी तरकीब।

नाड़ी देखने का काम महा कठिन है। यह गुरु,के शिष्य को पास बिठा कर बताने, रोगी की नाड़ी अपने सामने दिखाने, भूल हो तो उसको बताने अथवा अभ्यासी के हर किसी रोगी की नाड़ी देखने और पुस्तक से मिला-मिला कर अभ्यास बढ़ाने से आ सकती है; अभ्यास बड़ी चीज़ है। अभ्यास से बिना गुरु और बिना पुस्तक के भी नाड़ीज्ञान हो सकता है। मगर सैकड़ों-हज़ारों रोगियोंकी नाड़ी देखनी होगी और बुद्धि लड़ानी होगी। अगर गुरु मिल जायगा, तो बहुत ही जल्दी ज्ञान हो सकेगा और ज़रा भी तकलीफ़ न होगी। जहाँ तक हो सके, नाड़ीपरीक्षा सीखनेको गुरु तलाश करना चाहिए। मगर नाड़ी का पूरा ज्ञान रखनेवाले वैद्य आजकल भारत में कहीं-कहीं और बहुत थोड़े हैं। यों तो रोगी के दिलमें विश्वास जमाने को सभी नाड़ी पकड़ लेते हैं।

डाक्टरों की नाड़ी-परीक्षा।

डाक्टर लोगों को नाड़ी का ज्ञान नहीं होता। वे लोग नाड़ी को छूते तो हैं, मगर वह ढोंगमात्र है। एक सेकण्ड में ख़ाली हाथ से नाड़ी के छू देने से कोई बात मालूम नहीं सकती। डाक्टरी में नाड़ी को "पल्स" कहते हैं। अगर डाक्टर नाड़ी देखे, तो ख़ाली सर्दी-गर्मी की ज़ियादती अथवा सरदी-गर्मीकी कमी मालूम कर सकता है। डाक्टर लोग घड़ी सामने रखकर, नाड़ी पर हाथ रख कर नाड़ी के फड़कने को गिनते हैं। उनके यहाँ इसका एक हिसाब है। यह हिसाब वैद्यों को भी जानना चाहिये, क्योंकि यह सहज काम है और इसमें भूल नहीं हो सकती। उम्र के कम-ज़ियादा होने के साथ १ मिनट पर इसका हिसाब है।

स्वस्थ मनुष्य की नाड़ी १ मिनट में ६० से ७५ बार और किसी-किसी स्वस्थ की नाड़ी १ मिनट में ५० बार चलती है तथा किसी-स्वस्थ की नाड़ी १ मिनट में ६० बार भी चलती है।

पेट के भीतर के बच्चे की नाड़ी	१	मिनट में	१६०	बार
ज़मीन पर गिरे बालक की	"	"	१४० से १३०	"
एक साल की उम्र तक	"	"	१३० से ११५	"
दो साल की उम्र तक	"	"	११५ से १००	"
तीन साल की उम्र तक	"	"	१०० से ६६	"
सात साल की उम्र तक	"	"	६० से ६५	"
सात से चौदह वर्ष तक	"	"	८५ से ८०	"
चौदह से ३० वर्ष तक	"	"	८०	"
तीस से ५० वर्ष तक	"	"	७५	"
पचास से ८०	"	"	६०	"

ज्यों-ज्यों उम्र अधिक होती जाती है, नाड़ी का फड़कना कम होता जाता है। हाल के जन्मे बालक की नाड़ी १४० से १३० बार तक

फड़कती है। जवान और अधेड़ की नाड़ी केवल ८० बार और अस्सी वर्षके बूढे की ६० बार ही फड़कती है। किसी-किसी ने बूढ़े की नाड़ी १ मिनट में ६५ से ५० बार तक भी लिखी है। यदि किसी की नाड़ी उम्र के हिसाब से जितनी कम फड़के उतनी ही सर्दी समझो और जितनी ज़ियादा फड़के उतनी ही गर्मी समझो। सरदी होने से नाड़ी कमती बार फड़कती है; गरमी होने से ज़ियादा बार फड़कती है। जैसे एक जवान की नाड़ी हमने देखी, वह एक मिनट में ८० बार फड़कनी चाहिये, मगर वह ७० बार फड़की, तो समझ लो कि १० अंश सरदी बढ़ी हुई है और ९० बार फड़की तो १० अंश गरमी बढ़ी हुई समझो।

थर्मामीटर।

94 6 8 100 2 4 6 8 110
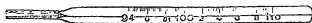
आजकल थर्मामीटर नामक एक यन्त्र चला है। वह एक काँच की नली सी होती है। उसमें एक ओर पारा रहता है। उसके आगे छोटी-छोटी रेखाएँ और नम्बर लिखे रहते हैं। इस यन्त्र से शरीर की गरमी और सरदी का बहुत ही ठीक पता लगता है। अगर थर्मामीटर बिगड़ा हुआ न हो, तो कभी भूल नहीं हो सकती बुखार देखने में इससे बड़ी सच्ची सहायता मिलती है। डाकृर तो इसे अपने जेब में रखते ही हैं; प्रत्येक वैद्य को भी इसे अपने पाकिट में रखना चाहिये। (थर्मामीटर का चित्र ऊपर देखिये)

शारीरिक गरमी से इसका पारा धीरे-धीरे ऊपर की ओर, जिधर नम्बर और रेखायें लिखी हैं, चढ़ता है। इन रेखाओं और अङ्कों को अङ्गरेजी में डिग्री कहते हैं। पारा जितनी डिग्री ऊँचा चढ़े, उतनी ही गरमी समझनी चाहिये।

इस यन्त्र को रोगी की बग़ल में इस तरह रखते हैं, जिससे पारे

की तरफ की नली बग़ल से दबी रहती है; पारे का अंश बाहर नहीं रहता। पारे का अंश यदि बाहर रह जायगा, तो ठीक काम न होगा; इसलिए इसमें भूल करना ठीक नहीं।

पहले रोगी को करवट लेकर लिटाना चाहिए। पीछे नीचे की बग़ल में, जिधर पारा रहता है उधर से थर्मामीटर को दबा देना चाहिये। दबाने से पहले बग़ल का पसीना वगैरः कपड़े से पोंछ देना चाहिये। अगर मुँह में थर्मामिटर लगाना हो, तो जीभके नीचे लगाना चाहिये और मुँह बन्द करवा देना चाहिये।

कोई थर्मामीटर एक मिनिट में चढ़ जाता है, कोई ३ मिनिट में, कोई पाँच मिनिट में, और कोई इससे भी ज़ियादा मिनिटों में चढ़ता है। मतलब यह है कि, जितनी मिनिट का थर्मामीटर हो, उतनी ही मिनिट तक बग़ल या मुँह में रखना चाहिये; कम या ज़ियादा देर तक रखना ठीक नहीं है। जितनी मिनिटका थर्मामीटर होता है, उस पर लिखा रहता है और जो थर्मामीटर कमती-से-कमती मिनिट में चढ़ जाता है, उसीका मूल्य ज़ियादा होता है। एक मिनिट में चढ़ जानेवाला थर्मामीटर अच्छा होता है।

सवेरे या शाम को थर्मामीटर लगाना चाहिये। ज़रूरत होनेसे चाहे जब लगा सकते हो। सख़्त बुख़ारों में घण्टे-घण्टे या दो-दो घण्टों पर टेंपरेचर लेना चाहिये और एक कापीमें लिख लेना चाहिये, इससे चिकित्सा में बड़ा सुभीता होता है।

तन्दुरुस्ती की हालत।

में ताप या टेम्परेचर ९८ डिग्री, डेसीमल चार फॉरेनहीट और २६ सालसे कम उम्रवाले का ताप ९९ डिग्री डेसीमेल (दशमलव) ४ फॉरेनहीट होता है। धूपमें रहने या चलकर आने, अथवा आग के पाससे उठकर आने, कसरत करने या ज़ीना चढ़कर आनेके बाद तत्काल थर्मामीटर लगाया जाय तो ९८·४ या ९९·४ डिग्री से भी

अधिक ताप या गरमी रहती है। दिनमें सोकर उठनेके बाद, आराम से बैठे रहने या लेटे रहने के बाद, यदि तत्काल थर्मामीटर लगाया जाय तो मामूल से कम गरमी नज़र आती है। तन्दुरुस्त शरीर में भी रात को ताप कम रहता है, सवेरेसे बढ़ने लगता है और मध्याह्न-कालमें ज़ियादा हो जाता है। तन्दुरुस्त या स्वस्थ शरीरमें मामूली तौर से ६८ दर्जे गरमी-सरदी रहती है। अगर ६८ से ऊपर पारा चढ़े, तो आप उतनीही गरमी बढ़ी समझें और अगर ६८ डिग्री से कम हो जाय तो उतनीही सरदी समझें। देखा गया है; गरम मिज़ाजवालोंके तन्दुरुस्त रहने की हालत में ६८॥ या ६६ डिग्री तक टेम्परेचर होता है। इससे ज़ियादा होने पर रोग समझा जाता है।

ज्वरमें टेम्परेचर।

जुकाम की हरारत में	...	१०० डिग्री
मामूली ज्वरमें	...	१०१॥ "
तेज़ बुखारमें	..	१०४ "
मारक ज्वरमें	...	१०६॥ "
अग्निन्यास ज्वरमें ...	...	१०६।१०७ "
राजयक्ष्मा (तपेदिक़) में ...		१०२।१०३ "

ज्वरमें १०५ डिग्री से ज़ियादा ताप रहनेसे भय रहता है; १०६ से ऊपर होनेसे मृत्यु की आशङ्का पूरी पक्की हो जाती है और १०८ डिग्री से ऊपर ताप होनेसे रोगी अवश्य मर जाता है।

किसी ज्वर-युक्त रोग में यदि ताप १०१ या १०४ डिग्री सदा रहे, तो आराम होने की सम्भावना समझो। यदि १०० या १०५ डिग्री ताप सदा बना रहे, तो रोग का आराम होना मुश्किल है। अगर १०६ या १०७ डिग्री रहे तो डर समझो, अगर १०६ या ११० डिग्री हो जाय तो मृत्यु निश्चय होगी।

राजयक्ष्मा रोग में यकृत या लिवर में घाव हो, तो ताप १०२ या

१०३ डिग्री रहता है; पर ज्यों-ज्यों घाव बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों ताप भी बढ़ता जाता है।

रोग आराम हो रहा है और उधर ताप भी धीरे-धीरे घट रहा है, तो समझ लो कि, अब दुबारा रोग के लौट पड़ने का भय नहीं है।

हैज़े में, मौत के नज़दीक होने से, ताप घटकर ७७ से ७६ डिग्री तक हो जाता है। नवीन ज्वर, विषमज्वर, पुराने क्षयरोग और मौत के निकट होने से, ताप ६८ डिग्री से नीचे की ओर चला जाता है।

मूत्र-परीक्षा

नाड़ी-परीक्षाके प्रधान होने पर भी बहुतसे रोगोमें अन्यान्य परीक्षाओं के बिना भी काम नहीं चलता। जैसे; प्रमेह आदि रोगोंमें मूत्र-परीक्षा की ; अतिसार, संग्रहणी और सन्निपात प्रभृति में मल-परीक्षा की; आमवात में जिह्वा-परीक्षा की; कण्ठ-रोगोंमें शब्द-परीक्षा की; चर्म-रोगोंमें स्पर्श-परीक्षा की; पीलिये और कामला प्रभृतिमें नेत्र-परीक्षा की ज़रूरत होती है। प्रत्येक रोगमें जैसी परीक्षा होनी चाहिये, वैसीही होनेसे रोग ठीक समझमें आता है। पहले हम मूत्र-परीक्षा लिखते हैं:—

यूनानी चिकित्सामें इसकी बहुत चाल है। हकीम लोग मूत्र-परीक्षा को "कारूरह देखना" कहते हैं। अब हमारे बंगसेन, वैद्य-विनोद, योगचिन्तामणि प्रभृति ग्रन्थोंमें भी मूत्र-परीक्षा लिखी है। "चरक-सुश्रु-तादि" में तो इसका ज़िक्र भी नहीं है। हमारी समझमें इस तरह की परीक्षा वैद्यक में यूनानी से आई मालूम होती है। ऐसे तो मल, मूत्र, जीभ और आँख के देखने की बात औरसी संस्कृत ग्रन्थोंमें लिखी है; पर ये तरकीबें नहीं हैं।

मूत्र लेने की विधि।

वैद्य रोगी को चार घड़ी के सवेरे पलँग से उठा कर, काँच या

काँसीके वर्तनमें पेशाव करावे, किन्तु पहली धारको ज़मीन पर गिरवा दे और बीचकी धारको उक्त प्रकारके वर्तनोंमेंसे किसीमें ले, पीछे की धार भी ज़मीन पर गिरा देनी चाहिये। मतलब यह कि, पहली और पिछली धार वैद्य काँच की शीशी या काँसी के वर्तन में न ले, केवल बीच की धार ले। पीछे शीशी हो तो काग से बन्द करदे और चौड़ा बर्तन हो तो कपड़े से अच्छी तरह ढक दे, ताकि हवा न जा सके।

परीक्षा करने की विधि।

सवेरे सूरज निकलने पर, जब अच्छी तरह से उजाला हो जाय, चाँदने या धूप में उस पेशाव के वर्तन को रखकर, कपड़ा हटाकर मूत्र की परीक्षा करे।

मूत्रसे रोगों की पहचान।

अगर वादी का कोप होगा तो पेशाव पानी की तरह साफ, रूखा और मिक़दार में ज़ियादा होगा।

अगर पित्त का कोप होगा, तो पेशाव लाल या पीला होगा और मिक़दार में थोड़ा होगा।

अगर कफका कोप होगा,तो पेशाब सफेद,गाढ़ा और चिकना होगा।

दो दोषों के कोप में दो दोषोंके और तीनों दोषों के कोपमें तीनों दोषों के लक्षण नज़र आते हैं।

"वैद्य विनोद" में लिखा हैं,—वायु का कोप होने से पेशाव नीला, सफेद और किसी कदर पीला होगा; पित्त का कोप होनेसे पेशाब बहुत गर्म और बहुत पीला होगा और कफ का कोप होनेसे पेशाव चिकना, सफेद और शीतल होगा। त्रिदोष में पेशाव काला, गर्म, लाल और धूमिल रंग का होगा।

एक और वैद्यराज लिखते हैं,—वायुसे दूषित मूत्र चिकना, पीला, अथवा काला पीला अथवा अरुण होता है। पित्त से दूषित मूत्र लाल और कफ से दूषित झागदार और गदला होता है।

ज्वरमें सफेद धारा, महाधारा और पीली धारा होती है। महा-ज्वरमें लाल धारा होती है। यदि काली धारा हो, तो रोगी की मृत्यु समझनी चाहिये। सन्निपात में पेशाब का रङ्ग काला होता है।

जलोदर रोग में पेशाब घी के दानों के समान होता है।

आमवात में पेशाब माठे के समान होता है।

अजीर्ण में पेशाब का रङ्ग सफेद और लाल होता है अथवा बकरी के पेशाब-जैसा होता है।

क्षयरोग में भी मूत्र का रङ्ग काला होता है। अगर क्षय रोग में पेशाब का रङ्ग सफेद हो, तो असाध्य समझना। ज्वरकी अधिकता में मूत्र लाल और स्वच्छ होता है। कभी-कभी धूएँके रंग का भी होता है।

पित्तज्वर में पेशाब पीला, कफज्वर में झागदार, वातज्वर में काला और निरामज्वर में ईख के रस के समान होता है।

प्रसूत-दोष में पेशाब ऊपर से पीला, नीचे से काला और बुद्बुदे की तरह का होता है।

सन्निपातज्वर में मूत्र काला और साफ निर्मल होता है।

पित्तोल्वण यानी पित्ताधिक्य-सन्निपात मे पेशाब ऊपर से पीला और नीचे लाल होता है।

रसाधिक्य होने से पेशाब ईखके रस के समान होता है और आँखें लाल-पीली होती हैं। रसाधिक्य में लङ्घन कराना लाभदायक है।

उदर-वृद्धि यानी आहार से पेट बढ़ने की दशा में पेशाब तेल के समान चिकना होता है।

रुधिर-कोप में पेशाब ऊपर से नीला और नीचे से लाल होता है।

रक्तवात में पेशाब का रङ्ग लाल होता है।

रक्तपित्त में पेशाब का रंग कसूम के रंग के समान होता है।

पित्त की अधिकता में पेशाब का रंग पीला और साफ होता है।

ज्वर प्रभृति रोगों में रस की अधिकता होने से पेशाब ईख या गन्ने के रस के समान होता है।

जीर्णज्वर में पेशाब बकरी के पेशाब जैसा होता है।

मूत्रातिसार रोग में पेशाब मिक़दार में ज़ियादा होता है। अगर उसे कुछ देर रखकर देखें, तो नीचे लाल रंग का होता है।

कफवातमें पेशाब काँजी-जैसा होता है। कफपित्त में पाण्डु और पीले रंग का होता है।

मल की अधिकता होने से पेशाब पीला और मिक़दार में ज़ियादा होता है। ख़ून-विकार में पेशाब ख़ून के समान होता है,

बहुमूत्र रोग में पेशाब बार-बार होता है। इस रोग में पेशाब करते समय दर्द नहीं होता और पेशाब, साफ़, शीतल गन्धहीन होता है।

सोज़ाक में पेशाब ऐसा जल-जल कर होता है कि, रोगी रो उठता है। पेशाब के नाम से जाड़ा चढ़ आता है। ऐसा मालूम होता है, मानो घावों पर नमक छिड़का जाता है। बूँद-बूँद पेशाब होता है।

हैज़े में पेशाब बन्द हो जाता है। यह लक्षण ख़राब होता है।

घोर तेज़ सन्निपात में प्रायः पेशाब काला हो जाता है। यह हालत ख़राब है।

वातज्वर में केशर जैसा पीला, पित्तज्वर में साफ़ पीला और कफ-ज्वर में सफ़ेद और गाढ़ा पेशाब होता है।

सोम रोग में शरीर की धातुएँ पेशाब के रास्ते से बहा करती हैं। उठते-उठते धोती में पेशाब हो जाता है।

पुराने रोग में पेशाब लाल हो जाता है।

अतिसार में पेशाब नीचे से बहुत लाल दीखता है।

धातुओं की समानता होने पर पेशाब कूएँ की जल की तरह साफ होता है। जल की तरह का, बिजौरे नीबू की तरह और काँजी की तरह का पेशाब निर्दोष होता है।

पित्तप्रकृति वाले का पेशाब तेल के समान होता है, कफप्रकृतिवाले का कीच के पानी के समान और वात प्रकृतिवाले का जल के समान और मिक़दार में ज़ियादा होता है।

उदकप्रमेह वाले का पेशाव स्वच्छ, बहुत सफेद, शीतल, गन्धरहित पानी के समान, कुछ गाढ़ा और चिकना होता है।

इक्षुप्रमेह वाले का पेशाव ईख के रस के समान अत्यन्त मीठा होता है।

सुरा प्रमेह वालेका पेशाव शराव के समान, ऊपर से निर्मल और नीचे से गाढ़ा होता है।

पिष्टप्रमेह वाले का पेशाव पिसे चाँवलों के पानी के समान सफेद और मिक़दार में ज़ियादा होता है।

शुक्रप्रमेह वाले का पेशाव शुक्र यानी वीर्य के समान होता है अथवा उसके पेशाव में वीर्य मिला रहता है।

सिकता प्रमेह वाले के पेशाव में बालू रेत के समान मल के रवे होते हैं।

शीत प्रमेह वाले का पेशाव मीठा और बहुत ठण्डा होता है। यह रोगी बारम्बार पेशाव करता है।

शनैर्मेह वाला धीरे-धीरे पेशाव करता है।

लाला प्रमेह वाले का पेशाव लार के समान, तारयुक्त और चिकना होता है।

क्षार प्रमेह वाले का पेशाव खारी जल के समान होता है।

नीलप्रमेहवाले का पेशाव नीले रंगका अथवा पपैहा पक्षीके पंख के समान होता है।

कालप्रमेह वाले का पेशाव स्याही के समान होता है।

हारिद्रप्रमेह वाले का पेशाव हल्दी के समान और दाहयुक्त होता है।

मांजिष्ठप्रमेहवाले का पेशाव बदबूदार और मँजीठ के रंग का होता है।

रक्तप्रमेहवाले का पेशाव बदबूदार, गरम, खारी और खून के समान सुर्ख़ होता है।

वसामेही का पेशाव चरवी-मिला या चरवी के समान होता है;

मज्जा प्रमेही का पेशाव मज्जा-मिला या मज्जा के समान होता है।

क्षौद्र प्रमेहीका पेशाव कसैला, मीठा और चिकना होता है।

हस्तिप्रमेही का पेशाव मस्त हाथी के समान निरन्तर वेगरहित और तारदार होता है। यह रोगी ठहर-ठहर कर मूतता है।

तैल द्वारा मूत्र परीक्षा।

पहले लिखी हुई रीति से पेशाव लेकर धूप में रख लेना चाहिये, पीछे एकचित्त होकर उसमें तेल की बूँदें डालनी चाहियें।

अगर तेल की बूँद डालते ही पेशाव में बबूले या बुदबुदे से हो जायँ तो पित्त-विकार समझो।

अगर बूँदें रूखी और काली सी दीखें, तो वायु-विकार समझो। इसमें तेल की बूँदें पेशाव पर तैरा करती हैं।

अगर तेल की बूँदें कीच के समान अथवा तालाब के जल के समान हो जायँ, तो कफ का विकार समझो। इस दशा में तेल की बूँदें पेशाव में मिल जाती हैं।

अगर तेल की बूँदों के डालने से पेशाव का रंग सरसों के तेल के समान हो जाय, तो वातपित्त का विकार समझना चाहिये।

साध्य, असाध्य या मृत्यु।

अगर तेल की बूँद पेशाव पर जाकर फैल जाय, तो रोग को साध्य समझो; अगर न फैले, बूँद की बूँद ही रहीं आवे, तो असाध्य समझो।

अगर तेल की बूँद डालने से पूरब, पच्छम या उत्तर की ओर फैले, तो रोगी रोग से निजात (छुटकारा) पा जायगा।

अगर तेल की बूँदें दक्खन, ईशान, आग्नेय, वायव्य या नैर्ऋत की ओर फैलें, तो रोग असाध्य समझो।

अगर तेल की बूँद पेशाव में डालने से डूब जाय या नीचे बैठ जाय, तो रोग को असाध्य समझो।

अगर तेल की बूँद पेशाबमें डालने से फैल कर अनेक प्रकारकी विकृत मूर्त्तियों के समान हो जाय, अथवा हल, कछुआ, गधा अथवा ऊँटकी सी शकल की हो जाय, तो रोग को असाध्य समझो।

अगर तेल की बूँद हंस या छत्र आदिके समान हो जाय, तो रोगी आराम होकर बहुत दिनों तक जीवेगा।

अगर तेल की बूँद पेशाब में चक्कर खाने लगे अथवा उसके बीच में छेद हो जाय अथवा तलवार, दण्डे या धनुष (कमान) के आकार की हो जाय, तो रोगी की मृत्यु समझो।

अगर तैलबिन्दु तालाब, कमल, हंस, हाथी, छत्र या तोरणके आकार की हो जाय, तो रोगीको दीर्घायु समझो।

अगर पेशाबमें तेलकी बूँद बघूले की तरह उठे; तो देव-दोष समझो।

अगर तेल की बूँद पूरब, पच्छम, उत्तर, वायव्य या नैर्ऋत—इन दिशाओंमें फैले तो शुभ* है। अगर दक्खन, ईशान और अग्निकोण में फैले तो अशुभ है। ऐसी तैल-परीक्षा समतल या हमवार ज़मीन में करनी चाहिये।

"वैद्यविनोदमें" लिखा है—पेशाब में डाली हुई तेल की बूँदका आकार कमल, शंख, मणि, चँवर के जैसा हो तो आरोग्यता समझो; यदि साँप, सिंह, बैल, बिच्छू, कछुआ और केंकड़े के समान हो तो रोगी मर जायगा।

अगर तैल-बिन्दुका आकार त्रिशूल, धनुष, वज्र, कुठार, खड्ग दण्ड, बाण, और छुरी प्रभृति का सा हो तो रोगी मर जायगा।

वायु का विकार होने से तेल की बूँद सर्प के आकार की सी हो जाती है। पित्त का विकार होनेसे छत्रके समान गोल और फैली हुई होती है। कफ का विकार होनेसे मोती की तरह की रहती है। अगर

* बङ्गसेनने ईशान, आग्नेय, वायव्य और नैऋत इन चारों विदिशाओंकी ओर तेलकी बूँदका फैलना बुरा लिखा है, मगर "योग चिन्तामणि"वालेने वायव्य और नैऋतकी ओर फैलना शुभ लिखा है।

तेल की बूँद चलनी के समान या दो सिर वाले आदमी की सी हो जाय, तो भूत बाधा समझो ।

अगर तेल की बूँद पेशाब पर फैल जाय तो रोग साध्य है । अगर न फैले तो कष्टसाध्य है । अगर नीचे बैठ जाय तो असाध्य है ।

अगर तेल की बूँद का फैलाव पूरव या उत्तर की ओर ज़ियादा हो, तो रोगी जल्दी आराम हो; अगर दक्खनकी ओर हो, तो देर से आराम हो; अगर पच्छम की ओर हो तो आयु का नाश हो ।

तेल की बूँदके दिशाओं की ओर फैलने के सम्बन्ध में ज़मीन-आस्मान का मत-भेद है । वङ्गसेनने दक्खन की ओर बूँद का फैलना बुरा लिखा है, "योगचिन्तामणि" वालेने भी ऐसा ही लिखा है । नागार्जुन महोदय कहते हैं कि, दक्खनकी ओर फैले तो देरसे आराम हो । उक्त दोनों सज्जनोंने पच्छमकी ओरको फैलना अच्छा लिखा है; किन्तु नागार्जुन पच्छम की ओर फैलने को आयुनाशक कहते हैं । पाठक स्वयं आज़मा कर देखें ।

यूनानी मत ।

यूनानी हिकमत वाले कहते हैं, कि सवेरेके समय पेशाब देखना चाहिये । अगर पेशाब सफेद हो, तो सफरा यानी पित्त की ज़ियादती समझो; अगर सुर्ख़ हो तो खून की ज़ियादती समझो; अगर हरी रङ्गत हो तो सौदा यानी वात की ज़ियादती समझो; अगर सफेद हो तो बलग़म यानी कफ अथवा चरबी का आना समझो ।

गरमी होनेसे पेशाब लाल, पीला और कम आता है तथा जलन होती है । सरदी होने से पेशाब सफ़ेद, ज़ियादा और बिना जलनके आता है ।

मल-परीक्षा ।
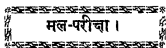
वात के कोप से मल टूटा हुआ, झाग मिला हुआ, रूखा और धूएँ के रङ्ग का होता है ।

वात-कफ के कोप से सुर्ख़ी-माइल पीला होता है।

वात-पित्त के कोप से मल बँधा हुआ, कभी बिखरासा या पीला-कालासा होता है।

कफपित्त के कोप से पीला काला, कुछ गीला और चीकट सा होता है।

त्रिदोष के कोप से काला, पीला, टूटासा, सफेद और बँधा हुआ होता है।

अजीर्ण-रोगी का मल बदबूदार और ढीला होता है।

वातादि दोष क्षीण होनेसे मल कपिल और गाढ़ा होता है।

जलोदर वाले का मल सफेद और बहुत ही सड़ा हुआ होता है।

क्षयी वाले का मल काला होता है।

आमवातवाले का मल कमर में दर्द होकर पीला होता है। इसमें दस्त कम होता और पेट फूला रहता है।

बहुत काला, बहुत सफेद, बहुत पीला या बहुत लाल मल अथवा अत्यन्त गरम मल जिसका होता है, उसकी मृत्यु होती है।

तीक्ष्ण अग्निवाले का मल सूखा होता है और मन्दाग्निवाले का मल पतला होता है।

जिसका मल सड़ा हुआ. बदबूदार या मोर की सी चन्द्रिका के समान होता है, वह रोगी असाध्य होता है।

वात रोगमें मल बँधा हुआ, रूखा और धूमिल रंग का होता है। पित्तरोग में पीला और पतला होता है; कफ में सफेद, गाढ़ा और बहुत होता है। दो दोषों और तीन दोषों के मिलकर कोप करने से मल काला, कम और किसी क़दर गरम होता है।

अतिसार रोग में मल पतला होता है और कृमि-रोग में भी मल पतला होता है, किन्तु कृमि-रोगी का जी मिचलाया करता है।

हैज़े में पानी के समान पतले दस्त होते हैं, उनमें मल नहीं रहता।

संग्रहणी में कच्चा अन्न बिना पचे यों का यों निकलता है।

वातज्वर में दस्तक़ब्ज होता है या सूखा और थोड़ा दस्त होता है। पित्तज्वर में दस्त पतला और पीला होता है। कफ-ज्वर में दस्त सफ़ेद होता है।

शब्द-परीक्षा।

कफ-रोगी की आवाज़ भारी होती है; पित्त-रोगी साफ बोलता है, और बादी का रोगी घरघर करके बोलता है।

स्पर्श-परीक्षा

पित्त के कोप करनेसे शरीर गरम रहता है; वात-रोगी का शरीर शीतल; कफ-रोगी का शरीर शीतल, चिपचिपा, चिकना और पानी से भींगा सा होता है। त्रिदोष में तीनों दोषों के लक्षण मिलते हैं। बुख़ार किसी भी तरह का हो, शरीर गरम रहता ही है। शीताङ्ग सन्निपात में शरीर बर्फ के समान शीतल हो जाता है और अन्तक सन्नि-पात में शरीर आग की तरह जलता है।

वर्ण-परीक्षा

वायु के रोगों में शरीर रूखा, धूएँ के रंग का और रोग पुराना पड़ने से पीला हो जाता है। वातज्वर में शरीर रूखा रहता है।

पित्त-रोगी का शरीर पीला होता है। पित्तज्वर में भी शरीर कुछ पीला रहता है।

पाण्डु रोग में भी शरीर पीला हो जाता है। कामला जो पीलिया का भेद ही है, उसमें भी पीला हो जाता है। हलीमक रोग में काला-पीला या हरा रंग हो जाता है।

कफ-रोगी का शरीर चिकना और सफ़ेद होता है।

सभी पुराने रोगों में शरीर पीला पड़ जाता है।
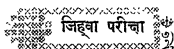
जिह्वा परीक्षा

वायु का कोप होने से जिह्वा यानी जीभ सुन्न, फटीसी, मीठी, जड़वत, हरे रंग की होती है और उससे लार गिरती है। वायु के रूक्ष गुण के कारण रूखी और गाय की जीभ की तरह खरदरी होती है।

पित्त का कोप होने से जीभ लाल रंग की, कड़वी, जली हुई सी, दाहयुक्त और चारों ओर से काँटों से व्याप्त होती है। लाल और जली हुई का मतलब यह है कि, लाल और काली होती है।

कफ का कोप होने से जीभ स्थूल, भारी, लिहसी, मोटे-मोटे काँटों से व्याप्त, खारी और बहुत कफदार होती है; यानी उससे बहुतसा कफ गिरता है।

दो दोषों के कोप में दो दोषों के लक्षणों वाली और तीन दोषों के कोप में तीनों दोषों के लक्षण वाली होती है।

रक्ताधिक्य दाह में जीभ गरम और लाल हो जाती है।

हैज़ेमें, मूर्च्छा रोगमें और श्वास रुक जाने पर जीभ शीतल होती है।

कण्ठ के भीतर दाह होने से जीभ काले रङ्ग की हो जाती है।

ज्वर और दाह रोग में जीभ नीरस, तथा नवीन ज्वर और तेज़ दाह में सफ़ेद और चरपरी होती है।

आमाजीर्ण और आमवात के पहले दर्जे में जीभ सफेद होती है।

सन्निपात-ज्वर में जीभ मोटी, सूखी, रूखी और बुझे हुए अङ्गार की तरह काली होती है।

यकृत-दोष में, मल और पित्त के रुकने पर, जीभ हरियाली-माइल पीली और मल से लिपटी हुई होती है।

यकृत, प्लीहा आदि की अन्तिम अवस्था में और क्षय रोग के पीछे

तथा भीतरी यन्त्रों की पीड़ा से, मरने के समय, जीभ में ज़ख़्म हो जाते हैं ।

बहुत ही कमज़ोरी और जलन होने पर जीभ बड़ी होती है ।

नीरोग मनुष्य की जीभ सदा गीली और गुलाबी होती है । किन्तु शराबी की जीभ फटी हुई सी होती है ।

मुखपरीक्षा ।

वायु के कोप से मुँह का स्वाद विरस होता है ; पित्त से चरपरा और कफ से मीठा-खट्टा स्वाद होता है । त्रिदोष में तीनों लक्षणों वाला, अजीर्ण में चिकना और मन्दाग्नि में कसैला स्वाद होता है । एक और सज्जन लिखते हैं, वायु कोप में मुख का स्वाद नमकीन, पित्त में कड़वा और कफ में मीठा होता है ।

चेहरे की परीक्षा

वात-कोप से मुँह या चेहरा रूखा, स्तब्ध और टेढ़ा होता है ; पित्तकोप से लाल, पीला और गरम होता है । कफ-कोप से चेहरा भारी, चिकना और सूजा हुआ सा होता है ।

नेत्र-परीक्षा ।

वात-रोगमें नेत्र भयानक, रूखे, धूएँ के से रङ्ग के, टेढ़े, चञ्चल जड़से अथवा बँधेसे और भीतरसे काले होते हैं ।

पित्त-रोगमें नेत्र पीले, नीले, लाल, गरम और दीपक प्रभृति चम-

गीले पदार्थों के देखने में असमर्थ होते हैं; अर्थात् पित्त रोग वाला चिराग़ की ओर नहीं देख सकता ।

कफरोग में नेत्र ज्योतिहीन, सफेद, पानी से भरे हुए, भारी और मन्दा देखने वाले होते हैं ।

त्रिदोष या सन्निपात में नेत्र, तन्द्रा और मोहसे व्याकुल, श्याम वर्ण, टेढ़े, रूखे, भयानक और लाल रङ्ग के होते हैं ।

त्रिदोष की दशा में रोगी के नेत्र रोगी के वश में नहीं रहते । क्षण-भर में रोगी नेत्रों को खोल लेता है, क्षण-भर में बन्द कर लेता है; कभी हर वक्त बन्द रखता है, कभी हर समय खुले ही रखता है; काली पुतलियाँ लुप्त हो जाती हैं; धूएँ के रङ्ग का बड़ा तारा घूमने लगता है; नेत्रोंका रङ्ग अनेक प्रकारका हो जाता है और वे विकृत हो जाते हैं तथा अनेक प्रकार की चेष्टा करते हैं—ऐसे नेत्रोंवाला निश्चय ही मर जाता है ।

अगर नेत्र प्रसन्न हों, अपनी प्रकृति में स्थिर हों, देखने में सुन्दर हों—तो रोगीको कोई भय नहीं है । वह शीघ्र ही आराम होगा ।

जिस रोगी के नेत्र ठहराये हुए, तन्द्रा और मोहयुक्त तथा गड़े हुए और डरावने हों, वह मृत्यु की गोद में है ।

कामला रोगमें हल्दी के समान पीले नेत्र होते हैं । पीलिये में भी पीले होते हैं । पित्त-ज्वर में किसी क़दर पीले होते हैं । हलीमक रोग (पीलिये का भेद) में नेत्र हरे होते हैं ।

राजयक्ष्मा जब असाध्य होता है, नेत्र एकदम सफेद हो जाते हैं ।

हैज़े में आँखें खड्डों में घुस जाती हैं और उनका रङ्ग लाल हो जाता है । कुछ धूएँकासा रङ्ग भी झलकता है ।

सन्निपात में नेत्रों में सब रङ्ग मिले हुए होते हैं ; पर सुर्ख़ी अधिक होती है ।

आम रोगमें पलक बन्द करने में कष्ट होता है । पित्त-रोग में या पित्ताधिक्य-ज्वर में दीपक के सामने देखा नहीं जाता ।

अधिक खून जाने की दशा में नेत्र भीतर घुस जाते हैं और धूमिल रङ्ग के तथा सुर्ख़ होते हैं।

मस्तक में खून जम जाने से दोनों नेत्र खून के समान सुर्ख़ हो जाते हैं।

अफीम का विष चढ़ जाने या सिरमें खून के बहुत गर्म हो जाने से आँखों के तारे सिकुड़ जाते हैं।

तेज़ बुख़ार में रोगी टकटकी लगाकर देखा करता है।

मिरगी रोगमें आँखें चढ़ जाती हैं और पलक काँपते हैं। संन्यास (एक प्रकार की बेहोशी) में नेत्रों के तारे सुकड़ जाते हैं।

किसीने लिखा है,—पित्त-रोगमें आँखें पीली, या लाल या हरे रङ्ग की होती हैं। इनको दीपक या बिजलीकी रोशनी बुरी लगती है।

अरिष्ट-लक्षण ।

यदि रोगीके दाहिने या बायें, अगले या पिछले, नीचे के या ऊपरके किसी अङ्गमें स्वाभाविक और किसी अङ्गमें विकार का रंग देखनेमें आवे, तो रोगी की मृत्युके चिह्न समझो।

(२) यदि रोगी के मुख या शरीर के किसी और हिस्से में एक जगह स्वाभाविक और दूसरी जगह विकार का रंग दिखाई दे, तो मृत्यु के लक्षण समझो।

(३) यदि रोगी के शरीरमें एक जगह प्रसन्नता और दूसरी जगह ग्लानि, एक अङ्ग में रूखापन और दूसरे अङ्ग में चिकनाई दीखे; तो रोगी मरेगा।

(४) यदि रोगीके मुँह पर हठात् लहसन, तिल, झाँई या कोई फुन्सी प्रकट हो जाय; तो मृत्यु होगी।

(५) यदि रोगी के नाखून, नेत्र, मुँह, मूत्र, मल और हाथ पैरों में किसी तरह के विकार का रङ्ग पैदा हो जाय अथवा यकायक रङ्ग ख़राब हो जाय या कोई इन्द्रिय मारी जाय, तो रोगी की मृत्यु समझो। इसी तरह रोगी के शरीरमें पहले कभी न देखा हो, ऐसा रङ्ग अकस्मात् अथवा बिना कारण पैदा हो जाय, तो रोगी का मरण समझो।

(६) यदि रोगी के दोनों होठ पके जामुन की तरह अत्यन्त नीले हो जायँ, तो रोगी की मृत्यु समझो।

(७) जिस मरनेवाले के कण्ठ से एक अथवा अनेक तरह के वैकारिक स्वर निकलें, वह नहीं बचे ; यानी रोगी जिस तरह सदा बोला करता था, उसके विपरीत ऐसी बोली बोले, जैसी उसके कण्ठ से सुनी न गई हो* ।

(८) जिसके शरीर से दिन-रात अनेक प्रकारके वृक्षों और वन के तरह-तरह के फूलोंकी सुगन्ध आती रहे, उसे "पुष्पित" कहते हैं। वह एक वर्ष के भीतर निश्चय ही मर जाता है।

(६) जिस प्राणी के शरीर से एक अथवा अनेक प्रकार की दुर्गन्ध निकलें, वह भी "पुष्पित" है। जिसके स्नान करने या न करने पर शरीर से कभी शुभ और कभी अशुभ गन्ध बिना कारण आवे, उसे भी "पुष्पित" कहते हैं; यानी जिसके शरीर से कभी चन्दन की या कभी फूलों की या मलमूत्र अथवा मुर्दे की सी गन्ध आवे; उसको मृत्यु-मुखमें समझो† ।

(१०) जिस प्राणी की देह से वियोनि की सी; यानी पशु-पक्षीकी सी सुगन्ध या दुर्गन्ध स्थायी रूपसे आती हो, वह एक वर्ष नहीं जीता।

(११) किसी मनुष्यके ख़ूब अच्छी तरह स्नान कर लेने और चन्दन प्रभृति लगा लेने पर भी मक्खियाँ घेर लेती हैं और किसी के शरीर के पास मक्खी, मच्छर, डाँस प्रभृति आते ही न जाने क्यों एकदम दूर हो जाते हैं ; औरों के शरीर पर बैठते हैं, पर उसके शरीर पर नहीं बैठते ; यदि ऐसी हालत हो, तो समझना चाहिए कि इस मनुष्य के शरीर का रस ख़राब या मीठा हो गया है। रस के मीठे

---

* हमने अपनी आँखोंसे देखा है कि, एक मनुष्य रातको छतपर सोता-सोता कुत्तेकी तरह भौंकने लगा और ३।४ दिनमें मर गया। उसे कुत्ते वग़ैरःने काटा न था।

† एक सोलह वर्षकी जवान सुन्दरीके हाथोंमें दिन-रातमें दो एक बार विष्ठाकी-सी गन्ध कोई एक या दो सालसे आने लगी। वह दुर्गन्ध हर समय न रहती थी। ख़ूब साबुनसे हाथ धो लेने पर भी, वह दुर्गन्ध यकायक प्रकट हो जाती थी। वह स्त्री एक दिन बिना किसी रोग के चटपट मर गई।

होनेसे मक्खी वगैरः जीव पीछा नहीं छोड़ते और बदज़ायके होनेसे नज़दीक नहीं आते। ये लक्षण भी मरण के हैं।

१२ अगर रोगी के नेत्र बाहर निकल आवें या भीतर को बैठ जायँ टेढ़े-मेढ़े हो जायँ, एक बड़ा और एक छोटा हो जाय, एक बन्द रहे और एक खुला रहे, अत्यन्त पानी बहे, निरन्तर खुला रहे या निरन्तर बन्द ही रहे, बारम्बार खुलें या बन्द रहें, दिनमें सब चीज़ें सफेद दीखें या काली दीखें, अथवा नेत्र अङ्गारके समान काले, नीले, पीले, श्याम, लाल, हरे और सफेद इनमें से किसी एक रङ्ग से अत्यन्त युक्त हों, तो रोगी को गतायु समझो।

१३ रोगी के बाल या रोएँ खींचने से उखड़ आवें और रोगी के दर्द न हो, तो उसे गतायु समझो।

१४ अगर रोगी के पेट पर काली, नीली, पीली लाल या सफ़ेद नसें दीखने लगें, तो रोगी को गतायु समझो।

१५ यदि रोगी के नाखूनों में मांस और ख़ून न रहे और वे पकी हुई जामुनके समान हो जायँ, तो उसे गतायु समझो।

१६ यदि रोगी की उँगलियाँ पकड़ कर खींचने पर न चटखें, तो रोगी को गतायु समझो।

१७ जो रोगी आकाश को पृथ्वी की तरह संघट्ट और पृथ्वी को आकाश की तरह शून्य देखता है, वह बहुत जल्दी मरता है।

१८ जो रोगी हवा को मूर्त्तिमान देखता है और जलती आग जिसे नहीं दीखती, वह गतायु है।

१९ जो रोगी जलमें जल न होने पर जल का भ्रम करता है अथवा स्थिर जलको चंचल समझता है, वह गतायु है।

२० जो रोगी जाग्रत अवस्थामें प्रेत और राक्षस-पिशाचों को देखता है अथवा अन्य प्रकार की अद्भुत चीज़ें देखता है, वह गतायु है।

२१ जो रोगी स्वाभाविक अग्निको नीली, प्रभा-रहित, काली या सफेद देखता है, वह सात रात जीता है।

२२ जो रोगी आकाश को बिना प्रकाशके प्रकाशित देखता है ; आकाश में बादल नहीं हैं, पर उसे बादल दीखते हैं ; आकाश में बादलों के होने पर बादल नहीं दीखते; आकाशमें बादल नहीं हैं, पर रोगी को बिजली चमकती दीखती है, ऐसा रोगी नहीं जीता ।

२३ जो रोगी निर्मल सूर्य और चन्द्रमा को काले कपड़े से लिपटे हुए वर्तन के समान देखता है, वह नहीं बचता ।

२४ जो प्राणी बिना पर्व के सूर्य और चन्द्रमा में ग्रहण देखता है, वह रोगी हो चाहे निरोगी, बहुत नहीं जीता ।

२५ जो रातको सूर्य और दिनमें चन्द्रमाको देखता है. तथा-अग्नि-हीन वस्तुओं से धूआँ उठते देखता है तथा रातमें आग को प्रभाहीन देखता है, वह नहीं बचता ।

२६ जो प्राणी प्रभाहीन चीज़ों को प्रभायुक्त और प्रभायुक्तोंको प्रभाहीन देखता है, वह नहीं बचता ।

२७ जो रोगी दीखनेवाली चीज़ों को नहीं देखता और न दीखने-वाली चीज़ों को देखता है, वह नहीं बचता ।

२८ जो रोगी अपनी उंगलियोंसे अपने कानों को बन्द करके अनाहत * शब्दको नहीं सुनता, वह नहीं बचता ।

२६ जो रोगी सुगन्ध को दुर्गन्ध और दुर्गन्ध को सुगन्ध समझता है, वह नहीं बचता ।

३० जिस रोगी के मुख में कोई रोग नहीं है, तोभी उसे मीठे खट्टे प्रभृति रसों का स्वाद न मालूम हो अथवा असल रस का ज्ञान न हो, वह गतायु है ।

३१ जो रोगी नरम चीज़ों को कड़ी, गरम को ठण्डी, चिकनी को खरदरी और कड़ी को नरम, शीतल को गरम या खरदरी को चिकनी समझता है, वही नहीं बचता ।

* दोनों कानोंको हाथोंसे बन्द कर लेनेपर जो "सांय सांय" शब्द सुनाई देता है, उसको "अनाहत शब्द" या "ज्वाला शब्द" कहते हैं। साधारण लोग उसे रावणकी चिताकी आवाज कहते हैं। डाक्टर उसे खून बहनेकी आवाज कहते हैं।

३२ जो विना घोर तप या योग-साधन के इन्द्रियों से न जाना जा सके, ऐसे पदार्थ या ऐसी वातको जान ले या देख ले, वह नहीं जीवे।

३३ अगर ज्वर के रोगी के पूर्व-रूप सभी हों या वहुत ज़ियादा हों, तो समझ लो कि रोगी नहीं वचेगा। इसी तरह और रोगोंके होने के पहले, होने वाले रोग के सारे या अधिक पूर्व-रूप* हों, तो मृत्यु होगी।

३४ जो प्राणी सुपने में कुत्ते, गधे या ऊँट पर चढ़कर दक्खन दिशा को जाता है, वह "राजयक्ष्मा" से मरता है।

३५ जो प्राणी सुपने में मरे हुए लोगों के साथ शराव पीता है और उसे कुत्ते घसीटते हैं, वह घोर "ज्वर से मरता है।

३६ जिस प्राणी को सुपने में लाल कपड़े, लाल फूलों की माला पहने लाल शरीर वाली स्त्री हँसती-हँसती घसीटे, वह "रक्तपित्त" से मरे।

३७ जिस प्राणी के ज़ोर से दर्द चले, पेट में अफारा हो, शरीर दुर्वल हो और नाखून आदि का रंग और-का-और हो जाय, वह "गुल्म" रोग से मरे।

३८ जो प्राणी सुपनेमें ऐसा देखे, मानो उसके हृदय में काँटोंवाली दारुण वेल उगी है, वह "गुल्म रोग" से मर जाय।

३९ जिस प्राणी की खाल या चमड़ी ज़रा छूने से फट जाय अथवा जिसके घाव भरें नहीं, वह कोढ़ी होकर मरेगा।

४० जो प्राणी सुपने में नंगा होकर, सारे शरीर में घी लगा कर, ज्वालाहीन आग में हवन करे और सुपने में जिसकी छाती में कमल पैदा हो, वह "कोढ़" से मरे।

४१ जिस प्राणी के शरीर पर स्नान करने और चन्दन लगाने पर भी नीले रंग की मक्खी वैठे, वह "प्रमेह" से मरेगा।

* सव रोगोंके पहले पूर्वरूप होते हैं, पर सारे पूर्वरूप नहीं होते; कुछ होते हैं, कुछ नहीं होते ; यदि सभी हों, तो वचना कठिन समझो।

४३ जो प्राणी सुपने में चाण्डालों के साथ घी तेल आदि चिकने पदार्थ पीवे, वह "प्रमेह"से मरे ।

४३ जिसका ध्यान एक ओर लग जाय, जिसको बिना मिहनत के थकान मालूम हो, जी घबराने लगे, चित्तमें भ्रम और बेचैनी हो, शरीर का बल नाश हो जाय—अगर ये सब लक्षण एक साथ ही हों, तो समझ लो कि वह "उन्माद" रोग से मरेगा ।

४४ जिसको भोजन के पदार्थ बुरे मालूम हों, ज्ञान न रहे, उदर्द रोग हो, उसकी "उन्माद रोग" से मृत्यु होगी ।

४५ जो प्राणी सदा नाराज़ रहे, चेहरे पर क्रोध बना ही रहे, भय-भीत रहे, हँसता रहे, बार-बार बेहोश हो, प्यास बहुत लगे, उसकी "उन्माद" से मृत्यु होगी।

४६ जो प्राणी सुपने में राक्षसों के साथ नाचता-नाचता पानी में डूब जाय, वह "उन्माद" से मरेगा ।

४७ जिस मनुष्य को अँधेरा न होने पर भी अँधेरा दीखे, कहीं शब्द भी न होता हो, पर उसे तरह-तरह के गाने या दूसरी आवाज़ें सुनाई दें, वह "मृगी रोग" से मरेगा ।

४८ जो मनुष्य सुपने में ऐसा देखे, मानो मैं नशे से मतवाला होकर नाच रहा हूँ और भूत मेरा सिर नीचा करके मुझे ले जारहे हैं, उसकी "मृगी रोग" से मृत्यु हो ।

४६ जाग्रत अवस्था में जिसकी ठोड़ी, गरदन और दोनों आँखें रह जायँ, उसकी "वहिरायाम" नामक वात-रोगसे मृत्यु हो ।

५० जो प्राणी सुपने में तिलों के पदार्थ या पूरी मालपूआ खाता है और जाग उठता है अथवा जागते ही वमन करता है और पूरी मालपूआ ही निकलते हैं, वह नहीं बचता ।

५१ जिस प्राणी की छाती से नीला या पीला-लाल कफ निकले, उसके जीवन में सन्देह है ।

५२ जिस सान्द्रमेही के रोएँ खड़े हों, शरीर में सूजन हो,

खांसी और ज्वर हो तथा मांस क्षीण हो गया हो, उसे वैद्य हाथ में न ले।

५३ जिस प्राणी के कोठे में तीनों दोष कुपित होकर चले जायँ, चाहे वह दुर्बल हो चाहे बलवान, वह नहीं बचेगा।

५४ अगर किसी दुर्बल मनुष्य के सूजन के बाद ज्वरातिसार हो अथवा ज्वरातिसार के बाद सूजन हो, वह नहीं बचेगा।

५५ अत्यन्त बलहीन रोगी को हनुग्रह, मन्याग्रह और प्यास हो, तो उसके प्राण छाती में समझो।

५६ जो रोगी मुरझायासा दुःखी होकर पड़ा रहता है, जिसको होश नहीं रहता, जिसका मांस और बल क्षीण होगया है, साथ ही भोजन भी घट गया है, वह रोगी नहीं बचेगा।

५७ रोगी को छाया बिगड़ी दीखे या दीखे ही नही अथवा रोगी को दूसरे की छाया न दीखे, तो रोगी को गतायु समझो।

५८ जो मनुष्य चाँदनी, धूप, दीपक की रोशनी, जल अथवा आइने में अपनी छाया को बिगड़ी देखे; यानी और ही तरह की देखे, वह नहीं बचे।

५६ जो मनुष्य अपनी छाया को छिन्न-भिन्न, कम-ज़ियादा, पतली या दो हिस्सों में बँटी हुई देखे या छाया को सिर-बिना देखे या और तरह की देखे, वह मर जाय।

६० जिस रोगी के दोनों नेत्रों में कामला हो, मुँह भारी हो, दोनों गालों में अधिक मांस हो (कहीं लिखा है, दोनों कनपटियों में मांस न हो), हाथ पैर आदि में जलन हो, शरीर गरम हो, वह रोगी नहीं जीवे।

६१ जो रोगी पलँग से उठने पर बेहोश हो जाय और बारम्बार आनतान बके, वह सात दिन भी नहीं जीवे।

६२ जिसकी व्याधि उल्टी और सीधी दोनों तरह से मिली हुई हो, जिसे खाया हुआ न पचे, वह पन्द्रह दिन भी न जीवे।

६३ जो रोगी रोग के मारे अत्यन्त दुबला हो, और अत्यन्त थोड़ा खाता हो, पर मलमूत्र अधिक त्यागता हो, वह नहीं जीता।

६४ जो रोगी पहले से अधिक खाने लगे, पर मलमूत्र थोड़े हों; वह भी नहीं जीवे।

६५ जो प्राणी ताक़तवर पदार्थों को खावे, पर उसकी ताक़त कम होती जाय और रंग ख़राब होता जाय, वह नहीं जीवे।

६६ जिस रोगी के कण्ठसे आवाज़ निकले, जिसका मन शिथिल हो, जिसे दस्त लगते हों, जिसे श्वास रोग हो, जिसका बल घट गया हो, जिसे प्यास अधिक हो, जिसका मुँह सूखता हो, वह रोगी नहीं जीवे।

६७ जिस रोगी को उर्द्ध्वश्वास चलता हो, कण्ठ में घरघर शब्द होता हो, बल घट गया हो, रङ्ग बिगड़ गया हो, आहार क्षीण (कम) हो गया हो, वह नहीं बचे।

६८ जो रोगी कमज़ोर हो गया हो, प्यास के मारे मुँह सूख रहा हो, आँखें कपाल में चढ़ गई हों, गर्दन की मन्या नामक नसें नीची होकर काँपती हों, वह रोगी नहीं बचे।

६९ जिसके सिर, जीभ और आँखें—ये उलट गये हों या लटक पड़े हों, दोनों भौंहें नीची हो गई हों, जीभमें काँटे पड़ गये हों, वह रोगी नहीं बचे।

७० जिसका लिङ्ग एकदम भीतर घुस गया हो, फोते लटक गये हों, अथवा लिङ्ग लटक आया हो और फोते भीतर को चले गये हों, वह रोगी नहीं बचे।

७१ जिसका मांस क्षीण हो गया हो; यानी चाम और हाड़ मात्र शेष रहे हों; जो खाने को न खाता हो; वह एक मास से अधिक नहीं जीवेगा।

७२ जो अपनी छाया का सिर नीचे को देखे या टेढ़ा देखे या मस्तक-रहित छाया देखे, वह नहीं बचे।

७३ जिसके पलक रह जायँ, हिलें नहीं और नज़र कम हो जाय, वह नहीं जीवे।

७४ जिसकी दोनों भौंहों में अथवा सिरमें बिना कारण पहले नहीं देखी ऐसी सीमन्त या भौंरी दीखे, वह नहीं बचे। अगर रोगी के सिर और भौंहों में भौंरी या चोटी सी गुँथी दीखे, तो वह तीन रात जीवे। अगर निरोगी के भौंरी या चोटीसी गुँथी दीखे, तो वह छै रात से अधिक नहीं जीवे।

७५ जिस रोगी के बालों में तेल तो डाला न गया हो, किन्तु बाल ऐसे दीखें मानों तेल डाला गया है, उस रोगी को गतायु समझो।

७६ रोगी रोग से दुःखी हो, उसकी नाकका बाँसा मोटा हो जाय, बिना सूजन के ही नाक सूजीसी दीखे, उसे वैद्य हाथ में न ले।

७७ जिसकी जीभ एकदम से बाहर निकल आवे अथवा बहुत ही भीतर चली जाय, अथवा नाक सूख जाय, वह रोगी नहीं बचे।

७८ जिसके मुँह, कान और दोनों होठ अत्यन्त काले, सफेद, लाल या नीले हो जायँ, वह रोगी नहीं बचे।

७९ जिस रोगी के दाँत विकृति के कारण से हिलते से जान पड़ें, सफेद रंग के से दीखें, उनसे खुशबू निकलने लगे और कीच से लिहसे से हो जायँ, वह रोगी नहीं बचे।

८० जिसकी जीभ लठरा जाय, उसमें चेतना न रहे, भारी हो जाय, अत्यन्त काँटे पड़ जायँ; काली हो जाय, सूख जाय या सूज जाय, वह रोगी नहीं बचे।

८१ जो मनुष्य लम्बे-लम्बे साँस लेता हुआ, धीरे-धीरे मन्दे-मन्दे साँस लेने लगे और मूर्च्छित हो जाय, वह रोगी नहीं बचे।

८२ जब रोगी की आयु नहीं रहती; तब उसके दोनों हाथ पैर, मन्या नसें और तालू—ये सब अत्यन्त शीतल अथवा कठोर हो जाते हैं।

८३ जो रोगी घोंटुओं से घोंटुओं को घिसता है, पैरों को

उठा-उठा कर पटकता है, और बारम्बार मुख को फिराता है, वह नहीं बचता ।

८४ जो रोगी दाँतों से नाखूनों को काटता है, नाखूनों से बालों को तोड़ता है और लकड़ी के टुकड़े से ज़मीन पर लिखता है, वह नहीं जीता ।

८५ जो रोगी जाग्रत अवस्था में दाँतों से दाँतों को पीसता है, रोता है और ऊँची आवाज़ के साथ खिलखिला कर हँसता है, वह नहीं जीता ।

८६ जो रोगी बारम्बार हँसे, चीख़ मारे, पैरों से पलँग के बिस्तरे बिगाड़े, हाथ बढ़ाकर कान नाक के छेद छुए, वह नहीं बचे ।

८७ जिन चीज़ों से पहले रोगी राज़ी होता था, वही अब उसे बुरी लगें, तो ऐसी हालत में रोगीकी मृत्यु समझो ।

८८ जो रोगी अपने सिर, गर्दन, पीठ और शरीर के बोझ को न सम्हाल सके, जिसकी ठोड़ी टेढ़ी हो जाय, मुँह में दिया कौर बाहर निकल पड़े, वह नहीं बचे ।

८९ जिस रोगीको यकायक ज़ोर से बुख़ार चढ़ आवे, बल घट जाय, ज़ोर से प्यास लगे और बेहोश हो जाय. वह नहीं जीवे ।

९० जिस प्रलेपक ज्वर-रोगी के अल्प शीत-युक्त कफ ज्वर में दिन निकलने के पहले घबराहट हो और मुख से पानी टपके, वह रोगी नहीं बचे ।

(९१) जिस रोगी की आयु शेष हो जाती है, उसके गलेसे आहार नीचे नहीं उतरता ; जीभ गले में चली जाती है और बल नाश हो जाता है ।

(९२) जिस रोगी की दोनों आँखें काली, शिथिल अथवा हरी हो जायँ, वह नहीं बचे ।

(९३) जो रोगी बेहोश हो, जिसका मुख सूखता हो. और जिसे मर्मस्थानों में चोटसी लगी जान पड़े, वह नहीं जीवे ।

(९४) जिस रोगी की नसें हरे रङ्ग की हो गई हों, रोम-छिद्रों

के मुँह बन्द हो गये हों, अन्न पर मन न हो; पित्तकी गरमी बढ़ गई हो, वह नहीं बचे।

(९५) जिस रोगी के मुख, हाथ पैर आदि अङ्ग कान्तियुक्त हों, शरीर सूख गया हो, बल क्षीण हो गया हो, उसे प्रबल "राजयक्ष्मा" हुआ समझो। वह नहीं बचेगा।

(९६) जिस राजयक्ष्मा-रोगीकी दोनों पसलियों में दर्द हो, हिचकियाँ आती हों, खून गिरता हो, पेट पर अफारा हो और कन्धों में पीड़ा हो, वह नहीं बचेगा।

(९७) अगर वायु-रोगी, मृगी-रोगी, कुष्ठ-रोगी, शोथ-रोगी, उदर-रोगी, गुल्म रोगी, मधुमेही और राजयक्ष्मावाले का बल और मांस क्षीण हो जाय, तो उनकी चिकित्सा करना वृथा है।

(९८ जिस रोगी को जुलाब लेने और अफारा दूर होने पर फिर प्यास लगे और अच्छी तरह दस्त हो जाने और कोठा शुद्ध हो जाने पर फिर अफारा हो जाय, वह रोगी नहीं बचे।

(९९) जिसकी आवाज़ बैठ जाय, बल घटता जाय, रङ्ग बिगड़ता जाय, और रोग बढ़ते जायँ, वह नहीं बचें।

(१००) जिसको उर्ध्वश्वास हो, देह में गरमी न हो, दोनों जाँघों के जोड़ों में दर्द हो और रोगीको किसी भी चीज़ से आराम न मालूम होता हो, वह रोगी नहीं बचे।

(१०१) जो रोगी हतस्वर से अपनी मौत को आप ही नज़दीक बतावे और बिना किसी शब्द के हुए शब्द सुने, वह नहीं बचे।

(१०२) जिस दुर्बल रोगी को रोग यकायक छोड़ दे, उसके जीने में सन्देह है।

(१०३) जिसका कफ, मल या वीर्य जलमें बैठ जाय, उसकी आयु शेष समझो।

(१०४) जिसके कफ में अनेक प्रकार के रङ्ग दीखें और वह कफ जल में डूब जाय, तो समझ लो कि रोगी नहीं बचेगा।

(१०५) पित्त उष्मा को साथ लेकर कनपटियों में जाकर ठहर जाय, उसको "शंखक" रोग कहते हैं। इस रोगवाला तीन रात के अन्दर मर जाता है।

(१०६) जिसके मुँह से झाग मिला खून बारम्बार गिरे तथा कूख में ज़ोर से दर्द हो, वह रोगी नहीं बचे।

(१०७) बल और मांस के घटने पर रोग ज़ोर से बढ़े, रोगीको अन्न से अरुचि हो, तो रोगी तीन दिन भी कठिन से जीवे।

(१०८) वातष्ठीला के अच्छी तरह पैदा होकर, हृदय में दारुण भाव से अवस्थिति करने पर, अगर रोगी प्यास से दुःखित हो जाय, तो वह तत्काल मरे।

(१०९) अगर वायु पैरों की दोनों गाँठों को शिथिल करके और नाक को टेड़ी करके शरीर में विचरे, तो रोगी तत्काल मरे।

(११०) जिसकी दोनों भौंहें अपने स्थानसे लटक पड़ें, भीतर ज़ोर से दाह होता हो, हिचकियाँ चलती हों, वह रोगी तत्काल मरे।

(१११) जिस रोगीका रक्त-मांस क्षीण हो गया हो, उसकी वायु ऊपर की ओर जाकर गर्दन की दोनों नसों को दुखाती हुई घूमती फिरे, वह शीघ्र ही मरे।

(११२) अगर वायु गुदा से होकर नाभि में जाकर जाँघों और पेड़ू के दोनों जोड़ों में दर्द पैदा करे और रोगी कमज़ोर हो, तो मर जाय।

(११३) अगर बलवान वायु गुदा और हृदय में एक साथ पीड़ा करे, तो कमज़ोर रोगी जल्दी ही मर जावे।

(११४) अगर बलवान वायु गुदा और हृदय में पीड़ा करती-करती श्वास रोग पैदा कर दे, तो वह रोगी तत्काल मर जाय।

(११५) जिसके दोनों वंक्षण वायु-शूल से पीड़ित हों, साथ-साथ दस्त होते हों, और प्यास का ज़ोर हो, तो रोगी तत्काल मरे।

(११६) जिसका शरीर वायु की सूजन से सूज रहा हो, दस्त होते हों और प्यास लगती हो, वह रोगी तत्काल मरे।

(११६ क) जिसके आमाशय में कैंचीसे कतरने की सी पीड़ा होती हो, साथ ही प्यास और गुदा में दर्द होने लगे, वह रोगी तत्काल मर जाय * ।

(११७) वायु जिसके पक्वाशय में जाकर बेहोशी और कण्ठ में कफ का घरघराहट प्रकट कर दे, वह रोगी तत्काल मर जाय ।

(११८) जिसके दाँत कीच और चूने से हो जायँ, मुँह पर धूल सी उड़ने लगे, पसीने आने लगें, रोएँ खड़े हो जायँ, वह तत्काल मर जाय ।

(११९) जिस रोगी की आँतों में गड़गड़-गड़गड शब्द होता हो, दस्त लगते हों, साथ ही प्यास, श्वास, मस्तक-रोग, मोह और दुर्बलता हो, वह तत्काल मरे ।

(१२०) जो सप्तऋषियोंके समीप अरुन्धती नक्षत्रको नहीं देखता, वह वर्ष दिन के भीतर ही मर जाता है ।

(१२१) जिसमें, विना कारण, भक्ति, शील, स्मृति, त्याग, बुद्धि और बल,—ये छै हठात पैदा हो जायँ, वह छै मास में मरे ।

(१२२) जिसके ललाटमें अकस्मात सुन्दर और अपूर्व नस-जाल प्रकट हो जाय, वह छह महीने से ज़ियादा नहीं जीवे ।

(१२३) जिसके ललाट में चन्द्रकलाके समान रेखा दीखने लगें, वह छह मास में मर जाय ।

(१२४) जिसका शरीर काँपे, मोह हो, जिसकी चाल और बातें मतवालों की सी हों, वह एक महीने से ज़ियादा नहीं जीवे ।

(१२५) जिसके शुक्र, मूत्र और मल जलमें डूब जायँ और जो अपने प्यारों से वैर करे, वह मर जाय ।

(१२६) जिसके हाथ पैर और मुँह सूख जायँ अथवा हाथ पैर और मुख पर सूजन चढ़ आवे, वह एक मास भी न जीवे ।

---

* ऐसी दशा भगन्दर आदि रोगोंके अन्तमें हुआ करती है ।

(१२७) जिसके ललाट अथवा वस्तिमें टेढ़ी और नीली रेखा पैदा हों, वह नहीं बचे ।

(१२८) जिसकी देह में मूँगे के समान फुन्सियाँ प्रकट हों और वे फुन्सियाँ जल्दी न सूखें, तो रोगी मर जाय ।

(१२९) जिसकी गर्दन में ज़ोर से दर्द हो, जीभ में सूजन हो, वद हो और गला पक जाय, वह नहीं बचे ।

(१३०) भ्रम, अति प्रलाप और घोर हड़फूटन होने से रोगी को काल-फाँस में समझो ।

(१३१) अगर रोगी बेहोशी में अपने बालोंको खींचे और उखाड़े, तो नहीं बचे ।

(१३२) अगर कमज़ोर और कुछ भी न खानेवाला रोगी, निरोगी और जवान की तरह खाय और उसमें बल भी आ जाय, तो समझ लो कि, अब वह मरेगा ।

(१३३) अगर रोगी आँखों के पास उँगली ले जाय, कुछ ढूँढ़तासा मालूम हो, विस्मित की तरह ऊपर की तरफ़ देखे, पलक न लगें; इस तरह ढूँढे मानो उसका शरीर, उसकी खाट, उसके कपड़े कहीं चले गये हैं; और ढूँढ़ते-ढूँढ़ते तत्काल बेहोश हो जाय, उसे काल के फन्दे में समझो ।

(१३४) जो संज्ञाहीन रोगी बिना सबब हँसे, जीभ से दोनों होठ चाटे और उसके हाथ पैर और मांस शीतल हों, वह नहीं जीवे ।

(१३५) जिस रोगी को अपने प्यारे नातेदार पास बैठे रहने पर भी न दीखें, उनके नाम ले लेकर पुकारे, सबकी ओर देखे, मगर किसीको पहचाने नहीं, वह नहीं बचे ।

सूचना—जिन्हें अधिक अरिष्ट-लक्षण, शुभाशुभ स्वप्न और शकुन, एवं मृत्यु-कारक योग प्रभृति "कालज्ञान-" सम्बन्धी बातें जाननी हों (जिनका जानना प्रत्येक वैद्यको परमावश्यक है), वह हमारे यहाँ से "कालज्ञान" नामक पुस्तक ॥≈) भेजकर या वी० पी० से मँगाले । मूल्य ॥) है ; पर वी० पी० से ॥।) लगते हैं ।

महारोग।

वात रोग, प्रमेह, कोढ़, ववासीर, पथरी, मूढ़गर्भ, भगन्दर और उदर रोग—ये आठों महारोग हैं और इनका इलाज कठिन है। अगर इन रोगों के साथ वलक्षय, मांसक्षय, श्वास, प्यास, शोष, वमन, ज्वर, वेहोशी, अतिसार और हिचकी—ये उपद्रव भी हों; तव तो "करेला और नीमचढ़ा" वाली कहावत चरितार्थ हो अर्थात् उपद्रवों के साथ होने पर ये रोग हरगिज़ आराम न हों, इसलिये सिद्धि चाहनेवाला वैद्य ऐसे रोगियों को अपने हाथ में न ले।

ज्वर।

२ जिस ज्वर रोगी की जीभ खरदरी और नीली-पीली हो जाय, श्वास की वायु अत्यन्त गर्म हो, शरीर के रोएँ खड़े हो, नेत्र नीले, लाल और पीले हों, कण्ठमें कफ घरघर करे—वह रोगी निश्चय ही मर जाय।

३ जिस ज्वर रोगी के मुँह में जल्दी-जल्दी साँस आवे, दाँतों की पंक्ति काली हो जाय, आँखें ठहर जायँ, एवं शरीर में ज़ोर आजाय—वह रोगी नहीं जीता।

४ जिस ज्वर रोगी के मुँह से रक्त गिरे, जिसके सिरमें दर्द हो, जिसे भीतर से गरमी और वाहर से शीत लगे, वह रोगी मर जाय।

५ जिस ज्वर* रोगी को मोह हो, किसी तरह का होश न हो, बाहर सर्दी और भीतर गरमी लगे, ऐसा रोगी मर जाय।

६ जिस ज्वर रोगी के रोएँ खड़े हों, हृदय में दारुण शूल यानी भयानक दर्द हो, मुँह से निरन्तर ऊँचे साँस लेता हो—वह रोगी मर जायगा।

७ जो ज्वर-रोगी हिचकी और साँस से पीड़ित हो, जिसकी आँखें भ्रमती हों, जो शरीर से क्षीण हो गया हो और ऊँचे साँस लेता हो—वह रोगी मर जायगा।

८ जिस ज्वर रोगी के नेत्र धूएँकेसे रङ्ग के हों, जिसे होश न हो, जिसके रक्त और माँस क्षीण होगये हों, एवं जिसे अत्यन्त तन्द्रा हो—वह रोगी मर जायगा।

६ जिस ज्वर रोगी को बहुत ही वमन होती हों, आँखों से जल गिरता हो, अरुचि हो, भीतर आग लग रही हो, और जीभ काली हो गई हो—वह रोगी मर जायगा।

१० जिस रोगी को सवेरे ही बुखार चढ़े, बुखार के साथ ज़बर्दस्त सूखी खाँसी हो, बल और माँस क्षीण हो गये हों, उस रोगी को मरे हुए के समान ही समझो। (चरक)

११ जिस कफज्वरवाले मनुष्यके मुँहसे सवेरे के समय अत्यन्त पसीना गिरे, उसका जीना कठिन है। (बङ्गसेन)

१२ जो ज्वर बहुतसे प्रबल कारणोंसे उत्पन्न हुआ हो, जिसमें सम्पूर्ण लक्षण मिलते हों, वह ज्वर प्राण हरण करता है।

१३ जो ज्वर पैदा होते ही और चिकित्सा करते-करते ही इन्द्रियों की शक्ति को नष्ट करदे अर्थात् अन्धा, बहरा, गूँगा आदि करदे, उसे असाध्य समझना चाहिये।

१४ जो पुरुष ज्वर से क्षीण हो गया हो, अथवा जिसके शरीर में

* ज्वर आठ प्रकार का होता है। इसमें शरीर गर्म हो जाता है।

सूजन आगई हो, वह रोगी शायद ही बचे; क्योंकि ये असाध्य लक्षण हैं।

१५ जो ज्वर प्रकट होते ही विषम हो जाय, जो ज्वर बहुत दिन से आया करे, और दुबले रूखे शरीरवाले को गम्भीर ज्वर हो, तो मृत्यु समझो।

१६ जो रोगी मूर्च्छित होकर मोह को प्राप्त हो, गिरकर जिससे उठा न जाय पड़ा ही रहे, एवं बाहर सरदी और भीतर गरमी लगे— वह रोगी मर जावे।

अतिसार।

१७ जिसके शुरू में अतिसार* हो, पीछे श्वास और शोष पैदा हों, वह शीघ्र ही मर जावे।

१८ जिसको श्वास, शूल और प्यास ये रोग सता रहे हों, जो क्षीण हो, जिसे ज्वरने सताया हो, ऐसे वृद्ध रोगी को यदि अतिसार हो जाय, तो मरण ही समझो।

१६ जिसको अतिसार, सूजन, अरूचि और शूल—ये रोग हों, उसकी अनेक प्रकार की चिकित्सा करने पर भी मृत्यु होगी।

सूजन।

२० बालक, अति वृद्ध और विकल मनुष्य के सारे शरीर में सूजन हो, तो निश्चय ही मरण हो।

२१ जिसके पेट से सूजन आरम्भ होकर क्रम से हाथ पैरों में फैल जावे, वह सूजन रोगी के सम्बन्धियों को वृथा हैरान करके शेष में रोगी के प्राणनाश करे। (चरक)

* अतिसार छै प्रकार का होता है। इस रोगमें पतले दस्त होते हैं। कभी दस्त के साथ आँव और कभी आँव तथा खून दोनों आते हैं।

इस रोग के निदान लक्षण और चिकित्सा पूर्णरूप से "चिकित्साचन्द्रोदय" तीसरे भाग में लिखी गई है। मूल्य सजिल्दका ५) अजिल्द का ४।)

२२ जिसके दोनों पैरों में सूजन हो, दोनों पिंडरियाँ ढीली हो जायँ और दोनों जांघें रह जायँ, वह रोगी नहीं बचे। (चरक)

२३ जिसके हाथ, पैर, गुदा और पेट सूज रहे हों एवं जिसका वर्ण, वल और आहार मारा गया हो, वह दवा करने योग्य नहीं है।

२४ जो सूजन नीचेके अङ्ग से प्रकट होकर ऊपर को चढ़ती है, वह असाध्य होती है।

२५ जिस सूजन वाले रोगी को श्वास, प्यास, वमन, दुर्बलता,ज्वर और अरुचि हो, उसे वैद्य त्याग दे ; क्योंकि वह नहीं बचेगा।

२६ दूसरे रोगों के उपद्रव से प्रकट न हुई हो ऐसी सूजन पहले पैरों से उत्पन्न होकर, पीछे मुख आदि ऊपर के स्थानों में उत्पन्न हो, उसे "उल्टी सूजन" कहते हैं। अगर पुरुष के ऐसी सूजन पैदा हो, तो वह मर जावे। जो सूजन पहले मुख पर हो, पीछे पैरों पर उतरे, वह सूजन स्त्रियों को घातक है।

जो सूजन पहले गुदा में हो, पीछे वहाँसे सब शरीर में फैल जाय, वह स्त्री और पुरुष दोनों को नाश करती है।

शूल ।

२७ जिसके अफारा, शूल, श्वास रोग, प्यास, मूर्च्छा, और सिर-दर्द—ये रोग हों, वह शूल* रोगी मर जावे।

२८ जिस शूल-रोगी के मांस, वल और अग्नि ये क्षीण हो जायँ, उसका रोग असाध्य समझो।

पाण्डु ।

२९ जिस रोगी के दाँत, नाखून और नेत्र तीनों पीले हो गये हों

*दोनों पसलियों, हृदय, नाभि और पेड़ू—इन पाँचों स्थानों में से किसी में भी शूल हो, उसी को शूल समझो। शूलरोगमें शूल के घाव के समान पीड़ा होती है, इसीसे इसे "शूल" कहते हैं।

जिसे सब चीज़ें पीली ही पीली * दीखती हों, वह पाण्डु-रोगी मर जायगा।

†

३० जिसका चमड़ा पीला हो जाय, जिसके नेत्र और मूत्र पीले हो जायँ और जो सब जगह पीलापन-ही-पीलापन देखे, वह पाण्डुरोगी मर जाय।

३१ जिस पाण्डु-रोगी के सारे शरीर में सूजन आ गई हो और जिसे सब चीजें पीली दीखती हों, वह पीलियेवाला नहीं बचे।

३२ जिसकी देह का रङ्ग सफ़ेद हो एवं जो वमन, मूर्च्छा और प्यास से पीड़ित हो, वह रोगी नष्ट हो जाय।

३३ जिस पाण्डुरोगी के हाथ, पैर और सिरमें सूजन हो और बीच का भाग पतला हो, वह रोगी आराम न हो।

३४ जिस रोगी की देहके बीच में सूजन हो, हाथ, पाँव और सिर ये सूख जायँ, गुदा और लिङ्ग में सूजन हो तथा जो मुर्दे के समान हो गया हो, ऐसा पाण्डु रोगी आराम नहीं होता। वैद्य ऐसे रोगी को त्याग दे।

कामला।

३५ जिस मनुष्य का मल काला और मूत्र पीला हो, शरीर पर सूजन विशेष हो; नेत्र, मुख, वमन, मल और मूत्र ये अत्यन्त लाल हों; मोह हो, वह कामला * रोगी नहीं बचे।

---

† पाण्डु रोग पाँच प्रकार-का होता है। अति मैथुन, खट्टे, नमकीन और चरपरे पदार्थ तथा मिट्टी खाने और दिन में सोने, एवं बहुत शराब पीनेसे पाण्डु रोग होता है। बोलचाल की भाषा में इसे "पीलिया" कहते हैं। वातादि दोष त्वचा और मांसको दूषित करते हैं, तब यह रोग होता है। हारीत कहते हैं, इसमें वातादिक दोष—दोष और रस दूष्य होता है।

पाण्डु, कामला और हलीमक रोग की चिकित्सा भी 'चिकित्साचन्द्रोदय" के तीसरे भाग में लिखी गई है।

* कामला रोग पाण्डु रोगकी उपेक्षा करनेसे ही होता है। कोष्ठाश्रय कामलाको "कुम्भ कामला" कहते हैं। कामला रोग के निदान, लक्षण और चिकित्सा तीसरे भागमें लिखी गई है।

३६ जिस-कामला रोगी को दाह, अरुचि, प्यास, अफारा, तन्द्रा, मोह और मन्दाग्नि हो तथा जिसे कोई बात याद न रहती हो, वह कामला रोगी तत्काल मरे।

३७ जिस कुम्भ-कामला रोगी को वमन, अरुचि, ओकारी आना, अनायास थकान मालूम होना, श्वास, खाँसी और अतिसार—इतने रोग हों, वह अवश्य मर जाय।

राजयक्ष्मा।

३८ जिस रोगी के नेत्र सफेद हों, जिसे अन्न के नाम से वैर हो, जिसे ऊँचे श्वाससे हर समय कष्ट हो एवं जिसे बड़ी तक़लीफ़से बारम्बार पेशाब होता हो—ऐसा राजयक्ष्मा* या क्षय रोगी मर जाय।

३६ जो खूब खाने पर भी दिन-पर-दिन दुबला होता जाय, वह क्षय-रोगी असाध्य है। जिस क्षयी रोग वाले को अतिसार हो, वह भी असाध्य* है।

३६ (क) जिस यक्ष्मावाले के फोंतों और पेट पर सूजन हो, उसका आराम होना असम्भव* है, इसलिए ऐसे रोगीको वैद्य हाथ में न ले।

---

* अपान वायु और मलमूत्र आदि वेगोंके रोकने, अति मैथुन, उपवास, ईर्ष्या, और सोच-फिक्र करने,बलवानसे वैर करने एवं कुसमयमें थोड़ा बहुत खानेसे वातादि तीनों दोष कुपित होकर राजयक्ष्मा पैदा करते हैं। इसे शोष,क्षय, राजयक्ष्मा या राज-रोग कहते हैं। इसमें कन्धों और पसवाड़ोंमें दर्द, पैरोंमें जलन और सब शरीरमें ज्वर रहता है। बल-मांस के क्षीण होने पर रोगी त्याज्य है, इलाज करने योग्य नहीं है। यदि बल-मांस क्षीण न हुए हों और चाहे सभी लक्षण हों, तो चिकित्सा करना उचित है।

+ क्षयी रोगवाले का जीना मलके अधीन है। इसलिये क्षयवाले के मलकी रक्षा करनी चाहिये। कहा है—

मलायत्तं बलं पुसां, शुक्रायत्त तु जीवितुम।
तस्मादयत्नेन संरक्षेत् यक्षिणो मलरेतसी॥

+ इसलिए आराम होना असम्भव है, कि शोथ या सूजन बिना दस्त कराये आराम नहीं होतो और क्षय रोग में दस्त कराना मना है।

श्वास।

४० जिस श्वास रोगी का साँस मुँह से निकले, वह तो शीतल हो और नाक से निकले वह गरम हो, नाड़ी जल्दी-जल्दी चले, एवं रोगीमें चलने की सामर्थ्य न हो—वह श्वास-रोगी शीघ्र ही मर जाय।

४१ जिस श्वास-रोगी के अङ्ग काँपें, जिससे चला न जाय, जिस का मुँह केशर के समान पीला हो जाय और दस्त जाते समय हवा निकले; वह श्वास रोगी मर जाय।

उदर-रोग।

४२ जिस उदर-रोगी* की पसलियाँ फटी जाती हों; यानी उनमें बड़े ज़ोर की पीड़ा होती हो, अन्न खाने की इच्छा न हो, सूजन और दस्तों से दुखी हो, जुलाब या और किसी क्रिया से पेटका जल वगैरः निकाल देने पर भी थोड़े ही दिनों में फिर पेट बढ़ जाय—उस रोगी को वैद्य त्याग दे।

४३ जिस उदर-रोगी की आँखों पर सूजन हो, लिङ्ग टेढ़ा होगया हो, पेट का चमड़ा गीला तथा पतला हो गया हो एवं बल, अग्नि, रुधिर और मांस—ये क्षीण होगये हों, वह रोगी त्याज्य है। ऐसे रोगीको वैद्य हाथ में न ले।

४४ जिस उदर-रोगी के मल और मूत्र गाँठदार निकलें, जिसके शरीरमें गरमी न रहे, "चरक"में लिखा है, ऐसा उदर-रोगी श्वाससे मरे।

---

† महाश्वास, उर्द्ध श्वास, छिन्नश्वास, तमकश्वास और क्षुद्रश्वास—पाँच तरह के श्वास-रोग होते हैं। पहले तीन श्वास रोगों से कोई भाग्यवान ही बचता है। चौथा तमक श्वास कष्टसाध्य है। हाँ, पाँचवाँ क्षुद्र श्वास बेशक साध्य है। हिचकी और श्वास जितनी जल्दी मनुष्य के प्राण हरण करते हैं और रोग नहीं करते।

* उदर-रोग आठ तरह के होते हैं। उदररोग जन्म से ही प्रायः कष्टसाध्य होते हैं। बलवान पुरुष के उदर रोग हो और पेट में पानी न आया हो, तब तो किसी तरह बड़ी कठिनाइयों से आराम हो जाय। पानी पैदा होने के बाद सभी उदर रोग मारक होते हैं। हाँ, बढ़िया शस्त्र-चिकित्सा रोगी को सुखी कर सकती है।

गुल्म रोग ।

४५ जिस गुल्म-रोगी को श्वास की पीड़ा हो; पसली, हृदय, पेडू, प्रभृतिमें से किसीमें शूल चलता हो, बहुत ज़ोर की प्यास हो, अन्न का नाम बुरा लगता हो, रोगी कमज़ोर हो गया हो और इनके साथ ही गोले की गाँठ अकस्मात् लोप हो जाय—वह रोगी मर जायगा ।

४६ जब गुल्म यानी गोला धीरे-धीरे सारे पेट में फैल जाता है, धातुओं में उसकी जड़ जा पहुँचती है, नाड़ियों यानी नसों का जल उसपर लिपट जाता है, बाक़ी रहा हुआ गोला पीठकी तरह ऊँचा हो जाता है; तब गुल्म रोगी निर्बल हो जाता है, खाने पर मन नहीं रहता, सूखी उल्टी आती हैं; खाँसी, वमन, प्यास, ज्वर, तन्द्रा और पीनस—ज़ुकाम—ये लक्षण पैदा हो जाते हैं—ऐसी अवस्था होने पर गुल्म-रोगी असाध्य हो जाता है ।

४७ यदि गुल्म* रोगी को वमन होती हों, दस्त लगते हों, हृदय, नाभि और हाथ पैरों में सूजन हो, साथ ही ज्वर और दम का उठाव हो—तो रोगी जीवित नहीं रह सकता ।

रक्तपित्त ।

४८ जिसकी जीभ, दोनों होठ और आँखें लाल हो जायँ अथवा

* वातादिक दोषों के अत्यन्त दुष्ट होने से पेटमें गाँठ सी हो जाती है । इस गाँठ, या गोलेके रहने के पाँच स्थान हैं—दोनों पसवाड़े, हृदय, नाभि और बस्ति (पेडू)। यह गोला चलायमान और निश्चल दोनों तरह का होता है और घटता-बढ़ता भी रहता है ।

गुल्म और अन्तर्विद्रधि दोनों सूरत में एकसे होते हैं, रहने के स्थान भी दोनोंके एक ही हैं ; तब इनमें फर्क क्या है ? गुल्म निराश्रय है और अन्तर्विद्रधि साश्रय है । गुल्म दोषोंमें रहता है; अन्तर्विद्रधि मांस और खूनमें रहती है; गुल्म मुट्ठी के बराबर होता है, विद्रधि गुल्म से बड़ी होती है, विद्रधिका पाक होता है; किन्तु गुल्म का पाक नहीं होता ।

उनके मूत गिरे,—ऐसा रक्तमूत्र वाला, रक्तातिसारवाला और रक्तपित्त+ वाला रोगी मर जाता है।

४६ जिस रोगी को खूनकी उल्टी हों, आँखें लाल हों, सब ओर लाल ही लाल रङ्ग दीखे,—ऐसा रक्तपित्त-रोगी मर जाता है।

५० जो रक्तपित्त मांस के धोवन, सड़े पानी, कीच, मेद, राध, रुधिर, कलेजे के टुकड़े, पकी जामुन, काले रङ्ग, नीले रङ्ग या पपैहा के पङ्ख के समान हो, जिसमें मुर्देकी सी बदबू आवे और साथ ही श्वास आदि रक्तपित्तके उपद्रव हों, वह रक्तपित्त आराम नहीं हो सकता और वह रक्तपित्त भी असाध्य है, जिसका रङ्ग इन्द्र-धनुषके समान हो।

बवासीर ।

५१ जिस बवासीर* रोगी के मुखपर सूजन हो, भ्रम, अरुचि, विबन्ध और पेट के शूल से रोगी पीड़ित हो, वह रोगी मर जाता है।

५२ जिस बवासीर वाले रोगीको प्यास बहुत लगती हो, अन्न

+ रक्तपित ऊपर और नीचे के दोनों रास्तों से होता है। ऊपरवाला साध्य, नीचेवाला याप्य और दोनों ओर से होने वाला असाध्य होता है। नाक, कान, आँख और मुँह से जब खून गिरता है, तब ऊपरका रक्तपित्त कहते हैं। यही साध्य होता है; क्योंकि यह कफ से होता है। जब लिङ्ग, भग और गुदा से खून निकलता है, तब इसे नीचे का या अधोमार्गी कहते हैं। जब रुधिर अत्यन्त कुपित होता है, तब आंख, कान, नेत्र, मुख, गुदा और लिङ्ग तथा शरीर के सभी रोम-छिद्रोंसे खून गिरता है। यह असाध्य समझा जाता है।

* मनुष्य की गुदा में तीन आँटे या बलियाँ होती हैं। ऊपरके आँटेको प्रवाहिणी, बीचके को सर्जनी और तीसरे को ग्राहिणी कहते हैं। प्रवाहिणी मल और अपान वायु आदि को बाहर लाती, सर्जनी बाहर निकाल देती और ग्राहिणी मल आदिके निकल जानेपर गुदाको जैसी की तैसी बन्द कर देती है। इन्हीं तीन आँटोंमें बवासीर के मस्से होते हैं। उनसे खून गिरता है और नहीं भी गिरता। जिस बवासीर में खून गिरता है, उसे खूनी और जिसमें खाली चटखे चलते हैं, उसे बादी बवासीर कहते हैं। वैद्यकके मतसे बवासीर छै तरह की होती हैं। लोकमें साधारण लोग दो तरह की ही कहते हैं। गुदाके बाहर के आँटेकी और एक साल की पुरानी बवासीर आराम हो जाती है; पर बीच के आँटेकी कठिन से आराम होती है। जन्मकी, त्रिदोषज और भीतरके तीसरे आँट की असाध्य होती है। इस की चिकित्सा तीसरे भाग में लिखी है। मूल्य ४।) सजिल्द के ५)

अच्छा लगता न हो, शूल चलते हों, खून बहुत गिरता हो, दस्त लगते हों और सूजन हो, ऐसा रोगी मर जाता है ।

५३ जिस बवासीर वाले के हाथ, पैर, गुदा, नाभि, मुँह और फोतों पर सूजन हो और पसवाड़ों में दर्द हो, वह असाध्य है ।

५४ जिस बवासीरवाले के हृदय और पसलियों में दर्द हो, इन्द्रियों और मनमें मोह हो, वमन होती हों, अङ्गोंमें पीड़ा हो, बुखार चढ़ता हो, प्यास ज़ोर से लगती हो, गुदा पक जाय यानी गुदा पर पीले-पीले फोड़े हो जायँ, वह रोगी असाध्य है ।

विद्रधि ।

५५ जिस विद्रधिवाले के पेट पर अफारा हो, पेशाब रुक गया हो, उल्टियाँ होती हों, हिचकियाँ चलती हों, पसली वग़ैर·में कहीं शूल चलता हो, प्यास और श्वास से रोगी दुःखी हो, तो रोगी मर जायगा ।*

भगन्दर ।

५६ जिस भगन्दर† रोगीके घाव से अधोवायु, मूत्र, विष्ठा, कीड़े और वीर्य्य ये गिरते हों, उसको असाध्य समझो ।

---

* एक प्रकारकी गोल और लम्बी सूजनको "विद्रधि" कहते हैं। यह हड्डी तक पहुँच जाती और पैदा होनेके समय घोर पीड़ा करती है। ये छै तरह की होती है। कोई गूलरके समान, कोई मिट्टीके सरावेके समान, कोई ऊपर से पतली नीचेसे मोटी अनेक तरह की होती है। कोई पकती है, कोई नहीं पकती है। गुदा वस्ति, मुख, नाभि, कूख, वंक्षण, वृक्क, प्लीहा, हृदय, क्लोम (प्यास का स्थान) इसके होनेके स्थान हैं। यह बाहर भी होती है और भीतर भी। बड़ा खराब रोग है ।

† गुदाके पास, दो अंगुलकी ऊँचाई पर, पीछेकी तरफ, एक फुन्सीसी होती है। उसमें बड़ा दर्द होता है। जब वह फूट जाती है, उसे "भगन्दर कहते हैं। उपेक्षा करनेसे उसमें चलनीकी तरह अनेक छेद हो जाते हैं। उनमेंसे मल, मूत्र, और वीर्य्य निकलने लगते हैं। भगन्दर सभी दुस्साध्य होते हैं। त्रिदोषज और क्षतज तो असाध्य ही होते हैं।

पथरी।

५७ जिस रोगी के नाभि और फोतों पर सूजन हो, पेशाव रुक जावे, शूल चले; ऐसा पथरी*, सिकता और शर्करावाला रोगी मर जाय।

मूढ़ गर्भ।

५८ जिस स्त्री के बच्चा होता-होता गर्भ-मार्गमें रुक जाय, बाहर न निकले, मक्कल्ल शूल हो तथा खाँसी श्वास आदि उपद्रव भी हों, वह स्त्री मर जाय†।

५९ जिस गर्भिणी का सिर नीचा हो जाय, देह शीतल हो जाय, लज्जा-शर्म का ध्यान न रहे, जिसकी कोखमें हरी नीली नसें उठ खड़ी हों, वह गर्भिणी आप मरती और गर्भ को मारती है अथवा गर्भ उसे मारता और आप मरता है; अर्थात् गर्भगत बालक और गर्भिणी दोनों मर जाते हैं‡।

मृगी।

६० "सुश्रुत" में लिखा है, जिसे बारम्बार जल्दी-जल्दी अपस्मार यानी

---

*पथरी रोग वस्ति या पेड़ू में होता है। वीर्य्य आदि की गाँठसी जम जाती है। मैथुन के समय चलते हुए वीर्य्य और मलमूत्र आदि वेगोंके रोकनेसे पथरी होती है। फोतोंके पास की सींवन और पेड़ू के अगले भागमें दर्द होता है। पथरी के कारण पेशावकी राह रुक जाती है। इसलिये पेशावकी धार फटी-फटीसी आती है, पेशावके समय जोर करनेसे भयानक पीड़ा होती है। पेशाव में शक्करसी जाय, वह "शर्करा" और बालूसी जाय, वह "सिकता" कहाती है। पीलिया, उष्णावात, हृदय-शूल आदि पथरी के उपद्रव हैं।

† मूढ़ गर्भ की गति आठ प्रकार की होती है। वायुके योगसे गर्भ टेढ़ा होकर अनेक तरह से योनि-द्वारमें आकर अड़ जाता है। कोई सिरसे, कोई पेटसे, कोई एक हाथ से, कोई दोनों हाथों से योनि-द्वार को रोक देता है। किसीके हाथ पैर कुत्की तरह बाहर निकल आते हैं और शरीर योनिके भीतर अटका रहता है।

‡ मूढ़ गर्भके कारण से तो स्त्रीकी योनिका द्वार बन्द हो जाता है, बालक अटक जाता है; किन्तु जब पेटमें बच्चा माताके मानसिक और आगन्तुक दुखों से मर जाता है, तब उसे "मृतगर्भ" कहते हैं। जब पेट में बालक मर जाता है, तब गर्भ हिलता-चलता नहीं, बच्चा होने के दर्द बन्द हो जाते हैं, शरीर हरा और नीला सा हो जाता है, श्वासमें दुर्गन्ध आती है, एवं आँतों के फूलनेसे पेट सूज जाता है— ऐसे लक्षण होने से बालक को मरा समझना चाहिये।

मृगी*का दौरा हो,जो कमज़ोर हो जाय,जिसकी भौंहें चलायमान हों और जो आँखोंको बुरी तरहसे चलावे,वह मृगी रोगवाला मर जाय । हारीतने पार्श्वभङ्ग,अन्नसे वैर,सूजन और अतिसार ऊपरके लक्षणोंके साथ और जोड़े हैं ।

वात-व्याधि ।

६१ हारीत ने कहा है—जिस वात व्याधिवाले† को शूल हो, चमड़ा सूना हो यानी स्पर्श-ज्ञान न हो, शरीर फटा हो, (या हड्डी टूटी हो) अफारा हर समय बना रहता हो और रोगी दुखी हो, वह मर जायगा । "सुश्रुतमें" सूजन और कम्प अधिक लिखे हैं ।

प्रमेह ।

६२ यदि प्रमेह‡ रोगी का प्रमेह उपद्रवों-सहित हो,अत्यन्त बहता

*मृगीको अपस्मार इसलिये कहते हैं कि, इस रोगमें स्मृतिका नाश हो जाता है, कुछ ज्ञान नहीं रहता । इसी वजह से रोगी के लिये जल वगैरः से भय रहता है । अधिक चिन्ता, शोक, लोभ, मोह आदि से वातादि दोष कुपित होकर, मन के बहनेवाली नाड़ी में जाकर स्मरण (ज्ञान) का नाश कर, अपस्मार रोग पैदा करते हैं । मृगी-रोगी दाँतों को चबाता, मुँह से झाग गिराता, भौंहें हिलाता और आँखोंको टेढ़ी-बाँकी करता है । उसे ऐसा मालूम होता है, मानो काला,पीला, सफेद आदमी मेरे पास दौड़ा आता है । पुरानी और दुर्बल की मृगी असाध्य होती है ।

† वात-व्याधि बहुत प्रकार की होती हैं । आक्षेपक, दण्डापतानक, धनुस्तंभ, मन्यास्तम्भ, शिराग्रह, हनुग्रह, लकवा, फालिज, मुँह टेढ़ा हो जाना और आधा शरीर रह जाना प्रभृति रोग वात व्याधि में शामिल हैं ।

‡ अन्नका न पचना, अरुचि, ज्वर, खाँसी और पीनस,—ये कफ प्रमेह के और वस्ति यानी पेड़ू में दर्द, फोतोंका पककर फटना, ज्वर, प्यास, खट्टी डकार, मूर्च्छा और पतले दस्त—ये पित्त प्रमेह के और उदावर्त्त, हृदय तथा गलेका रुकना, सब रसोंके खानेकी इच्छा, शूल, निद्रानाश, शरीर सूखना, सूखी खाँसी और श्वास—ये वात प्रमेह के उपद्रव हैं । प्रमेह बीस प्रकार के होते हैं । ये पेशाब की बीमारियाँ हैं । इनमें तरह-तरह के पेशाब होते हैं । इस रोगवालेके किसी के मत से सात तरह की (चरकके मत से) किसी के मत से नौ तरह की (सुश्रुत और भोज के मत से) और किसी के मत से दस तरह की पिड़िका या फुन्सियाँ होती हैं । गुदा, हृदय, सिर, कन्धा, पीठ और मर्मस्थान की पिड़िकायें असाध्य होती हैं । सब प्रमेहों में मधुमेह खराब है । दवा न करने से, समय पाकर, सभी प्रमेह 'मधुमेह" हो जाते हैं । मधुमेहवाले का पेशाब मधु या शहद के समान होता है । पेशाब में चींटियाँ लगने लगती हैं ।

हो, शराविका कच्छपिका आदि फुन्सियाँ रोगी को अत्यन्त पीड़ित करती हों, तो प्रमेह रोगी मर जाय।

कोढ़।

६३ जिस कोढ़-रोगी का शरीर फट गया हो, अङ्गों से कोढ़ चूता हो, नेत्र लाल हों, स्वरभङ्ग हो ; स्नेह, स्वेद, वमन, विरेचन प्रभृति पंच कर्मोंसे कुछ लाभ न हो, कुष्ठ अस्थिगत होगया हो, ऐसा कोढ़ी मर जाता है।

६४ गुदा, हाथ, पैर, तलवों और होठों में यदि किलास कोढ़ हो, और वह पुराना भी न हो ; तोभी यश चाहनेवाला वैद्य ऐसे कोढ़ी की चिकित्सा न करे *।

उन्माद।

६५ जो उन्माद-रोगी सदा मुँह नीचा रक्खे, अथवा सदा ऊपर को मुँह रक्खे, मांस-बल क्षीण हो गये हों, दिन-रात जागता रहे, किसी बात का सन्देह न रहे—ऐसा पागल मर जाता है।

---

* कोढ़ अठारह प्रकार के होते हैं। उनमें सात महाकुष्ट और ग्यारह क्षुद्र कुष्ट होते हैं। बड़ा खराब रोग है। कोढ़ वाली के साथ मैथुन करने से, कोढ़ी के शरीरसे शरीर लग जाने से, कोढ़ी का श्वास लगनेसे, कोढ़ी के साथ एक बासन में भोजन करने से, कोढ़ी के साथ एक पलँग पर सोनेसे, कोढ़ी के साथ मिलकर बैठने से, उसके पास रहने से, कोढ़ी के कपड़े पहनने से, कोढ़ी की पहनी हुई माला पहनने से, सूँघा हुआ फूल सूँघने से और कोढ़ीके लगाये चन्दन में से चन्दन लगाने से कोढ़ हो जाता है। यह रोग उड़कर लगता है। कोढ़, ज्वर, क्षय, नेत्ररोग, चेचक आदि रोग संक्रामक कहलाते हैं ; यानी उड़कर लगते हैं। इसलिये बुद्धिमानों को इनसे हर तरह बचना चाहिये। कोढ़ रोग ऐसा है कि, मरने पर भी पीछा नहीं छोड़ता। कहा है :—

> म्रियते यदि कुष्टेन पुनर्जातस्यतद् भवेत।
> नातोनिंद्यतरोगो यथा कुष्टं प्रकीर्त्तितम्॥

कोढ़ीके मर जानेपर भी दूसरे जन्ममें कोढ़ होता है।

६६ जिस उन्माद* रोगीके नेत्र भयानक हो जायँ, जल्दी-जल्दी चलें, मुँह से झाग निकलें, जिसे नींद बहुत आवे, जो गिर-गिर पड़े और जो काँपे, वह रोगी असाध्य है। जो हाथी, पर्वत, वृक्ष, देवमन्दिर आदिसे गिर कर उन्मादग्रस्त हो, वह भी असाध्य है। तेरह वर्ष के बादका उन्माद रोग भी असाध्य हो जाता है।

विशूचिका।

६७ जिस रोगीके दाँत, नाखून और होठ काले पड़ जायँ, संज्ञा जाती रहे, होश-हवास ठिकाने न रहें, वमन करते-करते रोगी घबरा जाय, आँखें खड्डों में घुस जायँ, आवाज़ मन्दी हो जाय, हाथ-पैरों के जोड़ ढीले हो जायँ, वह विशूचिका† रोगी नहीं बचे।

हिचकी।

६८ जिसकी देह हिचकियोंसे तन जावे, ऊँची दृष्टि हो जावे, मोह हो, शरीर दुर्बल हो जाय, अन्न पर मन न चले, छींक बहुत आवें, ऐसे रोगीको यदि गम्भीरा या महती हिचकी‡ आती हों, तो उस रोगी का वैद्य इलाज न करे।

---

*उन्माद—यह रोग मनसे सम्बन्ध रखता है, इसलिये इसे उन्माद कहते हैं। इस रोग में रोगी बिना कारण हँसता है, मुस्कराता है, बिना प्रसङ्ग नाचता, गाता और दीवारोंसे बातें करता है, बिना कारण रोता है, हाथ पैर चलाता है, डरता है भागता है, नङ्गा हो जाता है, पत्थर मारता है, ऐसे-ऐसे अनेक लक्षण होते हैं। इसीको "उन्माद" या 'पागलपन" कहते हैं।

† विशूचिका को बोल-चाल में हैज़ा कहते हैं। अङ्गरेजी में कॉलेरा कहते हैं। इस रोग में दस्त और क़य (वमन) होते हैं। पीछे प्यास शूल, भ्रम, मूर्च्छा (बेहोशी) दाह, जंभाई, कम्प और मस्तक-पीड़ा ये लक्षण होते हैं। रोगी का रङ्ग और-का-और हो जाता है, पेशाब बन्द हो जाता है। बहुत कम रोगी इस रोग में बचते हैं। विशूचिका रोगकी विस्तृत चिकित्सा तीसरे भाग में लिखी है।

‡ हिचकी को वैद्यकमें हिक्का कहते हैं। यह पाँच तरह की होती हैं। इस रोग में मनुष्य बहुत ही जल्दी मरता है। मामूली हिचकी गरम भात और घी खाने, और प्राणायाम प्रभृति उपायों से सहज में बन्द हो जाती है, किन्तु गम्भीरा और महती हिचकी प्राणनाशक हैं। इस रोग में छस्ती करना ठीक नहीं।

६६ जिसके दोषों का सञ्चय खूब हो गया हो, जिसका अन्न छूट गया हो, जो कमज़ोर हो गया हो, जो अनेक रोगों से दुर्बल होगया हो, जो बूढ़ा हो या अति मैथुन करने वाला हो—ऐसे पुरुष को यदि गम्भीरा या महाहिक्का चलें, तो रोगी तत्काल मर जाय।

७० यमका हिचकीवाला यदि बकवाद करे; पीड़ा, मोह तथा प्यास हो—तो यमका भी तत्काल प्राण नाश करती है।

छर्दि ।

(७१) क्षीण पुरुष के बारम्बार छर्दि (वमन) हो, साथ ही खाँसी, श्वास, ज्वर, हिचकी, प्यास, बेहोशी, हृदयरोग और आँखों के सामने अँधेरा आना ये उपद्रव हों; छर्दि में खून और राध मिले हों, छर्दि का रङ्ग मोर के चँदोवे के समान हो, ऐसी छर्दि* असाध्य होती है।

मदात्यय ।

(७२) जिस मदात्यय रोगी का नीचे का होठ ऊपर के होठ से लम्बा हो जाय, शरीर में बाहर ज़ोर से जाडा लगे, भीतर से अत्यन्त दाह हो, मुख तेल से लिपा सा हो जाय; जीभ, होठ, दाँत काले या नीले हो जाँय; आँखें पीली हो जायँ या खून-जैसी सुर्ख़ हो जायँ; ऐसे बहुत शराब† पीने से बीमार हुए रोगी को वैद्य त्याग दे।

दाह ।

(७३) हृदय, सिर या पेड़ू में चोट लगने से जो दाह‡ रोग होता है,

---

* छर्दि रोग में वमन यानी क़य होती है।

† जो गुण विष में हैं, वही गुण मद्य में हैं। अगर यह बेकायदे अँधाधुन्ध पिया जाता है, तो भयङ्कर मदात्यय रोग पैदा करता है; अगर क़ायदे से थोड़ा-थोड़ा पीया जाता है, तो अमृत का काम करता है। विधि-पूर्व्वक पीने से रूप खिलता है, मनको सन्तोष होता है, उत्साह होता है एवं शोक और रंज हवा हो जाते हैं।

‡ दाह रोग सात प्रकार का होता है। इस रोग में रोगी एकदम जला जाता है। मारे दाहके रोगी बेहोश हो जाता है। गला, तालू और होठ एकदम से सूखने लगते हैं। मारे गरमी के रोगी जीभ को बाहर निकाल देता है। ऐसे-ऐसे लक्षण होते हैं।

वह असाध्य होता है। जिस रोगी को दाह हो, मगर उसका शरीर छूने में शीतल हो, वह रोगी आराम नहीं होता ।

वात रक्त ।

(७४) घुटनों तक गया हुआ वातरक्त* असाध्य होता है। जिस वातरक्त-रोगी का चमड़ा फट जाय या चिर जाय, उसमें से राध आदि चुएँ, साथ ही मांस-क्षय, निद्रा-नाश, अरुचि, श्वास, मांस का सड़ना, मस्तक का जकड़ना, मूर्च्छा, अत्यन्त पीड़ा, प्यास, ज्वर, मोह, हिचकी, लँगड़ापन, विसर्प, पकाव, नोचने की सी पीड़ा, भ्रम, अनायास श्रम, उङ्गली टेढ़ी होना, फोड़े, दाह, मर्म स्थानों में पीड़ा और अर्बुद (गाँठ), —ये उपद्रव हों, वह वातरक्त-रोगी असाध्य है। वातरक्तके साथ यदि एक ही उपद्रव "मोह" हो, तोभी उसे असाध्य समझना चाहिये ।

उरुस्तम्भ ।

(७५) जिस उरुस्तम्भ+रोगी के दाह, शूल और नोचने की सी पीड़ा तथा कम्प हो, वह रोगी मर जाय ।

उदावर्त्त ।

(७६) जो उदावर्त्त-रोगी प्यास और शूलसे पीड़ित हो, क्लेशयुक्त हो, क्षीण हो, मलकी उल्टी करता हो —ऐसे उदावर्त्त‡ रोगीको वैद्य त्याग दे ।

---

*वातरक्त रोग एक प्रकार का रक्त-विकार है। इस रोग में सारे शरीर का खून खराब हो जाता है. सूजन, खुजली, फोड़े, स्पर्श का बुरा मालूम होना या शरीर का सूना होना या सूई चुभाने की सी पीड़ा प्रभृति लक्षण होते हैं। सूखे, मोटे और नाजुक लोगों को यह रोग होता है।

+ उरुस्तम्भ रोग में पैरों का सो जाना, सङ्कोच होना, पैर उठाने और रखनेमें तकलीफ जांघ और उरुओं में अधिक पीड़ा, निरन्तर दाह और वेदना हो, शीतल पदार्थों का स्पर्श मालुम न हो; यानी शरीर के शीतल चीज लगने से मालूम न हो, पैर और जाँघ पराई सी और टटी सी मालूम हों।

‡ उदावर्त्त रोग १३ प्रकार के होते हैं। अधोवायु, विष्ठा, मूत्र, जँभाई, अश्रु-पात, छींक, डकार, वमन, शुक्र, प्यास, श्वास और निद्रा इन १३ वेगों के रोकने से उदावर्त्त रोग होते हैं। पेट मे दर्द अफारा, पथरी, फोतों में दर्द, गुदा में पीड़ा, सूजन और पीलिया प्रभृति लक्षण इन रोगों में होते हैं।

श्लीपद या हाथी-पाँव।

(७७) जो श्लीपद कफकारक आहार-विहार से हुआ हो तथा कफप्रकृतिवाले पुरुष के कफ से हुआ हो तथा स्रावयुक्त हो, तथा जिस दोष से प्रकट हुआ हो उस दोष के लक्षण उसमें बढ़ गये हों, खुजली बहुत चलती हो और कफयुक्त हो, ऐसा रोगी असाध्य है। ऐसे श्लीपद (हाथी-पाँव) वालेको वैद्य हाथ में न ले।

व्रण।

(७८) जो व्रण* मर्मस्थानमें प्रकट हुए हों और उनमें अत्यन्त पीड़ा होवे तथा जो व्रण (फोड़े) बाहर से शीतल हों और उनके भीतर जलन होवे तथा जिन व्रणों में भीतर जलन हो और बाहर से शीतल होवें तथा जिन व्रणवाला रोगी बलक्षय, मांसक्षय, श्वास, खाँसी, अरुचि इनसे पीड़ित होवे तथा जो व्रण मर्मस्थान में प्रकट हुए हों और उनमें से राध, लोहू अधिकतासे बहते हों तथा जो व्रण इलाज पर इलाज करनेसे भी आराम न हों—ऐसे व्रणोंकी चिकित्सा सद्वैद्य भूलकर भी न करें।

उपदंश या आतशक।

(७६) जिस उपदंशमें अनेक प्रकार का स्राव हो और साथ ही पीड़ा हो, वह त्रिदोषज उपदंश †असाध्य है।

---

* व्रण—फोड़ों को कहते हैं;

† उपदंश—इसे सर्व साधारण "गरमी का रोग" कहते हैं। इस रोग में लिङ्ग पर छोटी-छोटी फुन्सियाँ हो जाती हैं। पीछे पककर उनसे राध बहती है, इसके बाद लिङ्ग सूज जाता है और लिङ्ग का मुख बन्द हो जाता है इत्यादि। यह रोग पाँच प्रकार का होता है। हाथ की चोट लगने से, नाखून और दाँतों के लगने से, अच्छी तरह न धोने से, गरमीवाली स्त्रीसे मैथुन करने से, रजस्वला स्त्री के साथ गमन करने और खारी जलसे इन्द्री धोनेसे अथवा गरमीवाले के पेशाब पर पेशाब करने से उपदंश या गरमी रोग होता है। इस रोग के इलाज में देर करना और मौत को न्योता देना दो बात नहीं हैं।

(८०) जिस उपदंश-रोगी के लिङ्ग का मांस गल गया हो, कीड़े लिङ्ग को खा गये हों, केवल फोते रह गये हों, उस रोगी से वैद्य दूर ही रहे।

साध्य रोगोंके लक्षण।

जिस रोगी के नेत्र, कान और मुख सौम्य-श्रेष्ठ हों, जो रस तथा गन्ध को जानता हो, उस रोगी का रोग निस्सन्देह साध्य है।

जिसके हाथ पैर गर्म हों, दाह—जलन—अल्प हो, जीभ कोमल हो, वह रोगी नहीं मरता।

जिस रोगी के ज्वर में पसीने न आते हों, साँस नाकसे आता हो, कण्ठ में कफ घरघर न करता हो, वह रोगी अवश्य जीता है।

जिस रोगीको सुखसे नींद आती हो, शरीर कान्तियुक्त हो, इन्द्रियाँ प्रसन्न हों, वह रोगी नहीं मरता।
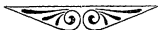
द्रव्यों की पाँच अवस्थायें।

प्रत्येक पदार्थ में रस, गुण, वीर्य, विपाक और शक्ति—ये पाँच बातें होती हैं। ये पाँचों अपना-अपना काम करते हैं।

पदार्थों में छै प्रकार के रस, बीस प्रकार के गुण, दो तरह के वीर्य्य, तीन तरह के विपाक और अचिन्त्य प्रभाव होता है।

रस

पदार्थों में मधुर, अम्ल, खारी, कड़वा, चरपरा और कसैला—ये छै रस रहते हैं। वाग्भट्टने लिखा है, इन छहोंमें पहला-पहला रस पीछे-पीछे के रस से अधिक बलप्रद है।

मधुर, अम्ल (खट्टा) और खारी—ये तीन रस वात नाशक हैं और कड़वा, चरपरा और कसैला—ये तीन रस वातकारक हैं।

कड़वा, कसैला और मीठा—ये तीन रस पित्तनाशक हैं और खट्टा, खारी और चरपरा—ये तीन रस पित्तकारक हैं।

मीठा, खट्टा, खारी—ये तीन रस चिकने और भारी हैं। चरपरा, कड़वा और कसैला,—ये तीन रूखे और हलके हैं। मीठा, कड़वा और कसैला, ये तीन शीतल हैं। चरपरा, खट्टा और नमकीन ये तीन गरम हैं।

जो रस वातको हरनेवाला है, यदि उस रसवाले पदार्थ में रूखा-पन, शीतलता और हलकापन हो, तो वह वायु को नष्ट नहीं कर सकता।

खारा और कसैला रस वायु को कुपित करता है; मीठा और कड़वा कफ को कुपित करता है; चरपरा और खट्टा रस पित्त को कुपित करता है।

चरपरा और खट्टा रस वात को शान्त करता है; मीठा और कड़वा पित्त को शान्त करता है; चरपरा और कसैला कफ को शान्त करता है।

चरपरा, कड़वा और कसैला ये रस वायु को कुपित करते हैं, इसलिये वायु में इनका देना ठीक नहीं। चरपरा, खट्टा और नमकीन ये रस पित्त को कुपित करते हैं, इसलिये इनका पित्त में देना ठीक नहीं। मीठा, खट्टा और नमकीन ये रस कफ को कुपित करते हैं, इसलिये कफ के रोगमें इनका देना ठीक नहीं।

जो रस पित्त को शमन करनेवाला है; यदि उस रसवाले पदार्थ में तीक्ष्णता, उष्णता और हलकापन हो, तो वह पित्त को शान्त नहीं कर सकता।

जो रस कफ को शान्त करने वाला है, यदि उस रसवाले पदार्थ में चिकनापन, भारीपन और शीतलता हो, तो वह कफ को नष्ट नहीं कर सकता।

सम्पूर्ण मधुर रस वाले पदार्थ कफकारक होते हैं, किन्तु जौ, मूँग, शहद, मिश्री और जङ्गली जीवों का मांस,—ये कफकारक नहीं होते हैं।

सभी अम्ल रसवाले—खट्टे पदार्थ पित्त को उत्पन्न करते हैं, किन्तु आमला और अनार खट्टे होने पर भी पित्त को उत्पन्न नहीं करते।

सभी तरह के नमक आँखों के लिए नुक़सानमन्द होते हैं, किन्तु सेंधानोन नहीं होता।

सभी चरपरे और कड़वे पदार्थ वातको कुपित करने वाले और वीर्य को नुक़सान पहुँचाने वाले हैं; किन्तु सोंठ, पीपल, लहसुन, परवल और गिलोय चरपरे और कड़वे होने पर भी, वीर्य की हानि

नहीं करते और वात को कुपित नहीं करते। "चरक" में कहा है, सोंठ, और पीपल वीर्य को बढ़ानेवाले हैं, किन्तु अन्य चरपरे पदार्थ वीर्य के लिए हानिकारक हैं।

सभी कसैले रस वाले पदार्थ प्रायः शरीर को स्तम्भन करनेवाले होते हैं, किन्तु 'हरड़' कसैली होने पर भी ऐसी नहीं हैं।

आगे हम छहों रसों के गुण लिखते हैं। पाठक इन गुणों को सामान्य गुण समझें; क्योंकि रसों के आपस में मिलने से और ही तरह के गुण प्रकट होते हैं। जैसे शहद और घी मिलकर (बराबर-बराबर) विष हो जाते हैं। साँप के काटने पर विष का प्रयोग अमृत का काम करता है; यानी अमृत हो जाता है।

मधुर रस।

मधुर रस शीतल है। यह रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, ओज और वीर्य को बढ़ानेवाला; स्त्रियों के स्तनों में दूध की वृद्धि करने वाला, आँखों और बालों के लिए हितकारी, रूप और बलको देनेवाला, टूटे को जोड़ने वाला, रुधिर और रस को प्रसन्न करनेवाला, बालक और बूढ़े तथा घावों से दुर्बल को हितकारी, भौंरे और चींटियों को प्यारा लगने वाला; प्यास, मूर्च्छा और दाह को शान्त करनेवाला, पाँचों इन्द्रियों और मन को प्रसन्न करने वाला, कृमि (चुरने कीड़े) और कफ करनेवाला है। इतने गुण "सुश्रुत" में लिखे हैं। "भावप्रकाश" में यह अधिक लिखा है—मधुर रस वात और पित्त को नष्ट करनेवाला, शरीरमें स्थूलता (मोटापन) करने वाला, पुष्टि करने वाला, कण्ठको शुद्ध करनेवाला, भारी, विषनाशक, चिकना और आयुके लिए हितकारी है।

मधुर रसका अति सेवन।

"सुश्रुत" में लिखा है, यदि मीठा रस अकेला ही बहुत ज़ियादा सेवन सेवन किया जाय; तो खाँसी, श्वास, अलसक, वमन, मुखका मीठा रहना, आवाज़ बैठ जाना, कृमिरोग, गलगण्ड, अर्बुद (रसौली) और

श्लीपद (फीलपाँव) रोग पैदा करता है। पेड़ू (वस्ति) और गुदा मैले और भारी रहते हैं, एवं आँखों से जल गिरता है। "भावप्रकाश" में लिखा है,—ज्वर, श्वास, गलगण्ड, अर्बुद, कृमि, स्थूलता, अग्नि की मन्दता, प्रमेह, मेद और कफ के रोग पैदा करता है।

खट्टा रस।

खट्टा रस गर्म है। यह रस पाचक, रुचिको उत्पन्न करनेवाला, पित्त कफ और रुधिर को बढ़ानेवाला, हलका, मोटे को पतला करने वाला, छूने में शीतल, क्लेदन. वातनाशक, चिकना, तीक्ष्ण और दस्तावर है। वीर्य विबन्ध, आनाह और आँखों की रोशनी को नाश करता तथा रोमाञ्च करता है। दाँतों को हर्ष करता तथा नेत्र और भौंहों का सङ्कोच करनेवाला है।

खट्टे रसका अति सेवन।

यदि यही खट्टा रस अकेला ही बहुत अधिक सेवन किया जाय; तो भ्रम, प्यास, दाह, तिमिर (अन्धकार), ज्वर, खुजली, पीलिया, विसर्प, सूजन, विस्फोटक और कोढ़ करता है। "सुश्रुत" में लिखा है, दाँतों में हर्ष यानी दाँतों का आम जाना, नेत्रों का मिचना, रोमों में पीड़ा या छोटी-छोटी फुन्सियाँ, शरीर का ढीलापन, गर्म होने से कण्ठ, छाती और हृदय में दाह—ये विकार करता है।

खारी रस।

यह रस भी गर्म है। यह रस संशोधन करनेवाला, रुचिकारक, पाचक, कफ और पित्तको बढ़ानेवाला, परुषता और वात को नाश करनेवाला, शरीर में शिथिलता और मृदुता करनेवाला है। आँख, नाक और मुँहमें पानी लानेवाला, गाल तथा गलेमें जलन करने वाला है। "सुश्रुत" में लिखा है—जोड़ों को ढीला करनेवाला, मार्गोंको शोधने-वाला और शरीरके सब भागों को मुलायम करनेवाला इत्यादि।

खारी रस का अतिसेवन।

यही रस अकेला ज़ियादा सेवन करनेसे नेत्रपाक, रक्तपित्त, कोढ़, और क्षतादि (घाव प्रभृति) रोग करनेवाला, शरीरमें सलवटें डालने वाला, बालों को सफेद करने और उड़ाने वाला; कोढ़, विसर्प और तृषा (प्यास) रोग करनेवाला है। "सुश्रुत" में लिखा है—खाज, कोढ़, चकत्ते, सूजन, कुरूपता, पुरुषत्व का नाश और इन्द्रियों में उत्ताप करने वाला; मुँह और आँखों का पकानेवाला तथा रक्तपित्त, वातरक्त प्रभृति रोग करनेवाला है।

चरपरा रस।

यह रस भी गर्म है। यह रस तीक्ष्ण, विशद, वात-पित्त को करनेवाला, कफ को हरनेवाला, हलका, अग्निके अधिक भागवाला; कृमि (कीड़े), खुजली और विष को नाश करनेवाला; रूखा, स्तनों का दूध नष्ट करनेवाला, मेद यानी चरबी की मुटाई को नाश करनेवाला, आँखों में आँसू लानेवाला; नाक, मुँह और जीभ में उद्वेग करने वाला रुचिकारक, अग्नि को दीप्त करनेवाला, नाक को सुखानेवाला, स्रोतों को प्रकट करनेवाला, रूखा, बुद्धि बढ़ाने वाला और मल-रोधक यानी दस्त रोकनेवाला है।

चरपरे रस का अतिसेवन।

यदि चरपरा रस अकेला ही अधिक सेवन किया जाय; तो भ्रम और दाह करता; मुख तालू और होठों को सुखाता, कण्ठादि में दर्द करता, मूर्च्छा और प्यास को पैदा करता और बल तथा कान्ति का नाश करता है। "सुश्रुत" में लिखा है—भ्रम और मद करता, गले,तालू और होठोंमें खुश्की करता, देहमें सन्ताप करता, बल का नाश करता; कँपकँपी, पीड़ा, फूटनीसी पैदा करता और हाथ, पाँव, पसली और पीठ वग़ैरः में वायुशूल यानी वादी का दर्द करता है।

कड़वा रस

यह रस शीतल है। यह प्यास, मूर्च्छा ज्वर, पित्त और कफ को नाश करनेवाला और कृमि, कोढ़, विष, दाह, जी मिचलाना एवं खून के रोगों को आराम करनेवाला है। आप स्वादमें बुरा है, अरुचि-कारक है, लेकिन और चीज़ोंमें रुचि करता है, कण्ठ तथा दूध को शुद्ध करता है; वातकारक, अग्निवर्द्धक, रूखा, हलका और नाक को सुखानेवाला है। "सुश्रुत" में इतना और लिखा है—यह रस दूधकी शोधनेवाला; विष्ठा, मूत्र, गीलापन, चरवी की चिकनाई और पीव को सोखनेवाला है।

कड़वे रस का अति सेवन

इस रस के अकेले ही अत्यधिक सेवन करनेसे सिरमें दर्द, गर्दनमें स्तम्भता (गर्दन न हिले न घूमे), थकान, पीड़ा, कम्प, मूर्च्छा और तृषा—ये रोग होते हैं तथा बल और वीर्यका नाश होता है। "सुश्रुत" में लिखा है—गर्दन का ठहर जाना और गिर-गिर पड़ना, अर्दितवायु, सिर का दर्द, पीड़ा, फूटनी, छेदने की सी पीड़ा और मुख का स्वाद ख़राब—ये रोग होते हैं।

कसैला रस

यह रस शीतल है। यह रस घाव को भरनेवाला, शरीरको स्तम्भन करनेवाला, व्रण को शोधनेवाला, व्रण आदि पर उठे मांस को छीलनेवाला, पीड़ा करनेवाला, चन्द्रमासे उत्पन्न हुआ, व्रण तथा मज्जा आदि को सुखानेवाला, वायु को कुपित करनेवाला; कफ, रुधिर और पित्तको हरनेवाला; रूखा, हलका, चमड़ेको शुद्ध और ठीक करनेवाला, आमको रोकनेवाला, फैलनेवाला, जीभ को जड़ करनेवाला, कण्ठ और छेदों को रोकनेवाला है।

कसैले रसका अति सेवन

कसैले रस रसका अति अधिक सेवन ग्राही, अफारा, हृदय की पीड़ा और आक्षेपक—यति कम्प आदि रोग उत्पन्न करनेवाला है। "सुश्रुत" में लिखा है—हृदयमें पीड़ा, मुँह सूखना, उदर-रोग, अफारा, बातों का साफ़ न बोलना, गर्दन की नस का रहजाना, अङ्ग फड़कना, सनसनाहट, अङ्ग सुकड़ना और अति कम्प आदि रोग होते हैं।

मधुर पदार्थ

दूध, घी, चरबी, चाँवल, जौ, गेहूँ, उड़द, सिंघाड़े, कसेरू, खीरा, अरिया, फूट, ककड़ी, घिया, तरबूज, चिरौंजी, महुआ, दाख, किशमिश, छुहारा, खिरनी, ताड़फल, खोपरा, ईखरस, गुड़, शक्कर, चीनी, खिरेंटी, कंघी, कौंच के बीज़, विदारीकन्द, दूध, रबड़ी, मलाई प्रभृति तथा अरण्ड काकड़ी, कोयला, पेठा और शहत इत्यादि मीठे पदार्थ हैं।

खट्टे पदार्थ

अनार, आँवले, नीबू; कैथ, करौंदे, छोटे बड़े बेर, इमली, फालसे, बड़हल, अम्लबेत, जम्भीरी नीबू दही, छाछ, मद्य, शूक्त, सौवीर और तुषोदक (एक तरह की काँजी) इत्यादि खट्टे पदार्थ हैं।

खारी पदार्थ

सैंधा नोन, कालानोन, बिड़नोन (मटिया नोन), मनियारी नोन, साँभर नमक, समन्दर नोन, जवाखार, रेह, सज्जी, सुहागा और शोरा प्रभृति खट्टे पदार्थ हैं।

चरपरे पदार्थ

सहँजना, मूली, लहसन, कपूर, कूट, देवदारु, बावची, ख़ुरासानी अजवायन, देशी अजवायन, गूगल, नागरमोथा और लालमिर्च प्रभृति चरपरे पदार्थ हैं।

कड़वे पदार्थ

दोनों हलदी, इन्द्रजौ, दोनों कटेली, निशोथ, ककोड़े, करेले, बैंगन, कनेर के फूल, टेंटी, शंखाहूली, चिरचिरा, कुटकी, अरणी और माल-काँगनी इत्यादि कड़वे पदार्थ हैं।

कसैले पदार्थ

त्रिफला, जामुन, मौलसरी, पाषाणभेद, जीवन्तीशाक, पालक और चौलाई प्रभृति कसैले पादार्थ हैं।

द्रव्योंके गुण
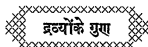
हलके गुणवाले पदार्थ अत्यन्त पथ्य, कफ नाशक और शीघ्र पचनेवाले होते है। भारी पदार्थ वातनाशक, पुष्टिकारक, कफकारक और देर से पचनेवाले होते हैं; चिकने पदार्थ वातनाशक, कफकारक, वीर्य और बलवर्द्धक होते हैं। रूखे पदार्थ अत्यन्त वायुवर्द्धक और कफनाशक होते हैं। तीक्ष्ण पदार्थ अधिक पित्तकारक, लेखन तथा कफवातनाशक होते हैं। इनके सिवा श्लक्ष्ण, स्थिर, सर, पिच्छिल प्रभृति और पन्द्रह गुण होते हैं। उनके लिये पहले लिखी हुई २७१ से २६० नम्बर तक की परिभाषायें १०८ और १०६ पृष्ठों में देखिये।

वीर्य्य
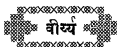
सारा ही संसार अग्नि और चन्द्रमा से सम्बन्ध रखनेवाला नज़र आता है, इसलिये किसी चीज़में गरमी और किसी में शीतलता होती है। इसलिये पदार्थों में उष्ण (गर्म) और शीत (ठण्डा) दो तरह का वीर्य माना है। गर्म वीर्य से वात और कफ का नाश होता है, किन्तु पित्त बढ़ता है। ठण्डे वीर्य्यसे पित्त नाश होता है, किन्तु वात

और कफ की वृद्धि होती है। उष्ण वीर्य से भ्रम, तृषा, ग्लानि, स्वेद और दाह होता है; किन्तु वायु और कफ की शान्ति होती है। इसी तरह शीत वीर्य से आनन्द और जीवन होता है तथा मलादिक की रुकावट और रक्तपित्त साफ़ होता है।

जठराग्नि के संयोग से रस का जो मीठा, खट्टा आदि परिणाम होता है, उसे "विपाक" कहते हैं। मीठे और खारी रस का बहुधा मीठा विपाक होता है। खट्टे रसका प्रायः खट्टा विपाक होता है। कड़वे, कसैले और चरपरे रसका प्रायः तीक्ष्ण विपाक होता है। परन्तु सब जगह ऐसा नहीं होता, कहीं-कहीं इन नियमों के विपरीत भी होता है। जैसे चाँवल मीठे होते हैं; पर पचने पर उनका पाक खट्टा होता है। हरड़ कसैली होती है, पर उसका पाक मीठा होता है।

मधुर पाक कफ को पैदा करनेवाला और वात-पित्तको हरनेवाला है। खट्टा पाक पित्त को पैदा करता और वातकफ के रोगों को नाश करता है। तीक्ष्ण पाक वात को पैदा करता और पित्त तथा कफ को नाश करता है। मतलब यह है, कि, रस से विपाक अधिक बलवान होता है।

प्रभाव

रस, वीर्य और विपाक में समानता होने पर भी कोई पदार्थ किसी पदार्थ से अधिक काम करता है। वह उसके "प्रभाव" का कारण है। दन्ती और चीता रस आदिमें समान हैं, पर दन्ती दस्त खूब लाती है, किन्तु चीता यह काम नहीं कर सकता। दाख़ और महुआ—रस, वीर्य और

विपाक में समान हैं, पर दाखमें दस्त लानेकी शक्ति अधिक है। घी और दूध रस आदिमें समान हैं, पर घी में अग्नि को दीपन करने की शक्ति अधिक है। आँवला और बड़हर रस-वीर्य आदिमें समान हैं, परन्तु आँवला तो तीनों दोषों (वात, पित्त और कफ) का नाश करता है, किन्तु बड़हलसे यह काम नहीं हो सकता। कहीं-कहीं एक द्रव्य भी अपने प्रभावसे काम करता है। जैसे ; सहदेई की जड़ सिरमें बाँधनेसे शीत ज्वर नष्ट हो जाता है। इसी तरह अनेक प्रकार की औषधियों के मिलाने से जो फल होता है, उसमें औषधियों के स्वभाव को कारण रूप समझना चाहिये। ऐसे मौक़े पर रस वीर्य आदि का विचार न करना चाहिये।

जिन औषधियों का फल प्रत्यक्ष है, जो स्वभाव से प्रसिद्ध हैं, उनके सम्बन्ध में रस आदि के विचारने की ज़रूरत नहीं। हाँ, परस्पर विरुद्ध गुणवाली औषधियों का मेल होनेसे रस आदि की कमी-बेशी हो जाती है, क्योंकि रस को "विपाक" जीत लेता है ; रस और विपाक को "वीर्य" जीत लेता है ; रस, वीर्य और विपाक इन तीनो को "प्रभाव" जीत लेता है।
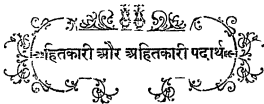
स्वभाव से हितकारी पदार्थ।

अनाज—चाँवलों में लाल चावल, षष्टिकों में साँठी चाँवल, भूसी-वाले अनाजोंमें जौ और गेहूँ, फलीवाले अनाजोंमें मूँग,मसूर और अरहर स्वभाव से हितकारी होते हैं।

रस—रसों में मधुर रस हितकारी होता है।

नमक—नमकों में सेंधा नमक हितकारी होता है।

फल—फलों में अनार, आँवला, दाख, अङ्गूर, खजूर, छुहारा, फालसा, खिन्नी और बिजौरा नीबू ये हितकारी होते हैं।

शाक—पत्तोंके सागोंमें बथुआ, जीवन्ती, पोई; फल-शाकों में परवल; और कन्दों में ज़मीकन्द हितकारी होता है।

मांस—जंगली जीवों में काले, लाल तथा चित्तीवाले हिरन का मांस; पक्षियों में तीतर और लवे का मांस; मछलियों में रोहू मछलीका मांस हितकारी होता है।

मिश्रित—जलों में साफ़ जल, दूधों में गाय का दूध, घृतोंमें गोघृत, तेलों में तिल का तेल, ईख के बने पदार्थों में मिश्री उत्तम और हितकारी है।

विहार—ब्रह्मचर्य, निर्वात स्थान (जहाँ बाहर की हवा न आती हो, छाया हो) में सोना, निवाये जलसे स्नान करना, रात के समय नींद-भर सोना, कुछ मिहनत का काम और कसरत करना—"सुश्रुत" में ये अत्यन्त हितकर लिखे है।

"सुश्रुत" से धन्वन्तरि महोदय कहते हैं —"बहुत से आचार्य्यों का कहना है कि, जो पदार्थ वातको शान्त करता है, वह पित्त को कुपित करता है और जो पित्त को शान्त करता है, वह वात को कुपित करता है।" इससे साबित होता है कि, कोई भी पदार्थ सर्वतोभावसे सभीको हितकर और अहितकर नहीं हो सकता; परन्तु हमारा ख़याल तो और ही है। हमारी रायमें सारे पदार्थ अपने स्वभाव यानी प्रकृति से अथवा संयोग से हितकारी और अहितकारी होते हैं। जल, दूध, घी, भात, मूँग आदि प्रायः सभी को हितकारी होते हैं*। हाँ, आग, क्षार, विष प्रभृति सदा अहितकारी होते हैं †। कितने ही हितकारी पदार्थ संयोग से अहितकर या विष-तुल्य हो जाते हैं; कितने ही मौक़ों पर, नुक़सान करनेवाले पदार्थ फ़ायदा कर जाते हैं। रोग, सात्म्य, देश, काल, देह और जठराग्नि, इनका विचार करके वैद्य रोगीको विरुद्ध पदार्थ भी दे सकता है। अग्नि पर तपाया शहद विष है, किन्तु "अनन्त-वात" नामक शिरोरोगमें विचार-पूर्वक तपाये हुए शहद से रोग में लाभ होता है।

अहितकारी पदार्थ।

(संयोग-विरुद्ध।)

दूधके साथ मछली और अनूप देश (बंगाल जैसा देश) का मांस न खाना चाहिए। कबूतरका मांस तेल में भूनकर न खाना चाहिये।

मछलीको खाँड़, मिश्री, चीनी, गुड़ और शहतके साथ न खाना चाहिए।

---

* ये पदार्थ [illegible] रोगी के लिये हितकर हैं; किन्तु रोगी को इनसे नुक़सान पहुँच सकता है। जैसे कितने ही बादी के रोगों में "भात" और कफ के रोगों में "दूध" नुक़सानमन्द है।

† आग से दागना, क्षार का प्रयोग करना, विष का इस्तेमाल करना—निरोगियोंके लिए अहितकारी यानी हानिकारक हैं, पर रोगियों को इनसे लाभ होता है। जैसे, साँपके काटे को दागनेसे रोगी बच जाता है; क्षारोंसे मस्से गिराये जाते हैं; साँप के काटे को दूसरे ज़हरी जानवरोंसे कटाते और विष खिलाते हैं। "विष की दवा विष है", इस कहावत के अनुसार लाभ होता है।

मांस और दूधके साथ सत्तू न खाना चाहिए।

गरम पदार्थों के साथ दही न खाना चाहिए।

शहत को गरम पदार्थों और वर्षा के जल के साथ न खाना चाहिए।

खीर के साथ खिचड़ी न खानी चाहिए।

केले की फली को छाछ, दही या बेलफल के साथ न खाना चाहिए।

काँसीके वर्तनमें रक्खा हुआ घी यदि दस दिनका हो जाय, तो न खाना चाहिए।

घी और शहद बराबर मिला कर न खाने चाहिएँ।

काढ़े को दुबारा गर्म करके न पीना चाहिए।

बहुत से मांस मिलने से परस्पर विरुद्ध हो जाते हैं। उसी तरह शहद, घी, चरबी, तेल, पानी और दूध भी मिलने से परस्पर विरुद्ध हो जाते हैं।

"सुश्रुत" में लिखा है—बेलका फल, तोरई, टेंटी, नीबू प्रभृति खट्टे फल, अमावट, सब प्रकारके नमक, कुलथी, दही, तेल, तिलकुटा, विरोही मछली, पिट्ठी, सूखे साग, बकरी और भेड़ का मांस, मदिरा, चिलचिम * मछली, गोहमांस और शूकरमांस—इन सबको दूध के साथ न खाना चाहिए।

"सुश्रुतमें" लिखा है—विरुद्ध धान्य, वसा—चरबी, शहत, दूध, गुड़, उड़द—इनके साथ ग्राम्य पशुओं, आनूपजलके पास रहनेवाले पशुओं और उदक-सञ्चारी जीवोंका मांस न खाना चाहिए। "चरकमें" लिखा है, यदि कोई ऐसा करे, तो उसे अन्धापन, बहरापन, गूँगापन, मिनमिनापन, कम्प, जड़ता और विकलता ये रोग हों अथवा वह मर जाय।

---

* चिलचिम मछली के ऊपर अत्यन्त काँटे होते हैं। सारी देहपर लोहित वर्ण की रेखायें और लाल नेत्र होते हैं। यह रोहित मछली के आकार की होती है और सदा कीच पर फिरा करती है।

"चरक" में लिखा है—शहद और दूधके साथ कुटकी और पुष्कर पत्र का साग न खाना चाहिये । शहद के साथ दूध न पीना चाहिए। सरसों के तेलमें भूनकर कबूतर का मांस न खाना चाहिए । यदि कोई ऐसा करेगा, तो उसे मृगी, शङ्खक, गलगण्ड प्रभृति अनेक तरह के रोग और मृत्यु तक हो सकती है ।

मूली, लहसन, सहँजने का साग, तुलसी, सफेद तुलसी या वन-तुलसी आदि खा कर, अगर ऊपर से कोई दूध पीवेगा, तो उसे कोढ़ रोग हो जायगा ।

किसी प्रकार का साग, पका हुआ कटहल, शहद और दूध के साथ मिलाकर न खाना चाहिए। ऐसा करनेसे बल, वर्ण,तेज और वीर्य की हानि, घोरतर व्याधि, नपुंसकता और मरण पर्य्यन्त हो सकता है।

बिजौरा, कटहर, करौंदा, बेर, कोशाम्र, जामुन, कैथ, इमली, अखरोट, पीलू, बड़हर, नारियल, अनार, और आँवले प्रभृति खट्टे फल एवं सब तरहके पतले पदार्थ और मूली तथा खटाई दूध के साथ खाने से रोग पैदा करते हैं ।

जलमें मिलाकर घी सत्तू पीवे और फिर खीर खाय, तो भयानक रोग हो और कफ अत्यन्त कुपित हो ।

पोई के साग को तेल में पका कर खाने से अतिसार होता है।

बगले का मांस सूअर की चरबी में भूनकर खाने से तत्काल प्राण नाश होते हैं।

मकोय को शहद के साथ खाने से मरण होता है ।

शहद को गरम करके पीने से मनुष्य मर जाता है । जिसने पसीनों के लिये वफारा आदि लिया हो, यदि वह शहद को गरम करके पीवे तो तत्काल मर जाय ।

समान भाग घी और शहद,—शहद और अन्तरिक्षजल—शहद और कमलगट्टे—शहद पीकर गरम पानी पीना—भिलावे सेवन करके गरम पानी पीना,—ये सब विरुद्ध कर्म हैं ।

काली मकोय का साग, सींकचे में छेदकर अङ्गारों पर पकाया हुआ मांस—ये भी विरुद्ध हैं।

बगले का मांस, शराब और उबाले हुए अनाज के साथ न खाना चाहिये।

शहद को गरम जल के साथ खाना—मकोय को पीपल और मिर्च के साथ खाना—नाली का साग, मुर्गी और दही का एक साथ खाना—शराब, तिल चाँवलों की खिचड़ी और खीर का एक साथ खाना—गुड़ के साथ मकोय—शहद के साथ मूली—बड़हल के पत्ते बिना, उसके पहले और पीछे दूध पीना—ये सब भी संयोग-विरुद्ध हैं।

ऊपर लिखे हुए विरुद्ध खान-पानसे नपुंसकता, अन्धापन, विसर्प जलोदर, विस्फोटक, मूर्च्छा, उन्माद, भगन्दर, मद, अफारा, गलग्रह, पीलिया, किलास कुष्ठ, शोष, रक्तपित्त, ज्वर और पीनस प्रभृति रोग तथा मृत्यु तक हो जाती है।

वमन, विरेचन तथा विरुद्ध आहारों को पचानेवाले संशमन योगों (दवाओं) से इनकी शान्ति होती है। हाँ, यदि विरुद्ध आहारों का अभ्यास पहले ही से कर लिया जाय, तो कोई अनिष्ट नहीं होता। अभ्यास बड़ी चीज़ है। बाज़ीगर रुपया, पैसा, लकड़ी, पत्थर खा जाते हैं और पाखाने की राह उन्हें निकाल देते हैं।

मनुष्यमात्रके याद रखने योग्य कोई डेढ़सौ अनमोल बातें।

१ अन्न—जीवन निर्वाहक पदार्थों में सर्वोत्तम है।
२ जल—प्यास मिटानेवालोंमें सबसे अच्छा है।
३ शराब—थकान दूर करनेवालोंमें सबसे अच्छी है।
४ निमक—रुचिकारक पदार्थों में सबसे अच्छा है।
५ खटाई—हृदय के लिए हितकारी पदार्थों में सर्वोत्तम है।
६ मुर्ग़ीका मांस—बलकारी पदार्थों में सबसे उत्तम है।
७ मगरका वीर्य—वीर्य बढ़ानेवालोंमें सबसे अच्छा है।
८ शहद—कफ-पित्त-नाशक पदार्थों में सबसे अच्छा है।
९ घी—वातपित्त-नाशक द्रव्योंमें सर्वोत्तम है।
१० तेल—वातकफ नाशक द्रव्योंमें सर्वोत्तम है।*
११ वमन—कफ नाश करनेके लिये सबसे अच्छा उपाय है।
१२ विरेचन—पित्त हरण करनेवालों में सर्वोत्तम उपाय है।
१३ बस्तो वात हरण-कर्त्ताओंमें सबसे उत्तम है।
१४ स्वेद—पसीना शरीर को नर्म करनेवालों में सर्वोत्तम है।

* तेल वातकफ-नाशकों में सर्वश्रेष्ठ लिखा है, इसका यह मतलब है कि तेल वात नाशक है और वात-प्रधान वात-कफ नाशक है।

१५ रसायन—शरीरको मज़बूत करनेवाले उपायों में राजा है।
१६ मैथुन—शरीर को दुर्बल करने वालों में सबसे बढ़कर है।
१७ क्षार—पुरुषत्व-नाशक पदार्थों में सबसे बढ़कर है।
१८ तिन्दुक फल—अन्नमें अरुचि करनेवालोंमें सबसे बढ़कर है।
१६ कच्चा कैथ—स्वर भङ्ग करने वालोंमें सबसे तेज़ है।
२० भेड़का घी—दिलको नुक़सान पहुँचानेवालों में राजा है
२१ बकरीका दूध—शोष नाशकों, रक्त रोकनेवालों, रक्तपित्त-रोग-नाशकों और दूध बढ़ानेवालों में सबसे उत्तम है।
२२ भेड़का दूध—पित्त-कफ बढ़ानेवालों में सबसे ज़बर्दस्त है।
२३ भैंसका दूध—नींद लानेवालोंमें सबसे उत्तम है।
२४ दही—अभिष्यन्दी पदार्थों में सबसे बढ़कर है।
२५ ईख—पेशाब लानेवालों में सबसे बढ़कर है।
२६ जौ—मल पैदा करनेवालोंमें सबसे बढ़कर है।
२७ जामुन—वायु प्रकट करनेवालोंमें सबसे बढ़कर है।
२८ खली—पित्त-कफ करनेवालोंमें सबसे बढ़कर है।
२९ कुलथी- अम्ल-पित्त करनेवालोंमें सबसे बढ़कर है।
३० उड़द—पित्त-कफ-कारकोंमें सबसे बढ़कर है।
३१ मैनफल—वमन, आस्थापन और अनुवासनके उपयोगी पदार्थों में सबसे उत्तम है।
३२ निशोथकी जड़—सुखसे दस्त करानेवालोंमें सर्वोत्तम है।
३३ अरण्ड—नर्म जुलावोंमें सबसे उत्तम है।*

* "अरण्डीका" तेल त्रिफलेके काढ़े या दूधमें लेना सर्वोत्तम जुलाब है। बालक, वृद्ध, क्षत-क्षीण और नाज़ुकसे नाज़ुक के लिये यह जुलाब सुखदायी है। इस तेल की मात्रा जवानको चार तोले तक है। त्रिफलेके काढ़े में लिया जाय, तो काढ़ा दूना लेना चाहिये। ८ तोले त्रिफले को जौकुट करके, रात के समय, मिट्टी की हाँडीमें भिगो दो। सवेरे काढ़ा कर लो, उसी में "अरण्डीका तेल मिला कर पी जाओ।

३४ थूहर—ज़ोर से दस्त करानेवालों में सबसे उत्तम है।*

३५ औंगेके बीज—शिरोविरेचन करने वालोंमें सबसे उत्तम है।

३६ वायविड़ङ्ग—कृमि या कीड़े नाशकों में सबसे अच्छी है।

३७ सिरसके बीज—विषनाशक पदार्थों में सर्वोत्तम है।

३८ खैर—कोढ़ नाश करनेवाले पदार्थों में राजा है।

३९ रास्ना—वात नाशक पदार्थों में सबसे बढ़कर है।

४० आमला—अवस्था-स्थापकोंमें सर्वश्रेष्ठ है।

४१ हरड़—सब तरहके अच्छे पथ्योंमें श्रेष्ठ है।

४२ अरण्डीकी जड़—बलवर्द्धक और वात नाशकोंमें सर्वोत्तम है।

४३ पीपरामूल—आनाह नाशकोंमें सर्वोत्तम है।

४४ चीतेकी छाल—गुदाका दर्द,और गुदाकी सूजन नाश करनेवालों एवं भूख बढ़ानेवालों में सर्वोत्तम है।

४५ नागरमोथा—दीपन, पाचन और संग्राहकों में प्रधान है।

४६ कूट और पोहकरमूल—श्वास, खाँसी, हिचकी और पसली का दर्द नाशकों में परमोत्तम हैं।

४७ अनन्तमूल—अग्निज्वाला-निवारक, दीपन, पाचन तथा अतिसार-नाशकों में सबसे उत्तम है।

४८ गिलोय—दस्त बाँधनेवालों, वादी नाश करनेवालों, अग्नि-दीपन करने वालों, कफ नाश करनेवालों और कफ-रक्तका विबन्ध नाश करने वालोंमें सर्वोत्तम है।

४९ कच्चा बेलफल—मलको गाढ़ा करने वालों, अग्नि दीपन करने वालों और वात-कफ-नाशक द्रव्योंमें सबसे उत्तम है।

---

* थूहर का दूध तीक्ष्ण जुलाबोंमें सबसे उत्कृष्ट है ; परन्तु अनजान का दिया हुआ, थोड़ी सी भी भूलसे, विषके समान हो जाता है। जानकार वैद्य के द्वारा दिया हुआ, दोषोंके भारी सञ्चय को भी नाश करता और भयानक-से-भयानक रोगों की शान्ति करता है ; इसलिये इस जुलाब को ऐसे-वैसे अनजान के कहनेसे न लेना चाहिये। "सुश्रुत" में लिखा है:—

विरेचनानां तीक्ष्णानां पयः सौधं परंमतम्।
अज्ञप्रयुक्तं भवति विषवत् कर्म विभ्रमात्॥

५० अतीस—दीपन, पाचन, संग्राहक और सब दोष करने वालों में सर्वोत्तम है।

५१ कालगट्टा—कमल और केसर एवं कमोदिनी—संग्राहक और रक्तपित्त-नाशकों में सर्वोत्तम हैं।

५२ जवासा—पित्त-कफ-नाशकोंमें सर्वोत्तम है।

५३ गन्धप्रियंगु—रक्त पित्तके अतियोग नाशकोंमें सर्वोत्तम है।

५४ कुड़ाची छाल—कफ, पित्त और रक्त संग्राहकों और उपशोषक द्रव्योंमें सबसे अच्छा है।

५५ गम्भारीफल—संग्राहक और रक्तपित्त-नाशकोंमें परमोत्तम है।

५६ पिठवन—संग्राहक है और वातहर वृक्षोंमें सर्वोत्तम है।

५७ विदारीकन्द—वृष्य है और सब दोष-नाशकोंमें परमोत्तम है।

५८ बला (खिरेंटी)—संग्राहक, बलवर्द्धक और वात नाशक द्रव्योंमें सर्वोत्तम है।

५६ गोखरु—मूत्रकृच्छ्र और वायुनाशक द्रव्योंमें सर्वोत्तम है।

६० हींग—छेदन, दीपन, अनुलोमन और वात-कफ-नाशकों में सर्वोत्तम है।

६१ अम्लवेत—भेदन, दीपन, अनुलोमन, और वात-कफ-हरण-कर्त्ताओंमें सर्वोत्तम है।

६२ जवाखार—स्रंसन, पाचन और बवासीर-नाशक द्रव्योंमें सर्वोत्तम है।

६३ माठा—ग्रहणीके दोष नाश करनेवालों, बवासीर नाश करनेवालों और अधिक घी खानेके विकारोंके नाश करनेवालों में माठा या छाछ प्रधान है।*

* भोजन के बाद भुना हुआ जीरा और सेंधानोन मिला हुआ "गाय का माठा" पीने से खूब भूख लगती है। एक कोरी हाँडी में चीते की जड़ की छाल को जलमें पीसकर लेप कर दो; पीछे छायामें सुखा लो। इस हाँडीमें गाय का दूध जमा कर दहीको बिलो कर माठा बनाया करो और रोज़ पिया करो; बेहद लाभ होगा। बवासीर के लिये अकसीर है।

६४ मांसखोर जानवरोंका मांस—ग्रहणी-दोष, शोष और बवासीरमें खाना उत्तम है।

६५ दूध घी का अभ्यास—बुढ़ापा नाश करनेवाले उपायों में श्रेष्ठ है।

६६ सत्तू और घी का सम-परिमाणसे रोज़ खाना—वृष्य और उदावर्त्त नाशक द्रव्यों में परमोत्तम है।

६७ तेलके कुल्ले—दाँतोंके मज़बूत करनेवाले और रुचि करनेवाले उपायों में सर्व श्रेष्ठ है।

६८ चन्दन और गूलर—दाह नाशक लेपों में सर्वोत्तम है।

६६ रास्ना और अगर—शीतनाशक लेपोंमें उत्तम हैं।

७० ख़स—दाह नाश करनेवाले और चमड़ेके दोष दूर करनेवाले लेपोंमें उत्तम है।

७१ कूट—वातनाशक अभ्यङ्गों और लेपके योग्य द्रव्योंमें परमोत्तम है।

७२ मुलहटी—चक्षुष्य, वृष्य, केशहितकर, कण्ठहितकर, वर्णहितकर; यानी आँख, वीर्य, बाल, गला और शरीर के रङ्गको फ़ायदा पहुँचाने वाले और घाव भरनेवाले पदार्थोंमें सर्वोत्तम है।

७३ हवा—बल और चैतन्यता करनेवालोंमें सर्वोत्तम है।

७४ अग्नि—आम, स्तंभ, शीत, शूल, और कम्पनाशक द्रव्यों में परमोत्तम है।

७५ जल—स्तंभनीय द्रव्योंमें सर्वोत्तम है।

७६ बुझाया हुआ जल—वह जल जिसमें जली हुई मिट्टी का ढेला बुझाया गया हो, सर्वोत्तम जल है।

७७ अत्यन्त भोजन—आम-दोष-कारकोंमें सबसे तेज़ है।

७८ यथाग्नि भोजन—अग्निदीपक आहारोंमें सर्वोत्तम है।

७६ अभ्यासानुरूप कार्य—सेवनीयोंमें सबसे उत्तम है।

८० समय का भोजन—आरोग्य-कर्त्ताओंमें परम उत्तम है।

८१ मल मूत्रादि वेगोंका रोकना—व्याधि करनेवालों में सबसे बढ़कर है।
८२ मद्य यानी शराव—प्रफुल्ल करने वालोंमें सर्वश्रेष्ठ है।
८३ मद्य-विकार—धृति, स्मृति और बुद्धि नाशकोंमें सर्वोपरि है।
८४ भारी पदार्थ—बड़ी कठिनतासे पचनेवालोंमें सर्वोपरि है।
८५ एक समय का भोजन—उत्तम प्रकारसे पचनेवालों में सर्वोपरि है।
८६ स्त्री-सङ्ग—राजयक्ष्मा करनेवालों में सर्वोपरि है।
८७ शुक्रवेगको रोकना—नपुंसकता करनेवालोंमें सर्वोपरि है।
८८ बासी अन्न—अन्न में अरुचि करनेवालोंमें सर्वोपरि है।
८९ उपवास—आयु कम करनेवालों में सर्वोपरि है।
९० भूख जाती रहे तब खाना—दुर्बलता करने में सर्वोपरि है।
९१ अजीर्ण में खाना—ग्रहणी-दोषकारकों में सर्वोपरि है।
९२ विषम भोजन—अग्नि विषम करनेवालों में सर्वोपरि है।*
९३ दूध मांस आदि विरुद्ध पदार्थों को एक समय खाना—कोढ़ आदि निन्दित व्याधि करने वालोंमें सर्वोपरि है।
९४ शान्ति—हितकारियोंमें सर्वश्रेष्ठ है।
९५ शक्तिसे अधिक परिश्रम—सब तरह के अपथ्योंमें राजा है।
९६ आहार विहारादिका मिथ्या योग—व्याधि-कारकोंमें सबसे बढ़कर है।
९७ रजस्वला गमन—अलक्ष्मी-कारकों में सर्वोपरि है।
९८ ब्रह्मचर्य्य—आयुवर्द्धकों में सर्वश्रेष्ठ है।
९९ सङ्कल्प-साधन—वृष्यादिकों में सर्वोपरि है।
१०० मनकी अस्फूर्त्ति—अवृष्यों में सर्वोपरि है।
१०१ बलसे अधिक काम करना—प्राणनाशकोंमें सर्वोपरि है।

* भोजन के असमय पर खाने, अधिक खाने या कम खाने को "विषम-भोजन" कहते हैं।

१०२ विषाद—रोग बढ़ानेवालोंमें सर्वोपरि है।

१०३ स्नान—परिश्रम हरण करनेवालोंमे सर्वोपरि है।

१०४ हर्ष—प्रीति करनेवालोंमें सर्वोपरि है।

१०५ बहुत साग खाना—शरीर सुखानेवालोंमें सर्वोपरि है।

१०६ सन्तोष से रहना—पुष्टि करनेवालोंमें सर्वोपरि है।

१०७ पुष्टि—निद्राकारकों में परमोत्तम है।

१०८ निद्रा—तन्द्रा करनेवालोंमें परमोत्तम है।

१०९ सर्व रसाभ्यास—बल करनेवालों में सर्वोत्तम है।

११० एक रस खाना—दुर्बल करनेवालोंमें सर्वोपरि है।

१११ गर्भशल्य—अनाकर्षणीयोंमें सर्वोपरि है।

११२ अजीर्ण—क्रय कराने योग्यों में सर्वोपरि है।

११३ बालक—मृदु औषधि द्वारा चिकित्सा करने योग्यों में प्रधान है।

११४ बूढ़े का रोग—याप्य रोगोंमें सबसे बढ़कर है।

११५ गर्भवती स्त्री—तेज़ औषधि, कसरत, मिहनत और पुरुष-संसर्ग से बचनेवालों में सर्वोपरि है।

११६ मनकी प्रसन्नता—गर्भ-धारकोंमें सबसे उत्तम है।

११७ सन्निपात—दुश्चिकित्स्यों मे' सबसे बढ़कर है।

११८ आम चिकित्सा—विरुद्ध चिकित्सा में सबसे बढ़कर है।*

११९ ज्वर—रोगोंमें सबसे अधिक बली है।

१२० कोढ़—बहुत समय तक रहनेवाले रोगोंमें राजा है।

१२१ राजयक्ष्मा—सब रोगोंमें असाध्य है।

१२२ प्रमेह—न छोड़नेवाले रोगोंमें सबसे बढ़कर है।

१२३ जोख—उपशस्त्रोंमें सबसे अच्छी है।

---

* आमदोष—जब लाल आदि लक्षणों से युक्त होता है, तब उसे "विष" कहते हैं। जब आम-दोष विषके समान हो, तब उसकी शीत चिकित्सा करनी चाहिये; किन्तु इस मौक़ेपर गरम इलाज लाभदायक होता है; इसीसे आमकी चिकित्सा का विरोध है।

१२४ वस्ती—पञ्चकर्मो में सर्वश्रेष्ठ है

१२५ हिमालय—औषधि-भूमिमें सर्वश्रेष्ठ है।

१२६ मरुभूमि—आरोग्य देशों में सबसे उत्तम है।

१२७ सोमलता—औषधियों में सर्वोत्तम है।

१२८ अनूपदेश—अहितकर्ता देशोंमें सबसे बढ़कर है।

१२९ वैद्यकी आज्ञापालन करना—रोगीके गुणोंमें सर्वोत्तम है।

१३० चिकित्साके चतुष्पादोंमें प्रधान है।

१३१ नास्तिक—वर्जनीयोंमें सबसे अधिक वर्जनीय है।

१३२ लोभ—क्लेशकारकों में सबसे बढ़कर है।

१३३ रोगीकी अवाध्यता—मृत्यु-लक्षणोंमें प्रधान लक्षण है।

१३४ अस्थिरता—डरपोक मनके लक्षणों में प्रधान है।

१३५ देशकाल आदिके विचार-पूर्वक औषधि देना—वैद्य के गुणोंमें प्रधान गुण है।

१३६ वैद्यसमूह—निःसंशय-कारकोंमें प्रधान हैं।

१३७ शास्त्रज्ञान—औषधोंमें प्रधान है।

१६८ शास्त्रानुमोदित युक्ति—ज्ञानोपादेयों में प्रधान है।

१३९ उत्तम ज्ञान—कालज्ञान-योजनाओंमें उत्तम है।

१४० अनुत्याग—व्यवसाय नाशक और काल-नाशक हेतुओं में सर्वोत्तम है।

१४१ चिकित्सक की बहुदर्शिता—निस्सन्देह करनेवाले उपायों में प्रधान है।

१४२ असमर्थता—भय पैदा करनेवालोंमें सर्वोपरि है।

१४३ अपने सहपाठीसे शास्त्रार्थ करना—बुद्धिवर्द्धक उपायों में प्रधान है।

१४४ आचार्य्य—शास्त्राधिकार हेतुओंमें प्रधान है।

१४५ आयुर्वेद—अमृतोंमें प्रधान है।

१४६ सद्वचन—अनुष्ठान करने योग्योंमें प्रधान है।

१४७ विना विचारे बोल उठना—सब तरह के अहित करने वालों में प्रधान है।

१४८ सर्वत्याग—सुख करने वालों में सर्वोत्तम है।

१४९ दूध—जीवनीयों में प्रधान है।

१५० मांस—बृंहणियों या ताक़त लानेवालों में प्रधान है।

१५१ गवेधुकधान्य—कृशताकारकों में प्रधान है।

१५२ उद्दालक अन्न - रूक्षता करने वालों यानी रूखापन करनेवालों में प्रधान है।

उपरोक्त १५२ उत्तम बातें चरक के सूत्र-स्थान में कही हैं। इनमें की प्रत्येक बात वैद्यक करनेवालों और वैद्यक न करने वालों दोनों के लिये परम लाभप्रद है। "चरक" में लिखा है।

> एतन्निशम्य निपुणश्चिकित्सां सम्प्रयोजयेत् ।
> एवं कुर्वन् सदा वैद्यो धर्मकामौसमुश्नते ॥

निपुण वैद्य इन सभी विषयोंको, यानी इन १५२ बातोंको, याद करके चिकित्सा करे। यदि वैद्य इस प्रकार करे, तो धर्म और कामकी प्राप्तिकरे।

औषधि-सम्बन्धी नियम।

१ जो औषधि उत्तम देश में पैदा हुई हो, श्रेष्ठ दिन में उखाड़ी गई हो, थोड़ीसी देने से भी बहुत गुण करने वाली हो, ज़ियादा देने से नुक़सान न करती है, ऐसी औषधि विचार-पूर्वक समय पर दी जाय, तो गुण करती है।

२ विन्ध्याचल के आसपास पैदा होने वाली दवाएँ तासीर में गर्म और हिमालय में होनेवाली शीतल-स्वभाव होती हैं ; यानी उनमें गरमी का अंश अधिक होता है और इनमें शीतलता अधिक होती है। अपने रहने के स्थान से उत्तर दिशाकी दवाएँ लेनी चाहिएँ। हिमालय हम लोगों से उत्तर में है, इसलिये जहाँतक हो, हिमालय की दवाएँ संग्रह करनी चाहिएँ।

३ जो औषधि सर्प की बाँबी, घूरे या मैले स्थान, श्मशान, अनूप-देश, ऊसर धरती, रास्ते में पैदा हुई हो अथवा जिसमें कीड़े लग रहे हों अथवा जो गरमी या सरदी से व्याप्त हो—ऐसी औषधि न लेनी चाहिये, क्योंकि वैसी औषधि से कोई लाभ नहीं होता।

४ शरद् ऋतु में औषधियों में रस होता है; इसलिये सब कामों के लिये ऐसी ऋतु में औषधियाँ लेनी चाहिएँ ; परन्तु वमन विरेचनकी दवाएँ वसन्त ऋतुके मध्य में लेनी चाहिएँ।

५ जिन वृक्षों की जड़ें बहुत मोटी हों, उनकी छाल मात्र लेनी

चाहियें ; जिनकी जड़ें छोटी और पतली हों, उनका सर्व्वाङ्ग लेना चाहिये । जैसे वड़, नीम आदि की छाल ; विजयसार आदिका सार ; तालीसपत्र आदि के पत्ते ; त्रिफला आदिके फल लेने चाहिएँ ।

६ किसी की जड़, किसीका कन्द, किसीके पत्ते, किसीके फल, किसीके फूल, किसीका सर्वाङ्ग (सारे भाग), किसीका सार, किसी की छाल ली जाती है । याद रक्खो ; चीते की जड़, ज़मीकन्द या सूरन का कन्द, नीम और अडूसेके पत्ते, त्रिफलेके फल, धाय के फूल, कटेरी का सर्व्वाङ्ग (जड़, छाल, पत्ते सब) खैर का सारांश और दूधवाले वृक्षों की छाल ली जाती है । किसी समय अगर नीमके पत्ते नहीं मिलते, तो उसकी छाल ही ले ली जाती है, वेल का कच्चा फल और अमलताश का पका फल लिया जाता है ।

७ शास्त्र में कोई योग या नुसख़ा आप ऐसा लिखा देखें, जिसमें किसी औषधिका अङ्ग स्पष्ट न लिखा हो ; यानी अमुक औषधि की छाल, पत्ते, फल, फूल, सार प्रभृति क्या लिया जाय । जहाँ औषधि का अङ्ग न लिखा हो, वहाँ आप उसकी जड़ लीजिये ; जहाँ औषधि का वज़न न लिखा हो कि, अमुक औषधि तोल में इतनी लेनी चाहिये, वहाँ आप सब औषधियों को बराबर-बराबर ले लो । जहाँ पात्र या वर्तन न लिखा हो, वहाँ आप मिट्टी का बर्तन लीजिए ; जहाँ यह न लिखा हो कि, औषधि किस समय ली जाय, वहाँ आप प्रातःकाल यानी सवेरा समझिये । जहाँ द्रव्य न लिखा हो, वहाँ जल लीजिये ।

८ सभी कामोंमें नये पदार्थ लेने चाहिएँ ; किन्तु बायबिड़ङ्ग, पीपल, गुड़* चाँवल, घी, शहद, पान और काँजी—ये सब पुराने ही

---

* सुश्रुत में पुराने गुड़ के सम्बन्ध में लिखा है :—

पित्तघ्नो मधुरः शुद्धो वातघ्नोऽसृकप्रसादनः ।
स पुराणोऽधिक गुणो गुडः पथ्यतमः स्मृतः ॥

गुड़ ज्यों-ज्यों पुराना होता है, अधिक गुण वाला और अति पथ्य होता जाता है ; पुराना गुड़ रक्तको प्रसन्न करनेवाला, वायुनाशक, पित्त शान्त कर्त्ता, मधुर और शुद्ध होता है ।

अधिक गुणकारी होते हैं। इनको एक साल बाद पुराना समझना चाहिये।

६ सभी नुसख़ोंमें सूखे और नये पदार्थ लेना अच्छा है। अगर कोई चीज़ अभाव-वश गीली लेनी पड़े, तो जितनी लेनी हो उससे दूनी लेनी चाहिए। मगर कुछ दवाएँ ऐसी भी हैं, जो सदा गीली ही ली जाती हैं, मगर दूनी नहीं ली जातीं ; क्योंकि उनके गीली ही लेने की आज्ञा है। जिनके सूखी लेनेकी आज्ञा है, वही अगर गीली ली जायँ, तो दूनी ली जाती हैं।

गिलोय, कूड़ा (कुरैया), अडूसा, पेठा, शतावर, असगन्ध, पियाबाँसा, सौंफ और प्रसारिणी—ये नौ दवाएं हमेशा गीली ही ली जाती हैं।

अडूसा, नीम, परवल, केतकी (केवड़ा), खिरेंटी, शतावर, सोंठ, कुड़ा, कन्द, गन्धप्रसारिणी, गिलोय, इन्द्रवारुणी, नागवला, कटसरैया, गूगुल और सौंफ इन्हें गीली ले सकते हो ; पर दूनी लेनेकी ज़रूरत नहीं।

१० घी, तेल, जल, क्वाथ, काढ़ा या जुशाँदा, व्यञ्जन आदि आग पर तैयार करके शीतल हो जाने पर,यदि फिर आग पर गर्म किये जायें ; तो विषके समान हो जाते हैं ; इसलिए इन्हें आग पर रखकर फिर दुबारा आग पर न रक्खो।

११ अगर पुराने घी की ज़रूरत हो, तो आग पर पके हुए पुराने घी को मत लो ; बिना पका पुराना घी उत्तम होता है ; पका हुआ पुराना घी हीनवीर्य यानी निकम्मा होता है। हाँ, तेल कच्चा हो या पका, पुराना अच्छा होता है।

१२ अगर किसी नुसखे में कोई दवा दो बार लिखी हो या दो नामोंसे एक ही दवा दो जगह लिखी हो, वहाँ लेखक की भूल न समझिये ; आप उसे दूनी लीजिये।

१३ जहाँ लवण लिखा हो, मगर यह न लिखा हो कि सैंधा, काला

या कौनसा नमक, वहाँ आप सैंधा नमक लीजिये। जहाँ ख़ाली चन्दन लिखा हो, वहाँ लाल-चन्दन लीजिये।

चन्दन के चूर्ण, अवलेह, आसव और तेल के नुसख़े में यदि चन्दन लिखा हो, कौनसा चन्दन लाल या सफेद न लिखा हो, तो आप इनमें सफेद चन्दन लीजिये ; किन्तु काढ़े और लेपमे लाल-चन्दन लीजिये *।

शरीर के भीतरी भागकी शुद्धि के लिये नुसख़े में जहाँ अजमोद लिखा हो, अजवायन लीजिये ; बाहरी भाग की शुद्धिके नुसख़े में जहाँ अजमोद लिखा हो, अजमोद ही लीजिये।

जहाँ दूध और घी लिखा हो, इनकी तफ़सील न हो, वहाँ गाय का दूध और घी लीजिये।

जहाँ विष्ठा और मूत्र आदि का खुलासा न हो, वहाँ गोमूत्र और गोबर लीजिए।

१४ वनसे लाई हुई औषधियाँ एक वर्ष बाद गुणहीन हो जाती हैं। तालीस आदि चूर्ण दो मास बाद कमज़ोर होने लगते हैं, पर एकदम निकम्मे नहीं हो जाते। विजयादि गुटिका, खण्डकादि अवलेह बहुत समय बाद ख़राब होते हैं, परन्तु पुराने होते-होते गुण-रहित हो जाते हैं। कहा है, वर्षाकाल सिरपर होकर निकल जानेसे घृत तैल आदि हीनवीर्य हो जाते हैं। जौ, गेहूँ, चना आदि एक साल बाद गुणहीन होने लगते हैं।

गुड़, आसव (कुमार्यासव आदि), सुवर्ण, चाँदी, राँगा, शीशा आदि धातुओं की भस्म, चन्द्रोदय आदि रस जितने पुराने होते हैं, उतनेही अधिक गुणवाले होते हैं ; मतलब यह कि, ये जितने पुराने हों, उतने ही अच्छे।

---

* कहीं-कहीं इस नियम के विपरीत भी होता है। "एलादि चूर्ण" में लाल-चन्दन लिया जाता है और किसी-किसी काढ़े और लेपमें सफेद चन्दन भी लिया जाता है। लवगादिचूर्ण, चन्दनादि चूर्ण, लाक्षादि तेल, कुमार्यासव और च्यवन-प्राशावलेह में प्रायः सफेद चन्दन ही लिया जाता है।

१५ यदि आपको किसी रोगके नुसख़े में ऐसी औषधि दीखे, जो रोगी के रोग को बढ़ावे, तो आप उसे नुसख़े में से निकाल सकते हैं; यदि आपको किसी नुसख़े में कोई हितकारी औषधि मिलानी हो, तो आप मिला सकते हैं। इसमें कोई हर्ज नहीं, मगर यह काम आप तभी कीजिए, जबकि आप औषधितत्त्वज्ञ हों।

१६ यदि आपको नुसख़े में लिखी कोई दवा न मिले, तो आप उसका बदल या प्रतिनिधि ले लीजिये, मगर प्रधान औषधिका "प्रतिनिधि" न लीजिये। नुसख़े की अन्य औषधियोंके न मिलने पर प्रतिनिधि ले सकते हैं। जैसे, काकोली न मिले, असगन्ध ले लीजिये। चन्दनादि चूर्ण में सफेद चन्दन मुख्य दवा है। उसके बदलेमें कपूर से काम न चलाइये। हमने अनेक आयुर्वेदीय और ज़ियादा काम में आनेवाली कुछ यूनानी दवाओंके प्रतिनिधि साफ़ तौर पर इसी पुस्तक में आगे लिखे हैं। ज़रूरत होनेसे, आप वहाँ प्रतिनिधि खोज लिया करें।

जो दवा आप नुसख़ेके लिए लें, उसे देख लिया करें कि वह ठीक है या नहीं; क्योंकि आजकल नक़ली या ज़ाली चीज़ें बहुत चल गई हैं। हमने काममें आनेवाली और जिनमें जाल की सम्भावना होती है, ऐसी चन्द औषधियोंके परीक्षा करने या पहचानने की विधि इसी पुस्तक में आगे लिखी है। ज़रूरत होने से, जब तक कण्ठस्थ न हो जायँ, देखकर दवा की जाँच कर लिया करें। अगर दवा निकम्मी होगी, तो रोगीको लाभ न होगा, आपकी बदनामी होगी और आपकी रोज़ी न चमकेगी।

अगर कोई द्रव्य न मिले, तो उसके बदलेमें उसका बदल या प्रतिनिधि लेलो। इससे ठीक काम चल जायगा। हिकमतमें एक दवा के बदलमें दूसरीके लेनेको "बदल" कहते हैं और संस्कृतमें "प्रतिनिधि" कहते हैं। प्रतिनिधि लेनेके लिये शास्त्रकी आज्ञा है। चीता न मिले, दन्ती ले लीजिये; दन्ती न मिले, चीता ले लीजिये। मगर इस बातका ध्यान रहे कि, नुसख़ेकी मुख्य दवाके बदलेमें प्रतिनिधि या बदल न लिया जाय।

असल द्रव्य।	प्रतिनिधि	असल द्रव्य।	प्रतिनिधि
चीता	दन्ती या चिर-चिरे का खार	आक का दूध	आकके पत्तोंका रस
धमासा	जवासा	पोहकरमूल	कूट
तगर	कूट	कलिहारी	कूट
मूर्वा	जिंगिनी की छाल	थुनेर	कूट
अहिंसा	मानकन्द	चव	पीपलामूल
लक्ष्मणा	मोरशिखा	बावची	पँवार के बीज
मौलसरी	लाल या नील कमल	दारुहल्दी	हल्दी
नील कमल	कमोदिनी	रसौत	दारुहल्दी
चमेलीके फूल	लौंग	सोरठकी मिट्टी	फिटकरी, सेलखड़ी या खड़िया

असल द्रव्य।	प्रतिनिधि
तालीसपत्र	स्वर्णतालीस
भारंगी	कटेरीकी जड़
काला नोन	पांशु नोन, संचर नोन
मुलहटी	धायके फूल
अम्लवेत	चूका
नीबू	चूका
दाख	कुंभेरका फल
कुंभेरका फल	बंधुकाका फूल
नख	लौंगका फूल
कस्तूरी	कंकोल
कंकोल	चमेली के फूल
कपूर	सुगन्धमोथा गठौना, गठिवन
केशर	कुसुमके नये फूल
सफेद चन्दन	कपूर, लालचन्दन
कपूर	लाल चन्दन
लाल चन्दन	नवीन ख़स
अतीस	मोथा
हरड़	आमला
नागकेशर	कमलकी केशर
मेदा, महामेदा:	शतावरी
जीवक	विदारीकन्द
काकोली	असगन्ध
ऋद्धि	वाराहीकन्द
भिलावा	चीता
ईख	नरसल
सुवर्ण	सोनामक्खी
चाँदी	रूपामक्खी
सोनामक्खी	पीली मिट्टी
रूपामक्खी	पीली मिट्टी
सुवर्ण-भस्म	कान्तलोहभस्म
चाँदी भस्म	"
कान्त लोह	तीक्ष्णलोह
मोती	मोती की सीप
शहद	पुराना गुड़
मिश्री	सफ़ेद खाँड़
बूरा	खाँड़
आकाश-बेल	निशोथ, पित्त-पापड़ा, लाजवर्द
वज्र (हीरा)	मूँगा
अखरोट	चिरौंजी, चिलगोजा
अगर	दालचीनी, लौंग या केशर
अंगूर (दाख)	मुनक्केके बीज
अञ्जीर	मुनक्का, चिलगोज़ा
अजमोद	खुरासानी अजवायन
अजवायन	कलौंजी, काला-ज़ीरा

असल द्रव्य	प्रतिनिधि	असल द्रव्य	प्रतिनिधि
अदरख	कालीमिर्च	भैंस का दूध	गाय का दूध
अनन्नास	सेब	भेड़ का दूध	स्त्री का दूध
मीठा अनार	खट्टा अनार	स्त्री का दूध	गधी का दूध
ईसबगोल	बिहीदाना	गाय का दूध	बकरी का दूध
अफीम	खुरासानी अज-वायन	घोड़ी का दूध	ऊँटनी का दूध
		नकछिकनी	मैनफल
अरहर	मसूर		कालीमिर्च
असगन्ध	कूट	नख	चिरायता
आमाहलदी	बावची	खोपरा	चिलगोज़ा
सत्यानासी	कूट		पिस्ता, बादाम
कटेरी	कूट	नीलाथोथा	सुहागा
दूध	मूँग या मसूरका जूस	पन्ना	मूँगा
		प्याज़ के बीज	शलग़मके बीज
घी	ताज़ा दूध	पालकके बीज	कुलफेके बीज
चाँदी	फीरोज़ा	पित्तपापड़ा	सनाय
चिरायता	चन्दन, केशर	पिस्ता	बादाम
चोपचीनी	उशबा	पीपरामूल	मीठा बालछड़
माठा	दही	पोस्त	अफ़ीम
जमालगोटा	रेंडी	फ़ीरोज़ा	पन्ना
तज	दालचीनी	बथुआ	पालक
तालमखाना	सालम मिश्री	बनफ़शा	नीलोफर
तिल	अलसीके बीज	बिजौरा	नीबू या नारंगीका स्वरस
दही	दही का पानी		
बकरी का दूध	गाय का दूध	मूली	शलग़म
ऊँटनी का दूध	” ”	स्याह मूसली	सफेद मूसली

असल द्रव्य	प्रतिनिधि	असल द्रव्य	प्रतिनिधि
मह‍ँदी	मुण्डी	बड़ी इलायची	छोटी इलायची
रोग़न बादाम	पोस्तका तेल	हिंगुलू	मुरदासंग
रेंडी का तेल	जैतून का तेल	उटंगनके बीज	गन्दनाके बीज
लोबान	मस्तगी	उन्नाव	लिहसोड़े, मुनक्का
सरफोंका	मुण्डी	उशवा	चोपचीनी
सेमरका मूसरा	शतावर	मुलहटीका सत्त	सोसन
जूही	चमेली	एलुआ	विरेचनमें निशोथ
मोर	ख़रगोश, हंस,		शोथ में रसौत
	चूहा	ककड़ीके बीज	खीरेके बीज
कंकोल	जायफल	कचूर	अंजीर, अदरख
भिलावा	लालचन्दन	कतीरा	बबूलका गोंद
दुपहरिया	नागकेशर	सफ़ेद कत्था	गेरू
पुहकरमूल	कूट	लौकी-घिया	पालक, कुलफा
तम्बरुका तेल	भिलावे	कपूर	सफ़ेद-चन्दन,
अनार	विर्षांविल,		वंसलोचन
	नित्तिड़ीक	कमीला	वायविडङ्ग
आँवला	काबुली हरड़	कलौंजी	अनीसूँ
आलू	अरवी	कौंचके बीज	उटंगनके बीज
आलूबुखारा	इमली	कसेरु	कमलगट्टा
इन्द्रजौ	तोदरी, जायफल	कालीज़ीरी	ज़ीरा, अनीसूँ,
	वहमन-सुर्ख़		सौंफ
इन्द्रायन का फल	नीलका बीज	कालादाना	इन्द्रायनकी जड़
छोटी इलायची	कवावचीनी,	काहूके बीज	पोस्तके बीज
	बड़ी इलायची,	कुलींजन	दालचीनी,
	लौंग		शीतलचीनी

असल द्रव्य	प्रतिनिधि	असल द्रव्य	प्रतिनिधि
केला	मिश्री, गुड़	गुलाबका अर्क	सौंफका अर्क
केसर	जावित्री, तज	गुलाबके फूल	बनफ़शा
कमलगट्टा	आँवले के बीज	कुलथी	अलसी
गिलोय	सत्त-गिलोय	गोखरू	खीरा-ककड़ीकेबीज

औषधि-परीक्षा ।

आजकल जाली औषधियाँ बहुत होती हैं, इसलिए परीक्षा करके औषधियाँ लेनी चाहियें। नीचे, हम चन्द औषधियों के पहचाननेकी विधि और उनके उत्तम होने की पहचान लिखते हैं:—

हरड़—छोटी गुठली और अधिक गूदे वाली अच्छी होती है। नई, चिकनी, भारी, गोल, जलमें, डूब जानेवाली हरड़ उत्तम होती है। इन गुणोंके सिवा, यदि हरड़ तोलमें दो तोले की हो, तो वह सर्व्व-श्रेष्ठ है।

भिलावा—जो पानीमें डालनेसे डूब जाय, वह उत्तम होता है।

वाराहीकन्द—जो सूअर के माथे के समान हो; वह उत्तम है।

संचर नोन—जो काँच के समान हो, वह उत्तम है।

सोनामक्खी—सोनेके समान कान्तिवाली अच्छी होती हैं।

मैनसिल—इन्द्रपुष्पके समान उत्तम होता है।

शिलाजीत ज़मीन पर गिरनेसे फैले नहीं, जलभरे काँसीके वर्तनमें डालनेसे सूतके समान बढ़े, वही अच्छा होता है।

कपूर—कसैला और चिकना अच्छा होता है।

इलायची—जिसके दाने सूक्ष्म हों, वह अच्छी होती है।

सफेद चन्दन—भारी और खुशबूदार अच्छा होता है।

लालचन्दन—अधिक लाल हो, वह अच्छा होता है।

अगर—कव्वे की चोंच के समान चिकनी और भारी अच्छी होती है।

देवदारू—खुशबूदार, हलकी और रूखी अच्छी होती है।

सरल—बहुत चिकनी और सुगन्धित अच्छी होती है।

दारुहल्दी—अत्यन्त पीली अच्छी होती है।

जायफल—भारी, चिकना, गोल और भीतर से सफेद हो, वह अच्छा होता है।

दाख—गायके स्तनोंके जैसा अच्छा, किन्तु करौंदे के जैसा मध्यम होता है।

खाँड़—निर्मल और चन्द्रकान्तिमणि के सदृश सफेद अच्छी होती है।

मधु—वही उत्तम होता है, जो गायके घी के समान रुचिकारक और सुगन्धित हो। असल शहद को कुत्ता नहीं खाता। असल शहद को बत्ती में लगाकर जलाओ, बत्ती जल उठेगी। असल शहद को काग़ज़ पर रख दो, काग़ज़ नहीं गलेगा। आजकल असल शहद बड़ी कठिनाई से हाथ आता है। लोग विलायती चीनी की चाशनी में छत्ते के दो चार टुकड़े वगैरः डालकर बेचने को ले आते और लोगों को ठगते हैं। इसीलिये जब शहद ख़रीदना हो, खूब परीक्षा करके लेना उचित है।

कस्तूरी—कस्तूरी मृग या हिरन की नाभि की अच्छी होती है। आजकल बदमाश लोग ख़ाली हिरन के नाफे या चमड़े की थैलीमें, जो नाफे के समान ही होती हैं, कोयले या कोई दूसरी चीज़ भरकर या उसके मुखपर, जहाँ से खोलते हैं, ज़रासी असल कस्तूरी रख देते हैं। असल कस्तूरीके मारे नाफा महकने लगता है। भोलेभाले लोग ठगा-जाते हैं। वैसा नाफा १) का भी नहीं होता, पर ठग उसके दस-दस, बीस-बीस और पचास-पचास तक ले जाते हैं।

अगर आप नाफा मोल लें; तो पहले परीक्षा कर लें—लहसन के एक टुकड़े या दो तीन टुकड़ोंको पत्थर पर जलके साथ महीन पीस लें। पीछे सूई में डोरा (धागा) पिरो कर, उस डोरे को उस लहसनके रसमें तर कर लें। पीछे नाफेमें सूई घुसेड़ कर, उस डोरे को पार कर लें। अगर उसके अन्दर कस्तूरी असल होगी, तो डोरेमें जो लहसन की दुर्गन्ध होगी, वह नाश हो जायगी और असल कस्तूरीकी सुगन्ध से डोरा महकने लगेगा। अगर कस्तूरी असल न होगी, कोरा जाल होगा, तो डोरेमेंसे लहसनकी बदबू हरगिज़ न जायगी। यह नाफे की सर्वोत्तम परीक्षा है।

अगर बिना नाफेकी खुली कस्तूरी लेनी हो, तो उसमें से दो चार दाने लेकर, एक जलते हुए लाल कोयले पर डाल दो; अगर कस्तूरी उत्तम होगी, तो आदि से अन्ततक, जबतक दाने जल न जायँगे, खुशबूदार धूआँ निकलेगा। अगर कोयलेके चूरे पर या और किसी चीज़ पर कस्तूरी चढ़ाई हुई होगी, तो पहले तो ज़रा कस्तूरी की सुगन्ध आवेगी; किन्तु शेषमें जो चीज़ उसके अन्दर होगी, उसकी गन्ध आवेगी, कस्तूरी होनेसे धूआँ अन्त तक निकलेगा, कस्तूरी न होनेसे धूआँ न उठेगा। कोयले का चूरा आग पर डालनेसे जैसे बिना धूएँके जलता है, उसी तरह वह भी जल जायगा।

केसर—आजकल केसर भी नक़ली आती है। असल केसर काश्मीरकी होती है। वहाँ इसके लाखों वृक्ष होते हैं। असल केसरका रङ्ग पीला ज़रा सुर्खीमाइल होता है। यह तोलमें हलकी होती है, इस लिये बहुत चढ़ती है; स्वाद में यह खारी या कुछ कड़वी सी होती है। अगर आप लेना चाहें, तो पहले ज़र्दी मिले लाल रंग और हलकेपन तथा ज़ायके को देखिये; इसके बाद ज़रासी केसर लेकर जीभ पर रख लीजिये। कोई १५।२० मिनिट तक रखिये; अगर आपका सिर गरमीसे भन्नाने लगे या कुछ भी गरमी जान पड़े, तो समझ लें कि, केसर असल है। अगर केसर तोलमें थोड़ी चढ़े, स्वाद और ही तरहका

हो, मुँहमें रखनेसे सिरमें गरमी न मालूम हो ; तो नक़ली समझिये। नक़ली कस्तूरी और केसर कौड़ी कामकी नहीं होतीं ।

चन्दनका तेल—यह भी आजकल जाली आता है। आजकल ऐसी चीज़ ही कौनसी है,जिसमें जाल न हो। सभीकी नक़ल तैयार है। चन्दनके तेलको आप एक काग़ज़ पर लगा कर आग दिखाइये। काग़ज़ खूब साफ़-सफ़ेद हो। आग चमकती हुई हो। अगर असल तेल होगा,तो काग़ज़से तेल उड़ जायगा,कोरा काग़ज़ रह जायगा। अगर असली चन्दन का तेल न होगा, तो काग़ज़ आग दिखाने पर भी चिकना बना रहेगा।

चन्द औषधियाँ और उनके मार

प्रत्येक चीज़ या दवा का क़ायदा है कि, यदि उसमें गुण होते हैं, तो अवगुण भी होते हैं। यदि कोई चीज़ पुष्टिकारक होती है; तो वह भारी और क़ब्ज़ करनेवाली भी होती है। इसी तरह प्रत्येक द्रव्यमें अवगुण भी होते हैं। नीचे हम चन्द द्रव्योंके अवगुण नाश करनेवाले द्रव्य उनके सामने लिखते हैं। इससे वैद्य और गृहस्थ दोनों का बड़ा काम निकलेगा। मानलो; किसी को गाँझा पीनेसे तकलीफ़ हो; तो आप उसे गायका घी और खटाई खिलावें, लाभ होगा।

नामद्रव्य	मार या दर्पनाशक द्रव्य
हीरा-कसीस (उपविष) .	माठा
हीरा (घातकविष)	ताज़ा घी, दूध और वमन कराना
हींग (उपविष) .	बनफ़शा, कतीरा, दोनों अनार
हलदिया (घातक विष)	घी और वमन करना
छोटी हरड़	शहद और घी
हल्दी	नीबू, बिजौरे का स्वरस
सिंघाड़ा	नमक और गरम चीज़
साँपकी काँचली ...	धनिया और घी
शिलारस (उपविष) . .	मस्तगी
शिलाजीत	घी
शतावर	शहद

मंडूर	...	...	कतीरा, शहद
रसकपूर	..	...	गाय का दूध
मुर्दासंग (घातक विष)		..	वमन कराना, घी और रोग़नबादाम
भिलावा	...	...	ताज़ा नारियल, सफ़ेद तिल, जौ
भिंडी	...	...	गर्म मसाला
बेर	...	...	सिकंजबीन, गुलकन्द
बैंगन	...	...	घी
बूँट	...	...	नमक
बादाम	...	..	खाँड,
बाजरा	...	...	घी, दूध और खाँड़
बथुआ	...	...	गरम मसाला
बच्छानाग (घातकविष)		...	निर्विसी
पारा	...	..	दूध और चिकने जूस
प्याज़	...	...	सिरका, नमक, शहद
पपीता	...	...	खाँड़
नासपाती	...	...	मायुलअसल
खोपरा	...	...	खाँड़, मिश्री, खट्टे फल
नारङ्गी	...	...	नमक या गुड़
गाय का दूध	...	.	शहद या खाँड़
बकरी का दूध	...	..	शहद या सौंफ
थूहर (विष)	...	...	ताज़ा दूध
दही	...	...	नमक, सौंठ, पोदीना, ज़ीरा
शहतूत	...	...	शहद
तिल	...	...	शहद, आगसे भूनना
तरबूज़	...	...	शहद, गुड़
तम्बाकू	.	...	ताज़ा दूध
ढेंढस	..	...	गरम मसाला

जौ	घी
जायफल	धनिया, शहद, बनफ़शा
जामुन	नमक
जमालगोटा	दूध-चीनी
ज्वार	गुलक़न्द
चौलाई का साग	गरम पदार्थ
चूना	घी, बादाम का तैल
चिलगोज़ा	खट्टे फल, सिकंजबीन
चिरौंजी	शहद, सिकंजबीन
चाँवल	घी, बूरा, दूध
चरस	गाय का दूध
चना	पोस्त, सिंकजबीन, गुलकन्द
घुंघची	सूखा धनिया, ताज़ा दूध
चकोतरा	खाँड
घी	नमक और शहद
गुलाब जामुन	सेब
गाँजा	गायका घी, खटाई
खिरनी	गुलक़न्द, माठा
खरबूज़ा	शहद, सिकंजबीन
कुचला (घातक विष)	वमन कराना, घी और मिश्री
कालादाना	हरड़; बादामके तेलमें भूनना
कसेरू	खाँड और कसेरू का छिलका
करौंदा	नमक और खटाई
करमकल्ला	घी, नमक
कपूर	केसर, कस्तूरी
कनेर (उपविष)	शहत, घी
इमली	उन्नाब, बनफ़शा

आलू	गरम मसाला
आम	जामुन, सिकंजबीन, शीतल जल
अमरूद	सोंठ का मुरब्बा, सौंफ
अफ़ीम	केसर, दालचीनी
खट्टा अनार	मीठा अनार
अनन्नास	खाँड़ और सौंफका मुरब्बा
अंगूर	सौंफ और गुलकन्द
अख़रोट	अनार का स्वरस

विरेचन-विषय।

(जुलाब)

दोषोंके निकालनेमें जुलाब सबसे उत्तम समझा जाता है। वैद्यक, डाक्टरी और हिकमत—सभीमें जुलाब देनेकी चाल है, पर जुलाब देनेकी रीति तीनोंकी जुदी-जुदी है। वैद्यक में जुलाबकी जैसी उत्तम विधि है, वैसी किसी भी चिकित्सामें नहीं है। हमारे यहाँ एकदमसे जुलाब देनेकी विधि नहीं है। पहले रोगीको स्नेह पान कराते हैं—कोई चिकनी चीज़ घृत प्रभृति पिलाते हैं, फिर पसीना दिलाते हैं, इसके बाद वमन यानी क़य कराते हैं, इसके बाद जुलाब देते हैं और जुलाबके बाद वस्ति-कर्म करते हैं यानी पिचकारी द्वारा दोषोंको निकालते हैं। इन्हीं पाँचों को "पञ्च कर्म" कहते हैं। पहले जो वैद्य इन पाँचों कामों को न जानता था, दो कौड़ी का समझा जाता था, राजा से सज़ा पाता था; किन्तु आजकल बहुत थोड़े वैद्य इनको जानते और इनसे काम लेते हैं। यही कारण है कि, आजकलके मनुष्य ज़ल्दी-ज़ल्दी रोगोंके पञ्जोंमें फँसते और यमराजके पाहुने होते हैं।

आजकलके रोगी भी इतने झंझटों को पसन्द नहीं करते; वे तो चट रोटी पट दाल चाहते हैं। चाहते हैं, कि वैद्यराज दवा भी न दें, कोई मन्त्रही पढ़ दें और हम आरोग्य हो जायँ; इसीसे स्नेह, स्वेद और वस्ति-कर्म उड़ गये, केवल जुलाब रह गया। वह भी ऐसा कि, पाँच सात दस्त हो जायँ और झगड़ा पाक हो; पूर्ण लाभ हो चाहे न हो। लोगों की ऐसी रुचि देखकर वैद्यक सीखनेवाले मामूली वैद्यों ने "पञ्च कर्म" का अभ्यास करना छोड़ दिया; उन्होंने भी उसे व्यर्थ का झंझट समझा।

हकीम लोग इतना झंझट तो नहीं करते; पर वे लोग दोषों को मुलायम करने और पकाकर फुलानेके लिये पहले मुंजिस ज़रूर देते हैं। इस क्रियासे मल पतले हो जाते हैं, फूल जाते हैं और आँतोंसे अलग हो जाते हैं। जब ये काम हो जाता है; तब वे लोग जुलाब देकर, आसानी से दोषोंको निकालकर, शरीर को शुद्ध कर लेते हैं। हकीमों की यह चाल इस देशवालों को पसन्द आई। बस, होते-होते वैद्यकके पञ्च कर्मोंमें से चारोंने पेनशन पाई, ख़ाली जुलाब राम रह गये।

हकीम जुलाबके पहले जो मुंज़िस देते हैं, वह उत्तम काम है। उससे हमारे स्नेहन और स्वेदन—चिकनाई पिलाकर और पसीने दिलाकर अङ्ग-प्रत्यङ्गों को मुलायम करने और शरीर के सब हिस्सोंसे या किसी ख़ास हिस्सेसे जहाँ दोष हों, निचोड़ कर एक जगह आमाशय में खींच लानेका पूरा नहीं तो भी बहुत कुछ काम हो जाता है; पर अधिकांश वैद्य तो सिवा जुलाब देनेके और कुछ भी नहीं करते। उन्होंने तो बिल्कुल डाक्टरों की चाल पकड़ ली है। डाक्टर लोग यों तो जुलाब बहुत देते हैं, मगर वे न हमारी तरह स्नेहन और स्वेदन करते हैं और न हकीमों की तरह मुंज़िस ही देते हैं। जहाँ काम पड़ा, चट काष्टर आइल (रेंडी का तेल) या जैलप बतला देते हैं। हमारी समझमें उनकी इस ऊटपटांग रीतिसे चन्द्ररोज़ा आराम तो हो ही जाता है, पर रोगी सदा रोगिन बना रहता है; एक रोग मिटता है, दूसरा होता है, और कुछ भी नहीं तो मन्दाग्नि, विषमाग्नि या बदहज़मी की शिकायत तो प्रायः नब्वे फी सदी लोगों को बनी ही रहती है। जब भारतीय वैद्य विधिपूर्वक स्नेह, स्वेद और वमन कराकर रोगीके दोषों को जड़से निकाल देते थे, तब ऐसा न होता था; लोग निरोग, हृष्टपुष्ट और वीर्य्यवान बने रहते थे। उन्हें रात-दिन डाक्टरों की फीस और उनके बिल न चुकाने पड़ते थे। इसलिए आरोग्यता चाहनेवाले पुरुषों और यशकामी वैद्यों को अपनी पुरानी चाल पर फिर आजाना चाहिये। देखिये, हमारे यहाँ जुलाब की कैसी अच्छी विधि ऋषि-मुनियोंने बताई है:—

वमन के पश्चात् विरेचन

चतुर वैद्य मनुष्य को पहले स्नेहपान करावे, यानी "स्नेह विचार" शीर्षक निबन्धमें लिखी रीतिसे घी पिलावे (इसे हम किसी अगले भागमें लिखेंगे।) जब घी पिलानेसे मैल फूल जायँ, तब स्नेह-कर्म यानी पसीनों की क्रिया करके सब दोषोंको रोम-मार्गों से निकाले। इसके बाद वमन-विचारमें लिखी विधिसे (इसे भी हम किसी अगले भाग में लिखेंगे) वमन यानी क़य करावे। क़य कराने के बाद जुलाब करावे।

वमन के बाद—विरेचन—जुलाब कराने का यह मतलब नहीं है, कि जैसे ही रोगी वमन से निपटे, वैसे ही, उसी दिन, विरेचन करा दिया जाय। मतलब यह है, कि वैद्य पहले वमन कराले, तब दस्तों की दवा दे। चरक, सुश्रुत और वाग्भट प्रभृति सभी आचार्य्यों का यह अभिप्राय है कि, वमन कराये छै दिन हो जायें, तब तीन दिन घी प्रभृति पिलाकर स्नेह-कर्म करे; इसके बाद तीन दिन पसीनों की क्रिया—स्वेद-कर्म करे; इसके बाद तीन दिन तक लघु पथ्य—हलके भोजन खिचड़ी प्रभृति खाने को दे। इस तरह पन्द्रह दिन हो जायँ, तब सोलहवें दिन जुलाब दे।

विरेचनके पहले वमन क्यों ?

अगर वैद्य पहले वमन कराये बिना विरेचन—जुलाब दे दे, तो नीचे के भागमें गया हुआ कफ ग्रहणी— (छठी पित्तधारा कला, अग्नि-धरा कला) को ढक लेता है; जिससे मन्दाग्नि, शरीरमें भारीपन, तथा प्रवाहिका—अतिसार ये रोग हो जाते हैं।*

*वङ्गसेन महोदय लिखते हैं,—अन्यथा योजितं कुर्य्यान्मन्दाग्निं गौरवारुचि। और शार्ङ्गधर आचार्य्य लिखते हैं—"मन्दाग्नि गौरवं कुर्य्याजनयेद्वा प्रवाहिकाम्" अर्थात् वङ्गसेन मन्दाग्नि, भारीपन और अरुचिका होना लिखते हैं; किन्तु शार्ङ्गधर तथा अन्यान्य आचार्य्य वही मन्दाग्नि, भारीपन और प्रवाहिकी का होना लिखते हैं।

वमन-विरेचन के पहले स्नेह और स्वेद क्यों?

"सुश्रुत"में लिखा है,— स्नेह और स्वेद यानी घृतादि पीने और पसीने लेनेसे जब दोष खिंचकर चिकने कोठेमें जमा हो जाते हैं, तब विरेचन औषधिके बलसे वह आसानीसे बाहर निकल जाते हैं। जिस तरह चिकने बर्तन में जल न तो ठहरता और न लगता है; उसी तरह दोष भी चिकने कोठे में न ठहरते हैं और न लगते हैं। कहा है;—

> स्नेहस्वेदावनभ्यस्य, यस्तु सशोधन पिवेत् ।
> दारुशुष्कमिवानामे, देहस्तस्य विशीर्यते ॥

जो स्नेह और स्वेद-कर्म किये बिना संशोधन-औषधि—वमन-विरेचन की दवा पीते हैं, उनका शरीर इस तरह टूट जाता है, जिस तरह सूखी लकड़ी नवाने या मोड़नेसे टूट जाती है। वङ्गसेन महोदय कहते हैं— स्नेह और स्वेद से प्रचलित तथा स्निग्ध— चिकनी चीज़ोंसे उदीरित दोष विरेचन दवा द्वारा सुखपूर्व्व कोठेमें से निकल जाते हैं।

विरेचनसे लाभ क्या ?

जुलाब लेने से इन्द्रियाँ बलवान होती हैं, बुद्धि प्रसन्न और जठराग्नि प्रदीप्त होती है, धातु और अवस्थामें स्थिरता होती है; यानी बुढ़ापा जल्दी नहीं घेरता।

वातादिक दोष लङ्घन और पाचन से शान्त होकर शायद फिर भी कुपित हो जायँ; परन्तु वमन-विरेचन द्वारा शुद्ध होकर फिर सिर नहीं उठाते, यानी कोप नहीं करते।

जिस तरह जलके न रहने से जल के स्थावर जंगमों का नाश हो जाता है; उसी तरह विरेचन द्वारा पित्तके नाश हो जानेसे, पित्तजनित रोगों का नाश हो जाता हैं।

वमन विरेचनमें फर्क

सर, सूक्ष्म, तीक्ष्ण, उष्ण और विकाशि होनेकी वजह से विरेचन

दोषों को नीचे गिराता है ;किन्तु वमन अन्यथा-प्रकृत्यागत होने की वजह से दोषोंको ऊपर ले जाकर निकालता है। सीधे शब्दोंमें, विरेचन का काम पके हुए दोषों को लेकर नीचे निकालना है, वमन का काम पके हुए यानी कच्चे दोषोंको लेकर ऊपर निकलना है।

बिना वमनके विरेचनकी आज्ञा

शार्ङ्गधर में लिखा है:—

स्निग्धस्यस्नेहनैः कार्य स्वेदैः स्विन्नस्यरेचनम्

जिसका कोठा घी दूध आदि चिकने पदार्थों से चिकना होगया हो, जिसने मिट्टी के गोले अथवा ईंट प्रभृति से पसीने ले लिये हों, उसको दस्त करादेने चाहिएँ। यह बिना वमनके विरेचन देनेकी दूसरी विधि है।

कब वमन और कब विरेचन?

कफ की अधिकता में और कफ की अधिकता वाले अन्य दोषोंमें भी वमन करानी चाहिए।

पित्ताधिक्य तथा पित्त की अधिकतावाले अन्य दोषोंमें विरेचन औषधि देनी चाहिये।

जुलाब का मौसम।

शार्ङ्गधर, भावप्रकाश, वङ्गसेन प्रभृति सभी ग्रन्थोंमें लिखा है:--

शरदृतौ वसन्ते च देहशुद्धौ विरेचयेत्।
अन्यदात्ययिके काले, शोधनं शीलयेद् बुधः॥

शरद् ऋतु—क्वार कातिक और वसन्त यानी चैत वैशाखमें शरीर की शुद्धि के लिए जुलाब देना चाहिये। अगर रोग हो, तो इन मौसमों के सिवा दूसरे समयमें भी वैद्य जुलाब दे सकता है।

जुलाब कराने लायक़ रोगी।

वमन-विरेचन करानेमें बहुत कुछ, सोच-विचार की आवश्यकता

है। इसमें मनमानी-घरजानी करनेसे महासङ्कट उपस्थित हो जाता है। ज़रा सी भूल से, मनुष्य इस दुर्लभ चोले को त्यागकर परलोक की राह लेता है। यह काम पूर्ण विद्वान् और अनुभवी वैद्य का है। "चरक" के सूत्र-स्थान के चिकित्साप्रभृतीयः नामक सोलहवें अध्याय में लिखा है:—

> चिकित्साप्राभृतो विद्वान् शास्त्रवान् कर्मतत्परः।
> नरं विरेचयति यं सयोगात् सुखमश्नुते॥
> यो वैद्यमानीत्वबुधो विरेचयति मानवम्।
> सोऽति योगादयोगाच्चमानवो दुःखमश्नुते॥

चिकित्सा-कुशल, विद्वान, शास्त्रोंके जाननेवाला, काममें लगा हुआ यानी चिकित्सा-कार्य्य करता हुआ वैद्य जिसको जुलाब देता है, वह रोग से छुटकारा पाकर सुख का भागी होता है; किन्तु वैद्यत्व का अभिमान करनेवाला अनजान वैद्य जिसको जुलाव देता है, वह मनुष्य जुलाब के अतियोग और अयोग यानी बहुत लगजाने या न लगने से दुःख का भागी होता है।

जिन रोगियोंके लिए शास्त्रकारों ने जुलाव देने की आज्ञा दी है, उनके सिवा अन्य रोगियों को जुलाब न देना चाहिये। शार्ङ्गधर मे लिखा है:—

> जीर्णज्वरी गरव्याप्तो, वातरक्ती भगन्दरी।
> अर्शः पांडूदरग्रन्थि, हृद्रोगारुचिपीड़िताः॥
> योनिरोग प्रमेहार्त्ता गुल्मप्लीह व्रणार्दिताः
> कर्णनासा शिरोवक्र गुदमोढ़ामयान्विता:।
> यकृच्छोथाक्षिरोगार्त्ताः कृमिक्षारानिलार्दिताः।
> शूलिनो मूत्रघातार्ता विरेकार्हा नरा मताः॥

जीर्णज्वर, सींगिया विष प्रभृति, कृत्रिम विष, वातरक्त, भगन्दर, बवासीर, पीलिया, उदररोग—जलोदर प्रभृति, गाँठ, हृदय-रोग, अरुचि योनिरोग, प्रमेह, गोला, प्लीहा—तिल्ली, व्रण-फोड़ा-विद्रधि, वमन, विस्फोटक, विशूचिका, कोढ़, कान के रोग, नाक के रोग, मस्तक-रोग

गुदा-रोग, लिंगेन्द्रिय के रोग--उपदंश प्रभृति, यकृत, सूजन, नेत्र-रोग, कृमि-रोग, क्षारजन्य विकार, वायु-रोग, शूल-रोग और मूत्राघात, इन रोगों में से किसी से यदि मनुष्य अत्यन्त दुःखी हो, तो उसे दस्त की दवा देनी चाहिये। अथवा यों समझिये कि, इन रोगवालों को वैद्य जुलाब दे सकता है।

"सुश्रुत" में इतने रोगों के सिवा मृगी, विसर्प, अर्बुद—रसौली, आनाह—अफारा, शस्त्र का घाव, अग्निदग्ध—अग्नि से जला, तिमिर—अँधेरी, अभिष्यन्द—आँखों का ढलका, उर्द्धगत-रक्तपित्त तथा पित्त के रोग से पीड़ित रोगियों तथा जिनके पित्तके स्थान से उत्पन्न हुए कोई अन्य विकार हों, उनको भी जुलाव देने की आज्ञा दी है।

वागभट महोदय ने उपरोक्त रोगों के अलावः व्यंगरोग, कामला, हलीमक, पक्वाशय की पीड़ा, आशयरोग, कोष्ठगत रोग, उर्ध्वगत वात-रक्त, रक्तदोष, खूनविकार, श्लीपद—हाथीपाँव, उन्माद, खाँसी, श्वास, दूधदोष प्रभृति रोगों में भी जुलाव देना अच्छा कहा है। ऊपर के रक्त-पित्त में उन्होंने भी जुलाव देने की आज्ञा दी है, किन्तु अधोगत रक्तपित्तमें और नवीन ज्वर में मनाही की है।

विशेषकर विरेचन योग्य।

पित्तविकार, आमवात, उदररोग और बद्धकोष्ठ— मल का अव-रोध—इनमें विशेषता से जुलाब देना चाहिये।

जुलाब के अयोग्य रोगी।

शार्ङ्गधर में लिखा है :—

> बालवृद्धावतिस्निग्ध क्षतक्षीणो भयान्वितः।
> श्रान्तस्तृषार्तः स्थूलश्च गर्भिणी च नवज्वरी॥
> नवप्रसूतानारी च मन्दाग्निश्च मदात्ययी।
> शल्यार्दितश्च रुक्षश्च, न विरेच्या विजानता॥

बालक, बूढा, अतिस्निग्ध, क्षत-क्षीण, भय-पीड़ित, थका हुआ,

प्यासा, मोटा, गर्भवती, नवीनज्वरी, नवप्रसूता स्त्री, मन्दाग्नि-रोगी, मदात्ययी, शल्यपीड़ित और रूखा—इनको जुलाब न देना चाहिये ; यानी ये जुलाब के अयोग्य हैं।

वाग्भट ने अधोगत रक्तपित्त-रोगी, अतिसार-रोगी, क्रूरकोष्ठी—कड़े कोठेवाला और शोष-रोगी—इनको भी जुलाब के अयोग्य कहा है।

वङ्गसेनने क्षीण, क्षयी, शोक-सन्तापित, अजीर्णमें भोजन करने वाला, नवीन प्रतिश्याय-रोगी यानी नये ज़ुकामवाला और स्नेह-कर्म रहित—इनको भी जुलाब के अयोग्य कहा है।

क्या उपरोक्त रोगियोंको पित्त के कोप करने पर भी जुलाब नहीं दे सकते ?

अगर उपरोक्त, जुलाबके अयोग्य, रोगियों का पित्त अधिक हो गया हो, ऐसा कुपित हो गया हो कि, बिना जुलाब दिये रोग के आराम होने की सम्भावना न हो, तो ऐसी दशा में वैद्य उनको भी मृदु विरेचन यानी बहुत हलका जुलाब देकर काम निकाल सकता है। यह मतलब नहीं है कि, उपरोक्त रोगियों का पित्त कुपित होजाय, बिना जुलाब आराम होने की आशा न हो, तोभी लकीर के फ़क़ीर होकर चुपचाप बैठे रहना चाहिये। "सुश्रुत" में कहा है:—

> अत्यर्थ पित्ताभिपरीत देहान, विरेचयेत्तानापि मन्दवीर्य्यैः।
> विरेचनैर्यान्ति नरा विनाशमज्ञप्रयुक्तै रविरेचनीयाः॥

जिन रोगियों को विरेचन यानी जुलाब की मनाही है, उनको भी पित्त के अधिक यानी कुपित होने पर मन्दवीर्य्य मधुर औषधियों द्वारा जुलाब कराना चाहिये। जिन लोगोंके लिए जुलाब की मनाही है, अथवा जो विरेचन—जुलाब के योग्य नहीं हैं, वे लोग मूर्ख वैद्यों के जुलाब देनेसे इस दुर्लभ देह से हाथ धो बैठते हैं। मूर्ख वैद्य ऐसे लोगों को भी जुलाब की कोई तेज़ दवा देकर मार डालते हैं। आपही सोचिये, अगर

गर्भवती स्त्री, हाल ही में बच्चा जनकर उठी स्त्री अथवा बालक और बूढ़े प्रभृति को जमालगोटे का तेज़ जुलाब कोई मूर्ख देदे, तो वे बचें या मरेंगे। शास्त्रकारोंने इनकी अवस्था नाज़ुक देखकर, इनके प्राण कोमल समझ कर, अव्वल तो जुलाब देने की मनाही कर दी है; पीछे बहुत ही सख़्त ज़रूरत होनेसे दो चार दस्त करानेवाली दवाओंकी आज्ञा भी दे दी है। तर्क-वितर्क और बुद्धिमानी की यों तो हर मुक़ाम पर ज़रूरत है, किन्तु चिकित्सा-कार्य्यमें तो इसकी पद-पद पर ज़रूरत है।

स्नेह-विरेचन के अयोग्य।

जो अत्यन्त स्निग्ध है, जिसका शरीर अत्यन्त चिकना है या जिसने बहुत ज़ियादा स्नेह यानी घृत प्रभृति चिकने पदार्थ पिये हैं, उसे वैद्य चिकना विरेचन न देवे ; क्योंकि ऐसे आदमी के दोष चिकनाई के मारे, स्थानसे चलकर भी, राहमें ही लय हो जाते हैं; यानी चलकर भी रास्ते में ही लिहस जाते हैं।

"सुश्रुत"में लिखा है ;—

> विषाभिघात पिडका शोफ पांडु विसर्पिणः।
> नातिस्निग्धा विशोध्याः स्युस्तथा कुष्टप्रमेहिणः॥
> विरूक्ष्य स्नेहसात्म्यं तु भूयः संस्नेह्य शोधयेत्।
> तेन दोषां हृतास्तस्य भवन्तिबलवर्द्धताः॥

विष से पीड़ितको, चोट लगे हुएको, पिड़कावालेको, सूजनवाले को, पीलियावालेको, विसर्प-रोगवालेको तथा कोढ़ और प्रमेहवालेको, अति स्निग्धको (जिसका शरीर चिकना हो या जिसने ज़रूरत से ज़ियादा घी वग़ैर; पिये हों) जुलाब न देना चाहिये।†

†मतलब यह है कि जो लोग बहुत घी दूध खाते हैं, उनका कोठा चिकना रहनेसे उनको दस्तों की जरूरत नहीं रहती, वैसेही सफाई रहती है। अथवा जिन्हें घी दूध वगैरः नहीं पचते, उन्हें आपही दस्त लग जाते हैं। इसलिए दोनों दशाओंमें अति स्निग्धको जुलाब की जरूरत नहीं। अगर देना ही जरूरी हो, तो चिकनापन दूर करके जुलाब देना चाहिए।

जो स्वभाव से स्निग्ध है, जो नित्य घी वग़ैर चिकने पदार्थ खाया करते हैं, जिन्हें चिकने पदार्थों से सुख होता है, ऐसे लोगों को यदि जुलाब देना ही हो, तो पहले उन्हें रूखा करना चाहिये; अर्थात् उनकी चिकनाई दूर करनी चाहिये। जब उनकी चिकनाई दूर हो जाय, रूखापन आजाय, तब उन्हें फिर यथोचित चिकना करके, घृत प्रभृति मिलाकर जुलाब देना चाहिये; जिससे दोष दूर होकर बल बढ़े।

"चरक"के कल्पस्थानमें भी ऐसाही ऐसा उपदेश दिया गया है:

> नातिस्निग्धशरीरायदद्यात् स्नेह विरेचनम्।
> स्नेहोत्क्लिष्ट शरीराय रूक्षं दद्यात् विरेचनम्॥
> एव ज्ञात्वा विधिधीरो देशकाल प्रमाणवित्।
> विरेचन विरेच्येभ्यः प्रयच्छन्नापराध्यति।
> विभ्रंशो विपवद्यस्य सम्यग्योगो यथामृतम्॥

जो अति स्निग्ध है, जिसका शरीर पहले से ही ख़ूब चिकना है, उसे स्नेह-विरेचन न देना चाहिये। जो पहलेसे ही चिकने शरीर वाले हैं, उनको रूखा विरेचन देना चाहिये। बुद्धिमान वैद्य देश-काल और परिमाण का विचार करके यदि जुलाब देने योग्यों को जुलाब देता है, तो अपयश नहीं मिलता। जो दवा बेक़ायदे दी जाती है, वह ज़हर के समान काम करती है और जो अच्छी तरहसे—क़ायदे से दी जाती है, वह अमृत का काम करती है।

और किनको जुलाब न देना चाहिये ?

"चरक" में लिखा है:—जिसे उत्तम प्रकारसे स्नेहपान कराया गया हो; यानी जो अच्छी तरहसे घी प्रभृति पी चुका हो, ऐसे क्रूर कोठेवाले को जुलाब न देना चाहिये, किन्तु लङ्घन कराने चाहियें। लंघनों से, चिकनाई द्वारा प्रकट हुए कफ और मल की रुकावट दूर हो जाती है।

रूखे शरीवाले, बहुत वादीवाले, कड़े कोठेवाले, कसरत करनेवाले और दीप्त अग्निवाले को जुलावकी दवा बिना दस्त हुए ही पच जाती है।

इसलिये ऐसे मौक़े पर, पहले वैद्यको वस्ती-कर्म (पाँचवें भाग में देखिये) करना चाहिये। जब वस्ती करनेसे दोष निकलने लगेंगे, तब जुलाब की दवा उन्हें शीघ्र ही बाहर निकाल देगी।

और भी एक बात है—रूखे पदार्थ खानेवाले, मिहनत करनेवाले और तेज़ अग्निवाले प्राणियों के दोष मिहनत करने, धूप और हवामें डोलने और अग्नि के पास रहने से क्षीण हो जाते हैं। ऐसे कसरती और तेज़ जठराग्निवालों को विरुद्ध भोजन करने और भोजन पर भोजन करने प्रभृति से जो तक़लीफ़ होती है, वह इनकी मिहनत और अग्नि के ज़ोर से अपने-आपही नाश हो जाती है। ऐसे लोगों को विशेष रोग नहीं होते। इन लोगों को तो ख़ाली वादी से बचाना चाहिये। इसके लिये इन्हें घृतादि पिलाना; यानी स्नेहन क्रिया करानी चाहिये। रूखे, परिश्रमी और दीप्ताग्निवालों को जुलाब कभी न देना चाहिये।

जुलाब देने की विधि।

"सुश्रुत"में लिखा है:—स्नेह, स्वेद और वमन—इन तीनों के हो जाने के बाद, जिस दिन जुलाब देना हो, उसके पहले की रात को नरम भोजन और खट्टे फलों की खटाई रोगी को खिला कर, ऊपर से पानी पिला देना चाहिये। जब दूसरे दिन देखे कि कफ नष्ट हो गया है; यानी कोठे में आ गया है या फूल गया है; तब रोगी का जैसा कोठा हो, वैसीही विरेचन की दवा देनी चाहिए। किसी-किसी का कहना है कि, जुलाब के तीन दिन पहले से घी खिचड़ी प्रभृति नरम भोजन मल फुलाने के लिये देने चाहियें।

कोष्ठ या कोठे।

कोठे तीन तरह के होते हैं:—

(१) मृदु, (२) मध्यम, और (३) क्रूर।

जिसके कोठे में पित्त की अधिकता होती है, उसे "मृदु-कोष्ठी" या

मुलायम कोठेवाला कहते हैं। जिसका कोठा नरम होता है, उसे दूध और दाख प्रभृति से ही दस्त हो जाते हैं।

जिसके कोठे में कफकी अधिकता होती है, उसे "मध्यम-कोष्ठी" या साधारण कोठेवाला कहते हैं। ऐसे कोठेवाले को बीचकी दवा देनी चाहिये।

जिसके कोठेमें बादी की बहुतही अधिकता होती है, उसे "क्रूर कोष्ठी" या कड़े कोठेवाला कहते हैं। ऐसे कोठेवाले को निशोथ प्रभृति से भी बहुत ही मुशकिल से दस्त होते हैं।*

नरम कोठेवाले को मृदु यानी हलकी मात्रा देनी चाहिये। नरम कोठेवालेको दाख, दूध और अरण्डी के तेल प्रभृति से दस्त हो सकते हैं।

मध्यम या बीचके कोठेवाले को मध्यम मात्रा देनी चाहिये। ऐसे कोठेवाले को निशोथ, कुटकी और अमलताश के गूदे प्रभृति से दस्त हो सकते हैं। (निशोथ की मात्रा ६ माशे से २ तोले तक है।)

कड़े कोठेवाले को तीक्ष्ण औषधि की तीक्ष्ण मात्रा देनी चाहिये। ऐसे कोठेवाले को थूहर का दूध, जमालगोटे के बीज या दन्ती (जमालगोटे की जड़) हेमक्षीरी अथवा इन्द्रायण की जड़ से दस्त हो सकते हैं।

---

* सुश्रुत में लिखा है,—जिसमें वायु-कफ की अधिकता हो, वह क्रूर कोठा है। क्रूर कोठा दुर्विरेच्य है। जिसमें समान दोष हों, वह मध्यम या साधारण कोठा है। यहाँ मत-भेद है। "भावप्रकाश"में लिखा है—

बहुवातः क्रूरकोष्ठो दुर्विरेच्यः सकथ्यते।
बहुपित्तो मृदुः प्रोक्तो, बहुश्लेष्माच मध्यमः॥

वाग्भटने लिखा है:—

बहुपित्तो मृदुः कोष्ठः क्षीरेणापि विरेच्यते।
प्रभूतः मारुतः क्रूरः कच्छ्रायामादिकैरपि॥

शार्ङ्गधरने भी यही बात लिखी है, उन्हीं की बात हमने ऊपर लिखी है; क्योंकि उनकी राय बहुतोंसे मिलती है।

मात्रा।

"भावप्रकाश"में लिखा है :—कषाय की आठ तोले की मात्रा उत्तम है; चार तोले की मध्यम है और दो तोले की कनिष्ट है। कल्क, मोदक (लड्डू), और चूर्ण को एक तोले घी या एक तोले शहद में मिलाकर दो तोले की मात्रा से दे सकते हैं। अथवा अवस्था और रोगका विचार करके, चार तोले की मात्रा भी वैद्य दे सकता है। वङ्गसेन ने लिखा है—नरम कोठेवाले को एक तोला, मध्यम कोठेवाले को २ तोला, कड़े कोठेवाले को ४ तोला दवाकी मात्रा है। इसी तरह गरम जल भी क्रम से ४, ८, और १२ तोला अनुपान में दे सकते हैं। मात्रा की बात पुस्तक में ठीक नहीं लिखी जा सकती। मात्रा का कम-अधिक करना वैद्य की बुद्धि पर निर्भर है।

यदि वैद्य को कोठे का हाल मालूम न हो ?

अगर वैद्यको ऐसा रोगी मिल जाय, जिसके कोठेका हाल मालूम न हो और रोगीने भी पहले कभी दस्त की दवा न ली हो, इस वजह से उसे भी अपने कोठे का हाल मालूम न हो—तो ऐसी दशामें वैद्य पहले मृदु यानी हलकी दवा दे। जब कोठे का हाल मालूम हो जाय, तब जैसी ज़रूरत हो वैसी दवा दे। किन्तु "चरक"में लिखा है—जो कमज़ोर हो, जिसके दोष कम हों, जिसका कोठा न मालूम हो, उसको हलकी दवा दो या बारबार थोड़ी-थोड़ी दवा दो ; जिससे हानि न हो। एक-दम बिना जाने तेज़ दवा मत दे दो, जिससे प्राण नाश हो जायँ। अगर दुर्बल रोगी घोर दोषों से व्याकुल हो, तो दिन में कई बार थोड़ी-थोड़ी दवा दो। ऐसा न हो कि, दवाके हलकेपन से दोष न निकलें और रोगी मर जाय।

राजाओं और अमीरों को कैसी दवा देनी चाहिए ?

राजाओं तथा अमीरों को ऐसी दवा देनी चाहिये, जो आज़माई

हुई हो, जिसकी थोड़ी सी मात्रा ही ज़ियादा काम करती हो; जो रोगों को शीघ्र आराम करती हो और जिसके खाने-पीने में तकलीफ़ न हो; यानी जिससे दिल न बिगड़े और उबकियाँ न आवें।

जुलाब की दवा लेने के बाद रोगी क्या करे?

जुलाब की दवा लेने के बाद रोगी क्या करे, इसके सम्बन्धमें धन्वन्तरिजी कहते हैं :—

विरेचनं पीतवांस्तु न वेगान्धारयेद् बुधः।
निवातशायी शीताम्बु न स्पृशेन्न प्रवाहयेत् ॥

जुलाब की दवा पीनेवाला हाजत होने पर दस्त की हाजत को न रोके। हवा न आती हो, ऐसी जगहमें सिरहाने की ओर ऊँचा तकिया लगा कर लेटे। शीतल जल (अथवा कोई भी शीतल पदार्थ) को न छुए और ज़ोर लगाकर मल को न निकाले।

जुलाब लेनेवाले को हवा से बहुत बचना चाहिये। इसी वजह से "सुश्रुत" में यहाँ तक लिखा है:—

पीतौषधश्च तन्मनाः शय्याभ्यासे विरिच्यते।

जुलाब लेकर उसी तरफ़ मन लगाये रहे और चारपाई के पास ही पाख़ाने जाय।

शार्ङ्गधरने कहा है :—

प्रवातसेवांशीताम्बु स्नेहाभ्यंगमजीर्णताम्।
व्यायामं मैथुनं चैव न सेवेत विरेचितः॥

जुलाब लेनेवाले को अत्यन्त हवा, शीतल जल, तेल की मालिश, कसरत या मिहनत, मैथुन और अजीर्ण से बचना चाहिये; अर्थात् जिस दिन जुलाब ले, उस दिन इतना न खाय कि अजीर्ण हो जाय, स्त्री-प्रसंग न करे, बाहर की तेज़ हवा न खाय, तेल न लगावे, शीतल जल

न पीवे और मिहनत न करे। आजकल इतनी बातें कौन वैद्य रोगीको बताता है और कौन रोगी इन बातों से बचता है ?

जुलाब के दस्तों में क्या निकलता है ?

जिस तरह वमन यानी क़यमें लार, दवा, कफ, पित्त और वायु ये क्रम से निकलते हैं; उसी तरह विरेचन में मल, पित्त, दवा और शेषमें कफ ये क्रम से निकलते हैं। किसी-किसीने मलके पहले मूत्र का निकलना लिखा है।

अच्छा जुलाब होने की पहचान ?

तीस दस्त हों और अन्त में कफ यानी आम गिरे, तो उत्तम जुलाब हुआ समझो। अगर बीस दस्त हों और कफ गिरने लगे, तो मध्यम जुलाब हुआ समझो। अगर दस दस्त के बाद ही कफ आ जाय, तो हीन मात्राका जुलाब समझो। "वाग्भट्ट"में लिखा है,—जिसमें कफ निकलने लगे, वह जुलाब श्रेष्ठ है।

वैद्यविनोद-कर्ता ने लिखा है, यदि एक सेर मल निकले तो हीन, दो सेर मल निकले तो मध्यम और तीन सेर मल निकले तो उत्तम जुलाब समझो; वाग्भट कहते हैं—हीनमें ६४ तोले, मध्यम में १२८ तोले और उत्तम में २५६ तोले मल निकलता है।

उत्तम दस्त होने पर यानी जुलाब के अच्छी तरह होने पर—कफ के साथ सम्पूर्ण दोषों के निकल जाने पर नाभि के चारों ओर हलकापन, मनमें प्रसन्नता, अधोवायु का अच्छी तरह खुलना ये लक्षण होते हैं।

जब दस्त ठीक तरह से हो जाते हैं, तब हृदय और कोखमें अशुद्धि, शरीरमें दाह, खुजली और मलमूत्रकी रुकावट ये लक्षण नहीं होते।

अधिक जुलाब लगने से मूर्च्छा—बेहोशी, गुदा की काँच निकलना, अत्यन्त कफ का गिरना और शूल ये उपद्रव होते हैं।

उत्तम दस्त न होनेके उपद्रव ।

दस्तों के अच्छे प्रकार न होने से नाभिमें स्तब्धता, पसलियों में शूल, मल और अधोवायुका न निकलना, शरीरमें खुजली और चकत्ते-- तथा अङ्गमें भारीपन, दाह, अरुचि, पेट फूलना, भ्रम एवं वमन—ये उपद्रव होते हैं।

उत्तम जुलाब न होनेपर उपचार ।

जिसे उत्तम दस्त न हुए हों, उसे वैद्य "आरग्वधादि क्काथ" का पाचन देकर आम को पचावे। इसके बाद स्नेह या घृतादि पिलावे। जब कोठे को चिकना हुआ समझे, फिर जुलाब दे। इस तरह करनेसे सारे उपद्रव दूर होकर, जठराग्नि की दीप्ति और शरीर का हलकापन होता है।

अत्यन्त दस्त होनेके उपद्रव ।

अत्यधिक दस्त होनेसे मूर्च्छा, गुदामें दर्द, शूल, कफ का अत्यन्त गिरना, मांसके धोवन या मेदके समान रुधिर का गुदा से निकलना— ये उपद्रव होते हैं। वाग्भटमें काँच निकलना, प्यास, भ्रम और आँखोंका भीतर घुसना प्रभृति लक्षण और लिखे हैं।

अत्यन्त दस्त होनेके उपद्रवोंका उपचार ।

बहुत दस्त हों, तो मनुष्य की देह पर जल छिड़के, चाँवलों के शीतल धोवन में शहद मिला कर पिलावे अथवा हलकी वमन करावे।

अथवा

आम की छाल को गाय के दही में पीस कर लुगदीसी बना ले, पीछे उसे नाभि के ऊपर लेप कर दे, तो होते-होते दस्त बन्द हो जायँगे।

नोट—आमकी छाल को काँजी में पीसकर, नाभि पर लेप करनेसे भी दस्त बन्द हो जाते हैं।

अथवा

बकरी का दूध पीने, हिरन के मांसका रस पीने, थोड़ासा साँठी चावलों का भात खाने, मसूर पकाकर खाने, विलायती अनार आदि शीतल और क़ाबिज़ (ग्राही) चीज़ों के खाने से भी दस्त बन्द हो जाते हैं।

अथवा

पद्माख, खस, नागकेशर और चन्दन—इनको पीसकर लेप करने, सींचने और पीनेसे भी दस्त बन्द हो जाते हैं।

अथवा

सेमल की जड़ को जल में पीसकर लुगदीसी कर ले। पीछे उसे दहीके तोड़ यानी दही के पानीमें पीसकर पीवे, तो गङ्गाके प्रवाह के समान वेगवाला भी अतिसार तत्काल आराम हो जाय।

अथवा

खीलों के चूर्ण को मन्थ के साथ सेवन करने से विरेचनका अत्यन्त विकार भी नष्ट हो जाता है।

अथवा

दही, काँजी, आमले, और सत्तू—इन चारों को एक जगह पीस कर लेप करनेसे सन्ताप, अरुचि, तृषा, अत्यन्त वमन और विरेचन ये विकार नष्ट हो जाते हैं।

अथवा

बटेर, लवा, तीतर, चकोर आदि विष्कर पक्षियों अथवा लाल हिरन के मांस का रस पीने से दस्त बन्द हो जाते हैं।

सूचना

अगर ऐसीही जरूरत हो, किसी दवासे दस्त बन्द न हों, तो "गङ्गाधर," "वृहत्-गङ्गाधर चूर्ण" प्रभृति अतिसार-प्रकरणमें लिखी दवाओंसे काम निकालना चाहिये। ये दवाएँ तीसरे भागमें लिखी हैं।

जुलाबवालेको अपथ्य

जिसने शिरावेधन कराया हो अर्थात् फस्त खुलवाकर खून निकलवाया हो, जिसने जुलाब लिया हो, उसे एक मास तक या जब तक पहलीसी ताक़त न आ जाय तब तक, नीचे की बातोंसे परहेज़ करना चाहिये। क्योंकि जुलाबवाले और फस्तवाले को ये अपथ्य हैं—क्रोध, परिश्रम, दिनमें सोना, ज़ोर से बोलना, हाथी घोड़े पर चढ़ना, शीतल जल,पवन, धूप, विरुद्ध भोजन, अधिक भोजन और असात्म्य यानी शरीर को दुःख देनेवाला भोजन।

जुलाबमें सहायता

दस्तोंकी दवा देकर, वैद्य यदि आँखोंमें शीतल जलके छींटे दे, अतर वगैरः सुँघावे और पान खिलावे तो उत्तम दस्त हों।

अगर पहले दिन दस्त कम हों, तब क्या करना चाहिये ?

वाग्भटने लिखा है :—अगर पहले दिन दस्त न हों,तो वैद्य रोगीको गरम जल पिलावे, हाथों की गरमीसे पेट को स्वेदित करे। यदि उस दिन दस्त कम हों, तो अन्नका भोजन कराकर, दूसरे दिन फिर जुलाब दे।

वङ्गसेनने लिखा है :—हीन रेचन हुआ हो,तो स्निग्ध करके,आस्थापन वस्ति देकर तेज़ जुलाब दो।

"चरक"में लिखा है,—वमन विरेचनके देनेपर दोष थोड़े-थोड़े और देरसे निकलें, तो गरम जल पिलाओ; जिससे अफ़ारा, तृषा (प्यास) और मल की रुकावट दूर हो।

जुलाबके दिन पथ्य

वङ्गसेनने लिखा है—मन्दाग्नि हो, अक्षीणता हो, अच्छी तरह दस्त

न हुए हों, तो यवागू मत दो ; किन्तु, अगर कमज़ोरी हो, अच्छी तरह दस्त हो गये हों, तो मन्दोष्ण (सुहाती-सुहाती) हलकी यवागू पिलाओ।

शार्ङ्गधरने लिखा है, दस्तोंके बाद साँठी चाँवल, मूँग आदि की यवागू, जंगली जानवर हिरन अथवा मुर्ग़ा आदिके मांस-रसके साथ भात खिलाओ।

जुलाब पच जाय और उपद्रव हो तब ?

अगर शोधन दवा पच जाय और प्यास, मूर्च्छा, भ्रम आदि उपद्रव हों ; तो स्वादु, शीतल और पित्तनाशक उपाय करो।

जुलाब-सम्बन्धी ज़रूरी बातें

(१) अगर दोषोंसे मार्ग ढक जायँ और शोधन दवा (वमन विरेचन की दवा) न ऊपर जाय न नीचे निकले, डकारें आवें, अंगोंमें दर्द हो, तो ऐसी अवस्था में "स्वेदन कर्म" करो।

(२) जुलाब से दस्त तो अच्छी तरह हो जायँ, मगर जुलाब की दवा पेट (आमाशय) में ठहरी रहे, उसकी डकारें आवें ; तो ऐसी दशामें, उस आमाशय में ठहरी हुई दवा को वमन कराकर निकाल दो। अगर ऐसा न करोगे, तो रोगी को और भी दस्त होंगे। बहुत दस्तों के बन्द करने का उपाय शीतल क्रिया है।

(३) कभी-कभी कफसे राह रुकजाने के कारण दवा छाती में रुकी रहती है, सन्ध्या समय या रातकी जब कफ का समय नहीं होता, कफ क्षीण हो जाता है, तब आप ही दस्तों के द्वारा निकलती है। अगर दवाके कफ से ढक जाने से लार बहना, हुल्लास, विष्टम्भ, लोमहर्ष आदि हों, तो तीक्ष्ण, गरम और चरपरी कफनाशक दवा दो।

(४) अगर रूखेपन और अनाहार के कारण दवा पच जाय या पचे नहीं ; किन्तु ऊपर को चली आवे, तो उसी दवा को नमक और चिकनाई के साथ दो।

(५) जिसे जुलाब दो, उसके मिज़ाज का पता लगाकर जुलाब दो। अगर गरम मिज़ाजवालेको गरम जुलाब दोगे, तो दस्त न होंगे या कम होंगे; इसलिए जिसका मिज़ाज गर्म हो, उसे शीतल जुलाब दो और जिसका मिज़ाज सर्द हो उसे गरम जुलाब दो; इस तरह करने से अवश्य दस्त होंगे।

(६) अगर मल सूख गया हो, इस कारण से जुलाब पच जाय; तो फिर स्नेहपान कराकर या हकीमी मुञ्जिस देकर अथवा आरग्वधादि काथ* देकर, मल को ढीला करके, फिर जुलाब की दवा दो।

वमन और विरेचनके लिए उत्तम ऋतुएँ।

यों तो ज़रूरत हो तभी वमन-विरेचन की दवा दे सकते हैं, पर कारण न होने से, शरद् और वसन्त में जुलाब देना और क़य कराना अच्छा है। शरद् में सञ्चित पित्तके निकालने के लिये जुलाब देना चाहिए और वसन्त में सञ्चित कफके निकालने के लिए क़य कराना और जुलाब देना ज़रूरी है।

अलग-अलग ऋतुओंके अलग-अलग जुलाब।

जुलाब किसको देना चाहिए, किसको न देना चाहिए, किस तरह देना चाहिए प्रभृति बातों का विचार हम पहले कर ही आये हैं। यहाँ प्रसङ्गवश हम छहों ऋतुओं में देने योग्य जुलाब के निरुपद्रवकारी नुसख़े लिखते हैं:—

वर्षा ऋतुमें जुलाब।

यदि ज़रूरत हो, तो वर्षाकालमें निशोथ की जड़, इन्द्रजौ, पीपल

* इस काथ में अमलतास का गूदा, पीपरामूल नागरमोथा, कुटकी और जंगी हरड़ ये पाँच चीजें होती हैं। इनको छै छै माशे लेकर, मिट्टी की हाँड़ी में, डेढ पाव जल में औटा लो। चौथाई जल रहने पर पिला दो। कड़े कोठेवालों को मात्रा बढ़ा दो और बालकों को घटा दो।

और सोंठ, इन सबको समान भाग लेकर कूट-छान लो ; पीछे दाखों का रस* और शहद मिलाकर बलाबल देखकर दे दो।

शरद् ऋतुमें जुलाब।

निशोथ, धमासा, नागरमोथा, सफेद चन्दन और मुलहटी—इन सब दवाओंको बराबर-बराबर लेकर ; चूर्ण करके, चार या छै माशे चूर्ण, (दस्त न होने से अधिक भी) दाखों के रस में मिलाकर दे दो। यह दवा शीतल है।

हेमन्त में जुलाब।

निशोथ, चीता, पाढ़, ज़ीरा, देवदारु, वच और चोक—इन सात दवाओं को समान भाग लेकर चूर्ण कर लो,पीछे ४।६ या ८ माशे चूर्ण† बलाबल अनुसार, गरम जल में मिलाकर दोगे ; तो दस्त हो जायँगे।

शिशिर और वसन्तमें जुलाब।

पीपल, सोंठ, सेंधानोन और काली निशोथ,—इन चारों को बराबर-बराबर लेकर चूर्ण कर लो। पीछे बलाबल अनुसार ४।६ या ८ माशे चूर्ण को शहत‡ में मिलाकर चटा दो, दस्त हो जायँगे।

---

* चार पाँच तोले मुनक्कों को मिट्टी की हाँडी में औटाकर, काढ़ा करके छानलो। यही दाखों का रस है। शीतल होने पर ४।६ माशे शहद मिलाना हो मिलाओ, न मिलाना हो मत मिलाओ।

† बिना रोगी की उम्र देखे या बलाबल देखे मात्रा नियत नहीं की जा सकती। आजकल ऐसे लोग भी मिलते हैं, जिन्हें मात्रा का आठवाँ भाग देनेसे ही दस्त पर दस्त होने लगते हैं और वे घबरा जाते हैं ; इसलिये जो दवा दे या ले विचार कर मात्रा नियत करे। इन चूर्णों की मात्रा एक तोले तक है ; पर चार या छै माशे से प्रारंभ करना भला है। किसी-किसी को दो तोले से भी दस्त नहीं होते ; ऐसे लोग हमें मिले, पर कम मिले। हमने नर्म कोठेवालों और नाजुक-मिजाजों के लिए ४।६ माशे की मात्रा लिखी है। इन मात्राओं से दो चार दस्त खुलासा हो सकते हैं।

‡ शहद जब लेना चूर्ण की मात्रा से दूना लेना, गरम पानी या और पतली चीज चूर्ण से चौगुनी लेना—ये नियम हैं।

ग्रीष्म में जुलाब।

निशोथ को कूट-पीस और छानकर चूर्ण करलो। पीछे ४।६ या ८ माशे चूर्ण को मिश्री मिलाकर दीजिये ; दस्त हो जायँगे।

नोट—याद रक्खो, निशोथ के जुलाब में पथ्य—परहेज का ज़ियादा रगड़ा नहीं है।

हर मौसम का जुलाब।

चार पाँच तोले अरण्डी का तेल या साफ़ कैस्टर आइल, पाव डेढ़ पाव गर्म दूध में मिलाकर पिला दीजिये ; ४।५ दस्त हो जायँगे। यह जुलाब बालक, स्त्री बूढ़े और दुर्बल सबको मुफ़ीद है। जिसका बहुत ही कड़ा कोठा हो ; रेंड़ी के तेलसे दस्त न होते हों ; तो आप दस बूँद तारपीन का तेल भी रेंड़ी के तेलमें मिला दें। चार पाँच तोले तेलकी मात्रा पूरे जवान को है। बालक को ४।६ माशे और स्त्री को २।३ तोला देना। दस्त होंगे ही होंगे।

अभयामोदक।

काबुली हरड़, काली-मिर्च, वैतरा-सौंठ, बायविड़ङ्ग, आमला (बीज निकाल कर), शुद्ध छोटी पीपर, पीपरामूल, दालचीनी, तेजपात और मोथा,—ये सब एक-एक तोले; जमालगोटेकी जड़की छाल दो तोले और निशोथ आठ तोले तथा मिश्री छैतोले,—इन सब को लाकर साफ करलो ; पीछे मिश्री को छोड़ कर, ग्यारह दवाओं को कूट-छान कर रखलो। शेष में मिश्री पीसकर मिला दो। इसके बाद सब दवाओं के चूर्णको शहदमें सानकर,चार-चार माशेकी गोलियाँ बना लो। यह मात्रा जवानकी है। बलाबल देखकर मात्रा घटा-बढ़ा लो।

सवेरे एक गोली खाकर ऊपरसे "शीतल जल" पीना चाहिये। बीच-बीचमें भी थोड़ा-थोड़ा शीतल जल पीना चाहिए ; क्योंकि शीतल जल इन गोलियोंकी लाग है। शीतल जल पीनेसे दस्त होते रहेंगे। जब

दस्त बन्द करने हों, गरम जल पी लो ; गरम जल पीतेही दस्त बन्द हो जायँगे।

इस जुलावके लेनेसे विषम ज्वर, मन्दाग्नि, पीलिया, भगन्दर, खाँसी, १८ प्रकारके कोढ़, वायुगोला, बवासीर, गलगण्ड, फोड़ा-फुन्सी, उदररोग, दाह रोग, तिल्ली, राजयक्ष्मा, प्रमेह, नेत्ररोग, वातरोग, पेट फूलना, सोज़ाक और पथरी—ये सब आराम होते हैं। इसकी शास्त्रोंमें बड़ी तारीफ़ लिखी है: पर हम इतना कह सकते हैं कि, ये जुलावका उत्तम नुसख़ा है : अनेक बारका परीक्षित है।

कालेदानेका जुलाव।

काला दाना ६ माशे और सोंठ ६ रत्ती ले लो। कालेदानेको घीमें भूँज कर पीस लो: पीछे पीस कर सोंठ मिला दो। यह एक मात्रा है, मगर यह मात्रा जवान आदमीकी है; कमज़ोर को कम देना चाहिए। इसे फाँककर ऊपरसे थोड़ासा गर्मजल पीलो, ५।६, दस्त होजायँगे। यह जुलाव जैलप या जमाल-गोटेसे कम नहीं है और ख़ूबी यह है कि, उनकेसे दोष इसमें नहीं हैं।

जिसे कम दस्तोंकी ज़रूरत हो या कोठा नर्म हो, उसे ६ माशे कालादाना घी में भूँजकर फाँक जाना चाहिए और ऊपरसे गरम जल पी लेना चाहिए।

निशोथ और त्रिफलेका जुलाब।

निशोथ और त्रिफला तीन-तीन तोले और वायबिडङ्ग, पीपर, जवाखार एक-एक तोले लेकर, सबको कूट-पीसकर चूर्ण करलो; पीछे इस चूर्णमें गुड़ मिलाकर नौ-नौ माशेकी गोलियाँ बना लो। (मात्राकी बात पहले लिख आये हैं)। गोली खाकर गर्मजल पी जाओ। इस जुलावमें पथ्य परहेज़का रगड़ा नहीं है।

अथवा

उपरोक्त दवाओंके छै माशे चूर्णको एक तोले शहद और आधे तोले घी में मिलाकर चाट जाइये। इस तरह करने से भी दस्त होंगे।

हकीमी मुञ्जिस।

(सब मिजाजवालों के लिए)

गुलेबनफ़सा	३	माशे
वर्गगावजवाँ	३	”
गुलेगावज़ुवाँ	३	”
तुख़्म ख़तमी	५	”
तुख़्म कासनी	५	”
वेख़ वादियान	५	”
वेख कासनी	५	”
मकोय	५	”
वादियान	५	”
असलुस्सूल	५	”
उन्नाव	६	दाना
ख़ुब्बाज़ी	३	माशे
वर्ग अशना	३	”
मुनक्का	६	दाना
मिश्री	२	तोला

रातको, इन सब चीज़ोंको (मिश्री छोड़कर) एक कोरी हाडीमें, आधा सेर जल डालकर, भिगो दो। सवेरे उसे आग पर पकाओ। जब पाव या सवा पाव पानी रह जाय, तब मल-छान और मिश्री मिला कर पी जाओ।

यह एक ख़ूराक या एक मात्रा है। इस तरहकी पाँच ख़ूराक पाँच रोज़ तक लेनी चाहिएँ। इससे मल पक और फूल जायगा। यह मुञ्जिस आज़मूदा है।

हकीमी जुलाब।

(सब मिजाजवालों के लिए)

गुले सुर्ख़*	५	माशे
गुलेबनफ़शा	५	"
तुरबत सफ़ेद	५	"
बादियान †	५	"
पोस्त हलीले ज़र्द ‡	६	"
मकोय	५	"
गाज़ीफ़ून§	६	"
वर्ग सना¶	६	"
बेख़ हञ्जल	६	"
तुख़्म हञ्जल ‖	६	"
असबन्द +	३	"
ज़ूफ़ाँ	५	"
गिलोय सब्ज़×	५	"
अञ्जीर	८	दाना
मुनक्का	१३	दाना

गुलक़न्द गुलाब आफ़ताबी २ तोला

इन सबको, मुञ्जिसकी तरह, रातको, कोरी हाँडीमें, आधा सेर जल डालकर, भिगो दो। सवेरे आग पर पकाओ। जब तिहाई या तीन

---

* गुलाब के फूल। † सौंफ। ‡ पीली काबुली हरड़ का बक्कल। § यह एक दवा है जो अञ्जीर के दरख़्त से पैदा होती और अत्तारों के यहाँ मिलती है। ¶ सनाय के पत्ते। ‖ इन्द्रायन की जड़। इन्द्रायन का बीज। +एक फलका बीज है। इसका रंग स्याह, किसी कदर कड़वा, सख़्त और गन्ध युक्त होता है। ×हरी ताजा गिलोय।

नोट—हिकमत में पत्ते को "वर्ग" बीज को "तुख़्म" और जड़ को "बेख़" कहते हैं।

छटाँकके क़रीब पानी रह जाय, मलकर छान लो । पीछे गुलक़न्द गुलाब मिलाकर पी जाओ । इसके पीनेके १ घण्टे बाद; अर्क सौंफ आधा पाव या गर्म पानी पानी चाहिये । इस दवाके पीनेके २।३ घण्टे बाद ५।६ दस्त साफ हो जायँगे ।

जुलाब पर हकीमी हिदायतें ।

हिकमत के ग्रन्थोंमें लिखा है कि, मुसिल के पहले मुंजिस देनी चाहिये ; क्योंकि मुंजिस दोषों को पकाती और मुसिल या विरेचन-दवा दोषों को रगों और जोड़ों से निकाल लाती है । इसीलिए हकीम लोग जुलाब के पहले मुंजिस देते हैं । ४।५ दिन बाद मलों के फूल जाने और पक जाने पर जुलाब देते हैं ।

हिकमत की पुस्तकों में लिखा है:—

(१) एक दिनमें दो जुलाब न लेने-देने चाहिएँ ।

(२) जुलाब की दवा पीते समय नाकको बन्द कर लेना चाहिए, जिससे कि दवाकी बदबू वग़ैरः से तबियत न बिगड़े और क़य न हो जाय । दोनों बाजुओं को ज़ोर से बाँध देना चाहिये । जुलाब लेनेवाले को इत्र प्रभृति सुगन्धित पदार्थ सुँघाने चाहिएँ अथवा इलायची या पोदीनेको लौंगके साथ चबवाना चाहिए । इन उपायों से क़य नहीं होती ।

(३) जब तक जुलाब का असर न हो, दस्त न होने लगें, कुछ भी न खाना चाहिए ।

(४) जुलाब लेकर सोना अच्छा नहीं ।

(५) जुलाब की दवा को बहुत मीठा करना मुनासिब नहीं है ।

(६) आब-दस्त के लिये पानी ऐसा लेना चाहिए, जो न गरम हो न ठण्डा ।

(७) अगर तेज़ जुलाब की दवा दी जाय; पर उससे कोई लाभ न हो ; बल्कि उन्माद या बेहोशी होती दीखे, तो उस दशा में शीघ्र ही वमन करा देनी चाहिए ।

(८) अगर रोगी बलवान हो, तो बराबर दो तीन दिन तक जुलाब की दवा दी जा सकती है। अगर रोगी कमज़ोर हो, तो एक-एक या दो-दो दिन के अन्तर से जुलाब देना चाहिए। हमेशा इस बातका ख़याल रखना चाहिए कि, रोगी का बुरा हाल न हो।

(६) ख़शक स्वभाव वाले, बूढ़े और बालक को तेज़ जुलाब न देना चाहिये।

(१०) जुलाब लेने वाले को सरदी से बहुत बचाना चाहिए।

(११) जुलाब के ऊपर अर्क़ सौंफ या गुनगुना अथवा गर्म जल पीना अच्छा है ; इससे दस्तों को मदद मिलती है।

(१२) जुलाबसे निपटनेके बाद ; गरम मिज़ाजवालेको ईसबगोल और सर्द मिज़ाजवाले को नाजबों के बीज या मज़लके के बीज पिलाना अच्छा है।

(१३) बहुत से आदमी हर छठे या बारहवें महीने जुलाब लेते रहते हैं ; मगर आदत डालना हरगिज़ अच्छा नहीं। रोग की शान्ति के लिये ज़रूरत पड़नेसे जुलाब लेना चाहिये।

(१४) अगर ख़ाली पित्त होता है,तो मुंजिससे तीन दिनमें पक जाता है। यदि पित्तके साथ और भी कोई दोष होता है,तो ५ दिनमें पकता है।

हमने इस विरेचन-विषय को, अपनी भरसक, ख़ूब समझा कर विस्तार-पूर्वक लिखा है। आशा है, चिकित्सक और साधारण लोग इससे लाभ उठायेंगे। नुसख़े हमने कम लिखें हैं , ज़ियादा हम अगले भागों में लिखेंगे ; क्योंकि उन के पहले और बहुतसी बातें बतानी हैं, जिनके जाने बिना वे तैयार ही नहीं हो सकते। ज़रूरत के समय इतने नुसख़ों से ख़ूब काम चलेगा। प्रायः सभी नुसख़े परीक्षित हैं।

हाँ ; विरेचन-विषय के पहले हम स्नेह, स्वेद और वमन के सम्बन्धमें न लिख सके, इसका हमें दुःख है। पर कारण यह है, कि उनको विरेचन-विषय की तरह समझा कर लिखनेसे प्रायः १०० सफे और होंगे। उतने सफे हमें इस भाग में रखने नहीं, क्योंकि काग़ज़ की अत्यन्त महँगी के कारण, ३५० सफोंके इसी भागका मूल्य ३) या ३॥) हो जायगा। इसलिये उन्हें हम, परमात्मा चाहे तो, किसी अगले भाग में लिखेंगे। वहीं हम बस्ती-कर्म, फस्द खोलना और जोंक लगाना प्रभृति विषयों पर लिखेंगे। इनके बाद कुछ बनौषधियों का जिक्र करके, रोगों के निदान, लक्षण और उन की चिकित्सा लिखेंगे। पाठक, ज़रासे उलट-फेर के लिए हमें क्षमा करेंगे।

अधोवायु, विष्ठा, मूत्र, जँभाई, आँसू, छींक, डकार, वमन शुक्र भूख, प्यास, श्वास और नींद—ये तेरह वेग हैं। इन तेरहोंके रोकनेसे तेरह प्रकारके उदावर्त्त रोग होते हैं। इन शारीरिक वेगोंके रोकनेसे हानि होती है; किन्तु क्रोध, लोभ, मोह, ईर्षा, द्वेष प्रभृति मानसिक वेगोंके रोकनेसे बड़ा भारी लाभ होता है। उदावर्त्त रोग बड़े भयानक रोग हैं। कितने ही तो मनुष्यों को घोर दुःख भुगाते हैं और कितने ही प्राण तक हरण कर लेते हैं; इसलिये आप भूल कर भी वेगोंको न रोका कीजिये। सुनिये, इनसे कैसे-कैसे रोग होते हैं,—

पेशाब

के रोकनेसे पेड़ू और लिङ्गेन्द्रियमें दर्द होता है, पेशाब रुक-रुककर थोड़ा-थोड़ा और कष्टसे होता है, सिरमें पीड़ा होती है,शरीर सीधा नहीं होता और पेटमें अफारा तथा जाँघों और पेडूके जोड़ोंमें शूलसे चलते हैं।

ऐसी दशा होने पर, मूत्राघातमें, पसीने निकालना, पानीमें घुसकर नहाना, मालिश कराना,भोजनके पहले और पीछे घृत सेवन करना और तीन प्रकारके बस्ती-कर्म करना—ये उपाय, चरकमें, इसकी शान्ति के लिखे हैं।

पाखाने

या मलके वेग को रोकनेसे पेटमें गुड़गुड़ाहट और दर्द होता है, गुदामें कतरनेकी सी पीड़ा होती है, टट्टी साफ नहीं होती, डकारें आती हैं अथवा मुँहसे मल निकलता है। ये लक्षण माधवाचार्य्यने लिखे हैं।

"चरक"में लिखा है, पक्वाशय और मस्तकमें पीड़ा होती है; अधोवायु और मल दोनों रुक जाते हैं; नाभि मलसे ल्हिस जाती और पेट फूल जाता है।

"चरक"में लिखा है, मलके रुकने पर स्वेदन, अभ्यङ्ग, अवगाहन, तीन प्रकारकी बत्ती, वस्ती-कर्म तथा वायुको अनुलोमन करनेवाले खान-पान, इन सबसे काम लेना चाहिये।

शुक्र

यानी वीर्य्य के रोकनेसे मूत्राशयमें सूजन, गुदा और फोतोंमें पीड़ा, पेशावका कष्टसे होना, शुक्र की पथरी और वीर्यका रिसना,—माधवाचार्य्यने लिखा है, ऐसे-ऐसे अनेक रोग होते हैं। "चरक"में लिखा है, मैथुन करते समय छुटते हुए वीर्यके रोकने से लिङ्ग और फोतोंमें दर्द, शरीर टूटना, अङ्गड़ाई आना, हृदयमें पीड़ा और पेशाव का रुक-रुककर होना—ये उपद्रव होते हैं।

ऐसी हालत होनेपर मालिश, अवगाहन यानी ग़ोते लगाकर जलमें नहाना, शराव पीना, मुर्ग़े का मांस खाना, शाली चाँवल खाना, दूध पीना, निरुह वस्ती और मैथुन करना—ये उपाय उत्तम हैं।

अधोवायु

यानी गुदा द्वारा निकलनेवाली हवाको शर्म या लज्जावश रोकनेसे अधोवायु, मल और मूत्र ये रुक जाते हैं; पेट फूल जाता है, अनायास थकानसी मालूम होती है, पेट में बादीसे दर्द होता है तथा और भी वायुके उपद्रव होते हैं।

ऐसा होने पर स्नेह, स्वेद और बस्तीकर्म करना तथा वायुको अनुलोम करनेवाले भोजन और पान देना उत्तम उपाय हैं।

वमन

के वेगको रोकने यानी आती हुई क़यको रोकनेसे खुजली, चकत्ते,

अरुचि, मुँह पर भाँईं, सूजन, पीलिया, सूखी ओकारी और विसर्प—ये उपद्रव होते हैं। "चरक" में कोढ़ अधिक लिखा है।

इन रोगोंके दूर करने के लिये भोजनके बाद वमन करानी चाहिये, उसके बाद धूम-पान और लङ्घन कराने चाहियें तथा फस्त खोलनी चाहिये। इनके सिवा रूखे पदार्थों का सेवन, कसरत और जुलाब, ये सब भी उत्तम हैं।

छींक

के वेग को रोकनेसे गर्दनके पीछे की मन्या नामक नस जकड़ जाती है, सिरमें शूल चलते हैं, आधा मुँह टेढ़ा हो जाता है, इन्द्रियाँ दुर्बल हो जाती हैं और अर्द्धाङ्गमें वात रोग हो जाता है। "चरक"में लिखा है—गर्दन का जकड़ना, मस्तक-शूल, लकवा, आधाशीशी और इन्द्रियोंकी दुर्बलता होती है।

ऐसी हालतमें हँसलीके ऊपरी भागमें मालिश करना ; स्वेदन, धूम-पान और नस्यका प्रयोग करना वात-नाशक क्रिया करना और भोजनके पहले और पीछे घी पीना—ये उत्तम उपाय हैं।

डकार

के वेग के रोकनेसे बादीके इतने रोग होते हैं—कण्ठ और मुख का भारीसा मालूम होना, एकदमसे नोचनेकासा दर्द होना, समझमें न आवे ऐसी बात कहना। "चरक"में लिखा है—हिचकी, खाँसी, अरुचि, कम्प और हृदय तथा छाती का बँधासा मालूम होना—ये रोग होते हैं।

ऐसा होने पर हिचकी-रोगमें जो इलाज किया जाता है, वही इसमें भी करना चाहिए। हिचकी और श्वास का कारण कफयुक्त वायु है और दोनों का स्थान भी आमाशय हैं। इसलिए ऐसा उपाय करना चाहिए, जिस से छेदों में चिपटा हुआ कफ पिघल जाय और श्वास-वायु अपनी राह में ठीक आने-जाने लगे। रोगी को स्वेद करा कर चिकना भोजन देना चाहिए, जिस से कफ बढ़े। पीछे पीपल, सेंधे

नोन और शहत से या और किसी दवा से जो वायु की विरोधी न हो, वमन करा देनी चाहिए। वमन होने से कफ निकल जायगा, छेदों के शुद्ध होने से वायु स्वच्छन्दता-पूर्वक विचरने लगेगा, रोगी को आराम मालूम होगा। फिर भी यदि कुछ दोष रह जाय, तो धूम-पान द्वारा निकाल देना चाहिए। जौ की बत्ती को चिलम में रख कर पिलाना; मोम, राल और घी—इन तीनों को इकट्ठा पीस कर, मल्लक सम्पुट में रखकर, धूम पान कराना अथवा हिचकी नाशक नस्य सुँघाना, इस कामके लिए उत्तम उपाय हैं। हम हिचकी-नाशक चन्द परीक्षित उपाय लिखते हैं—

(१) नाकमें हींग की धूनी दो।

(२) ज़रासा सेंधानोन जलमें पीसकर सुँघाओ।

(३) मक्खी के गू को दूध में पीसकर सुँघाओ।

(४) सोंठ को गुड़ में मिलाकर सुँघाओ।

(५) मुलेठीको शहत में मिलाकर सुँघाओ।

(६) शहत और काला निमक मिलाकर बिजौरेका रस पिलाने या केवल शहत चटाने से असाध्य हिचकी भी आराम होती है।

(७) सोंठ, पीपल, धायके फूल, इन के चूर्णको शहत में मिलाकर चटाओ।

(८) डराने, आश्चर्यजनक बात कहने, प्राणायाम करने, अद्भुत बात कहने और मनमें चोट लगनेवाली बात कहने आदिसे भी हिचकी आराम हो जाती है।

जँभाई

के वेग को रोकने से गर्दन के पीछे की नस और गले का जकड़ जाना, मस्तक में बादी के विकार होना, नेत्र रोग, नासा-रोग, मुख-रोग और कर्णरोग का ज़ोर से होना—ये सब उपद्रव होते हैं। "चरक"में .खा है—अँगों का नव जाना,—आक्षेपक वायु, सङ्कोच, शरीर के अङ्गों का सो जाना और काँपना ये उपद्रव होते हैं।

इससे हुए रोगों में वातनाशक औषधि देना हितकारी है।

भूख

के वेगको रोकने से तन्द्रा, शरीर टूटना, अरुचि, थकाई और नज़र कम होना,—ये रोग होते हैं। "चरक"में लिखा है-देहमें दुर्बलता,कृशता, विवर्णता, अङ्ग टूटना और भ्रम,—ये लक्षण होते हैं।

इस में चिकने, गर्म और हल्के भोजन देना हितकारी है।

प्यास

के वेग को रोकनेसे कण्ठ और मुँह सूखते हैं, कानोंसे कम सुनायी देता है और हृदय में पीड़ा होती है। "चरक"में—श्रम और श्वास का होना अधिक लिखा है।

इससे हुए रोगोंमें शीतल किया और तर्पण करना हितकारी है। हम चन्द उपाय लिखते हैं :—

(१) शहत का गण्डूष धारण करो।

(२) बड़ के अङ्कुर, शहत, कूट, कमल और खील—इन को एक जगह पीस कर गोलियाँ बना लो। पीछे इन गोलियों को मुख में रक्खो।

(३) अनार, बेर, लोध और बिजौरे नीबू को एक जगह पीस कर माथे पर लेप करो।

(४) गीले कपड़े को शरीर पर लपेट लो।

(५) चाँवलों के जल में शहत मिलाकर पीओ।

(६) छटाँकभर मिश्री को शीतल जल में घोलकर शर्बत बना लो; पीछे उस में ४।५ छोटी इलायची. चाँवलभर कपूर, २।३ लौंग १०।१५ काली मिर्च—इन सब को पीस कर मिला दो। शेषमें बारीक कपड़े से छानकर पिला दो। इसे "शर्करोदक" कहते हैं। यह बहुत ही उत्तम चीज़ है। यह वीर्य पैदा करनेवाला, पेट की जलन नाश करनेवाला, दस्त साफ़ लानेवाला, स्वाद में मज़ेदार, वात, पित्त और खून-विकार

का नाश करनेवाला ; वेहोशी, जी मिचलाना और प्यास आदिको शान्त करने में परमोत्तम है।

(७) ख़स का इत्र सुँघाओ, ख़स के पङ्खे से हवा करो, सरसब्ज़ बाग़की सैर कराओ। इन सब उपायोंसे अथवा इनमेंसे दो-तीन उपायों से वेशक वहुत लाभ होगा।

आँसुओं

के वेग को रोकने से मस्तक का भारीपन, नेत्ररोग और पीनस,— ये रोग ज़ोर से होते हैं। "चरक" में लिखा है—ज़ुकाम; आँखोंका रोग, हृदयरोग, अरुचि और भ्रम—ये रोग होते हैं।

इस हालत में नींदभर सोना, हलकीसी वढ़िया शराब पीना, चित्त प्रसन्न करनेवाली प्यारी-प्यारी बातों का कहना, मीठा-मीठा वाजा बजाना प्रभृति हितकारी है।

नींद

के वेग को धारण करने से जंभाई, अङ्ग टूटना, नेत्र और मस्तकका जड़ हो जाना और तन्द्रा—ये रोग होते हैं।

इस हालत में शान्तिपूर्वक सोना और किसी दूसरे शख़्स का पैर के तलवे और हाथों की हथेलियों का सुहराना हितकारी है।

साँस

के वेग को रोकने से हृदयरोग, मोह और वायुगोला,—ये रोग होते हैं। वाज़-वाज़ शख़्स थक जानेपर साँस रोका करते हैं।

इस दशामें रोगीकोआराम देना चाहिये औरवात-हरणकारी यानी वादी को नाश करनेवाली क्रियाएँ करनी चाहिएँ।

चरक भगवान् के उपदेश।

चरक भगवान् कहते हैं—शरीर-सम्बन्धी इन तेरह वेगों को कभी मत रोको, जिस से ऐसे भयानक रोग हों।

इस लोक और मैं मंगल चाहो, तो अनुचि

मनके वेग को, वाणीके वेग को, देह के वेग को,
म, शोक, भय, क्रोध और अभिमानके वेगको रोक
को, ईर्ष्याके वेग को, अनुरागके वेगको और परा
ने के वेगको रोको। कठोर बोलनेके वेगको, अत्यन्त
के वेग को, मिथ्या बोलने के वेग को और अकालर
रोको। दूसरे को कष्ट देनेके वेगको रोको; स्त्री-सं
के वेग को और हिंसा प्रभृति के वेग को रोको,
त निकाल बैठो; लोभ, शोक, भय, क्रोध और घ
माने दो; शर्म को मत छोड़ो, चटपट किसी पर मोहि
ई दौलत या पराया वैभव देखकर कुढ़ो मत, कठोर ह
मत बोलो, दूसरे को जिससे कष्ट हो ऐसी बात चि
रण्डीबाज़ी से बचो, चोरी का ध्यान भी न करो, और
की हत्या मत करो इत्यादि।

आप शारीरिक वेगों को न रोकेंगे; मन-वच-कर्म से
आप 'पुण्यश्लोक'हो जायँगे। आप सदा सुखी रहेंगे,
बढ़ेगा,कामकी प्राप्ति होगी और लक्ष्मी आप की चेरी
त अच्छी है। सामर्थ्यानुसार कसरत करने से शरीर
त होता है, काम करने और क्लेश सहने की सामर्थ्य
की शान्ति होती है, भूख बढ़ती है; मगर इसके भी
कान, ग्लानि, क्षयरोग, प्यास, रक्तपित्त, प्रतमक-श्वास,
वमन—ये उपद्रव होते हैं।

आप बुद्धिमान को ज़रूरत होने से भी अत्यन्त कसरत
त बोलना, बहुत रास्ता चलना, बहुत स्त्री-संसर्ग कर

T—